शरीर-रचना एवं क्रिया-विज्ञान

(Anatomy & Physiology)



लेखक—

डॉ॰ एस॰ आर॰ वर्मा

भूतपूर्व प्राध्यापक—पी॰ एच॰ मेडिकल कालेज, काशी ।

सम्पादक—

डॉ॰ लक्ष्मीशंकर विश्वनाथ गुरु

ए॰ एम॰ एस॰, एम॰ ए॰

रीडर, पी॰ जी॰ आई॰ एम॰—चिकित्सा महाविद्यालय,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ।

सदस्य चिकित्सा-विज्ञान परामर्शदात्री समिति वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग भारत सरकार ।

प्रकाशक :
मेडिकल पुस्तक भवन,
गोला दीनानाथ, वाराणसी-१

•

•

सप्तम संस्करण

•

मूल्य ८-०० रुपये मात्र

•

मुद्रक—
चन्द्रिका प्रसाद
प्रभा प्रिंटिंग प्रेस
रामकटोरा रोड, वाराणसी।

प्राक्कथन

पुस्तक में प्राक्कथन लिखना एवं छापना एक स्वस्थ एवं सोद्देश्य परम्परा है। इसके द्वारा पाठक को यह ज्ञात हो जाता है कि लेखक कौन है, क्या है तथा पुस्तक क्यों लिखी गई, उसमें क्या-क्या विषय हैं, क्या विशेषताएँ हैं।

शरीर-रचना एवं क्रिया-विज्ञान पर यह पुस्तक मेडिकल पुस्तक भवन, वाराणसी के संचालक डॉ० शर्मा ने आयुर्वेद, होमियोपैथी तथा होम साइन्स के विद्यार्थी समुदाय के लिए सन् १९६५ में लिखवाई थी।

प्रकाशक महोदय ने इसके द्वितीय संस्करण का भार मुझपर डाला। यह पुस्तक अब मेरे द्वारा पूर्ण संशोधित, परिवर्धित एवं सम्पादित होकर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है। इस पुस्तक का भार मुझपर डालने का कारण सम्भवतः यह था कि मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेद महाविद्यालय में इस विषय को १० वर्ष तक पढ़ाता रहा तथा पश्चात् हिन्दू विश्वविद्यालय के चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय में मैंने ४ वर्ष तक इस विषय का अध्यापन कार्य किया एवं मेरा भारत सरकार द्वारा वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग की चिकित्सा सम्बन्धी परामर्शदात्री समिति का सम्मानित तथा स्थाई सदस्य नियुक्त होना हो सकता है।

मैंने इस पुस्तक में आद्योपान्त परिवर्तन एवं संशोधन कर दिया है। इस पुस्तक में मैंने यथासम्भव राजमान्य शब्दावली का ही प्रयोग किया है।

किसी भी चिकित्सा-विज्ञान का विद्यार्थी शरीर-रचना एवं क्रिया-विज्ञान का ज्ञानोपार्जन किये बिना उस शास्त्र का अध्ययन कर ही नहीं सकता है। आयुर्वेद महासम्मेलन एवं हिन्दी विश्वविद्यालय, प्रयाग के आयुर्वेद के परीक्षार्थियों, होमियोपैथी के विद्यार्थियों, गृह-विज्ञान के विद्यार्थियों, मानस-विज्ञान के विद्यार्थियों तथा ललितकला के विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी होगी यह मेरा विश्वास है।

यह कार्य मुझे विगत वसन्त पञ्चमी पर सौंपा गया था। परम शिव बाबा विश्वनाथ की असीम अनुकम्पा से इसे लगभग १ वर्ष में पूर्ण कर सका हूँ, यह मेरे लिए अत्यन्त आनन्द का विषय है। इस कार्य को पूरा करने में जो सक्रिय सहायता मेरी धर्मपत्नी श्रीमती इन्दिरा गुरु ने प्रदान की है उसके लिए उन्हें धन्यवाद देना मेरा एक आवश्यक कर्तव्य है।

वसंत पंचमी
वि० संवत् २०२५
जनवरी, १९६९ } का० हि० वि० वि०

विद्वत्जन अनुचर

लक्ष्मीशंकर विश्वनाथ गुरु

रीडर चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय पी० जी० आय० एम०
(का० हि० वि० विद्यालय)

सदस्य आयुर्वेद संकाय
इन्दौर विश्वविद्यालय
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर
हिन्दी सा० सम्मेलन हि० वि० वि०, प्रयाग

विषयानुक्रमणिका

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पाँचवां अध्याय

छठवाँ अध्याय

सातवाँ अध्याय

और चेहरे की धमनियाँ, ग्रीवा की धमनियाँ, रक्त परिसंचरण (Circulation of Blood), छोटे घेरे से रक्त परिसंचरण (Circulation of Blood Through Pulmonary Circuit), कुक्षि धमनी और उसकी शाखाएँ (The Coelic Artery and its branches), ऊर्ध्वं आन्त्रयोजनो तथा अधः आन्त्र योजिनी धमनी (Diagram of the Superior and inferior Mesenteric arteries), औदरीय महाधमनी और अधरा महाशिरा (Abdominal Aorta and Inferior Venacava), अधोजत्रुक धमनी और उसकी शाखाएँ (The Subclavian Artery and it's branches), नितम्ब प्रान्त की रचना (Structure of the Gluteal Region), जानु-पृष्ठ खात का विच्छेदन (Dissection of the Popliteal Fossa), उरु के पूर्व-प्रान्त का गम्भीर विच्छेदन (Deep Dissection of the front of the Thigh), जंघा तथा पाद के पूर्व पृष्ठ का विच्छेदन (Dissection of the Leg and Foot), जंघा पश्चिम प्रान्त का गम्भीर विच्छेदन (Dissection of the back of the Leg), पादतल का गम्भीर विच्छेदन (Deep Dissection of the Sole of the Foot), बड़े घेरे से रक्त का परिसंचरण (Circulation of Blood through Larger Circuit), हृदय की गति (Movement of Heart), हृदय की ध्वनि (Sound of Heart), रक्त का दाब (Blood Pressure), रक्तचाप क्या है ।

[१२३–१६८]

आंठवां अध्याय

मूत्रवह तन्त्र (Urinary System), उदर में स्थित वृक्क के आस-पास के अवयव, शुक्राशय तथा शुक्र प्रणालियाँ, वृक्क अधिवृक्क ग्रन्थि और प्लीहा का सम्बन्ध प्रदर्शक चित्र (Diagram showing relation of Kidneys,

Suprarenal glands and Spleen), वृक्क (Kidney), वृक्क के कार्य (Functions of Kidney), मूत्राशय (Urinary, Bladder), मूत्र (Urine) ।

[१६९–१८०]

नवां अध्याय

प्रजनन-तन्त्र (Reproductive System of Generative System), गर्भाशय (Uterus), पुरुष-श्रोणि-गुहा का दक्षिण आभ्यन्तरिक भाग, अधि-श्रोणिका के अवयव विस्फारित, कलामय और ग्रन्थिस्थ मूत्र प्रणाली तथा ऊपर से मूत्राशय खुला हुआ (The Bulbous, Membranous and Prostatic Urethra and portion of the bladder laid open from above), आन्तरिक स्राव (Internal Secretion), मासिक स्राव (Menstruation), मासिक स्राव तथा प्रजनन क्रिया विज्ञान (Physiology of Menstruation and Reproduction) ।

[१८१–१९२]

दसवां अध्याय

तन्त्रिका तन्त्र (Nervous System), त्वरक तन्त्रिकाएं (Accelcrator Nerves), अनुकम्पी तन्त्रिकाएं (Sympathetic Nerves), संदमक तन्त्रिकाएं परानुकम्पी तन्त्रिकाएं (Para-Sympathetic Nerves), केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र (Central Nervous System), सुषुम्ना के कार्य (Functions of Spinal Cord), मस्तिष्क आधार (Base of the brain), मस्तिष्क (Brain), वाम गोलार्द्ध का आन्तर-तल (Medial Surface of the left Cerebral hemisphere), प्रमस्तिष्क के कार्य (Functions of Cerebrum), अनु-मस्तिष्क (Cerebellum), अनुमस्तिष्क का ऊर्ध्वतल (Superior Surface of the Cerebellum), अनुमस्तिष्क का अधस्तल (Inferior Surface of the

ग्यारहवाँ अध्याय

बारहवाँ अध्याय

तेरहवाँ अध्याय

संधियाँ (Joints), सन्धि निर्माण या रचना (Construction of the Joint) ।

[२५९–२६१]

चौदहवाँ अध्याय

प्रत्येक अंग का विस्तार तथा स्थानीय विवरण (Topography), सिर (Head), ग्रीवा (Neck), उदर (Abdomen), वक्ष (Thorax), परिउदर्या (Peritonium), औदर्य्या महाकला (Peritonium), मृत्यु ।

———

शरीर-रचना एवं क्रिया-विज्ञान

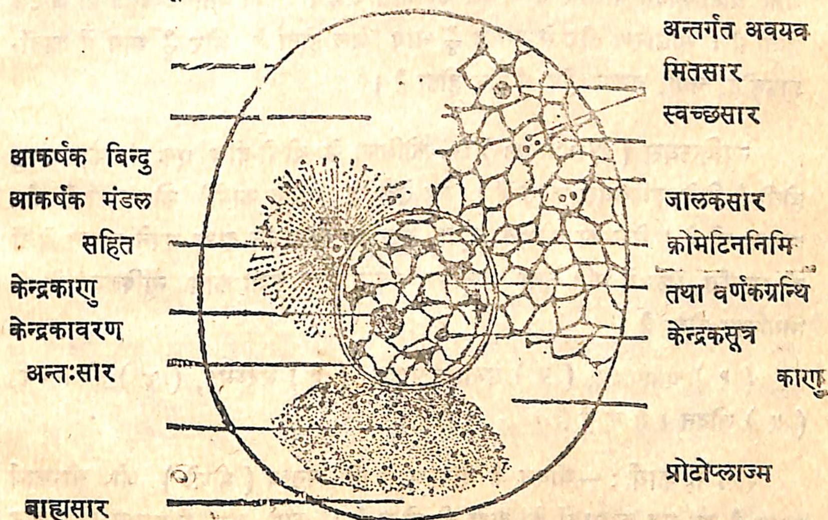
[Anatomy & Physiology]

प्रथम अध्याय

कोषा एवं ऊतक

(Cells and Tissues)

कोशिका (Cell)—जिस प्रकार समस्त पृथ्वी कणों से बनी है और सागर एक-एक बूंद जल से बना है उसी प्रकार शरीर भी कोषों से मिल कर



चित्र सं० १ – कोषा रचना

बना है। शरीर रचना की इकाई कोशिका या सेल (Cell) होते हैं। प्रत्येक कोषा आकार में बहुत छोटे-छोटे होते हैं जो केवल माइक्रोस्कोप (Microscope) से ही देखे जा सकते हैं। सेल शरीर का वह छोटे-से-छोटा भाग है जो सेल की दीवाल (Cell Wall) और प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) तथा न्यूक्लियस (Nucleus) का बना होता है।

कोशिका-भित्ति या सेल-वाल (Cell Wall) :—यह भित्ति बहुत ही बारीक और पोरस होती है। इस दीवाल में बहुत-से बारीक छोटे-छोटे छेद होते हैं। इनसे अनावश्यक तथा हानिकारक वस्तुओं का त्याग और आवश्यक वस्तुओं का अन्दर आकर्षण होता है। सेल के अन्दर श्वास-क्रिया सेल वाल द्वारा होती है।

प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) :—सेल दीवाल के अन्दर एक गाढ़ी तरल वस्तु होती है जिससे कोषा अपनी पूरी खुराक लेता है और बढ़ता है। यही प्रोटोप्लाज्म वास्तव में जीवन का आधार है। इसकी बनावट बहुत ही जटिल होती है। साधारण तौर से इसका $\frac{३}{४}$ भाग जल होता है और $\frac{१}{४}$ भाग में कार्बोहाइड्रेट, चर्बी, नमक और प्रोटीन होता है।

न्यूक्लियस (Nucleus) :—कोशिका के बीचो-बीच एक अंडाकार वस्तु होती है जिसे न्यूक्लियस कहते हैं। यह सेल के प्रधान कार्यों को करता है और शासक भी है। सेल का जीवित रहना, सेल के विभाजन द्वारा अपने समान सेलों की उत्पत्ति, सेल में गति तथा सेल का बढ़ना यह सभी काम न्यूक्लियस से ही नियन्त्रित होता है।

(१) चयापचय, (२) सन्तानोत्पादन, (३) मरम्मत, (४) नियन्त्रण, (५) जीवन। ये कार्य हैं।

सेल के कार्य :—जीवन के आरम्भ से ही मनुष्य (प्राणी) जो भी कार्य करता है वह सब कोशाओं के द्वारा ही होता है। कार्य का विभाजन दो प्रकार से होता है—

पहले वह कार्य होता है जो शरीर से आवश्यक सम्बन्ध रखता है, जैसे कि खाना-पीना, सोना, उठना, मल-मूत्र का त्याग, श्वसन-क्रिया तथा सन्तान उत्पत्ति आदि।

दूसरे प्रकार का कार्य यह है, जैसे गति, व्यवसाय तथा बाहरी अन्य कार्य।

जिस प्रकार भिन्न-भिन्न देशों के निवासियों के रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान में अन्तर होता है उसी प्रकार सेल की बनावट तथा कार्य में भी अन्तर है। जैसे कि श्वसन-संस्थान के सेल की बनावट तथा कार्य में और पाचन-संस्थान के सेल की रचना तथा बनावट में।

सेल में जीवन के लक्षण :—

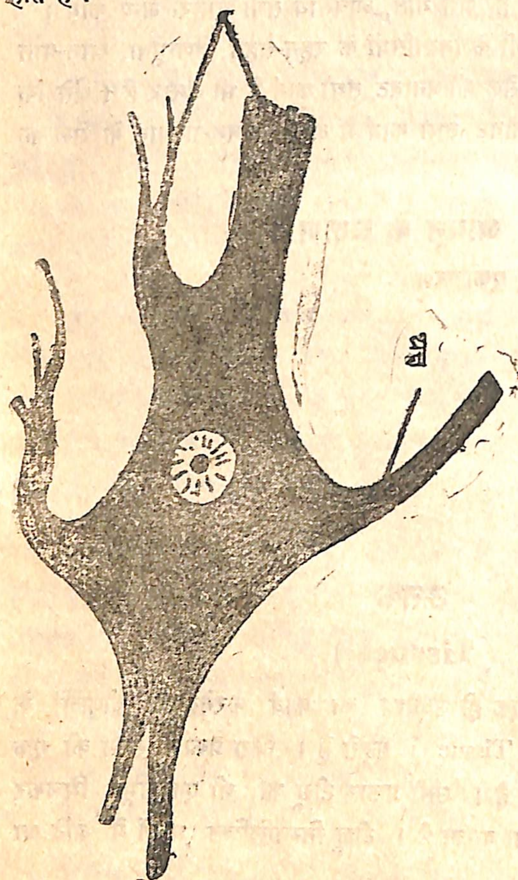
(१) भोजन का पाचन, एकीकरण
(२) वृद्धि
(३) विकार विसर्जन
(४) प्रजोत्पादन
(५) उत्तेजना
(६) अनुकूलन

ऊतक
(Tissues)

एक ही आकार तथा एक ही उद्देश्य का कार्य करनेवाली कोषाओं के समूह को ऊतक या टीशू (Tissue) कहते हैं। जिस प्रकार सेल्स की एक संख्या मिल कर टीशू बनाती है। उसी प्रकार टीशू का भी एक समूह मिलकर शरीर के एक अंग की रचना करता है। टीशू निम्नलिखित भागों में बाँटे जा सकते हैं :—

[१] नरवस टीशू (Neruous Tissue) :—ये पूरा तन्त्रिका संस्थान बनाते हैं। इनमें ब्रेन (Brain), सुषुम्ना तन्त्रिका (Spinal

Cord) तथा नर्व (Nerves fibres और सेल्स) सम्मिलित हैं। सारा तन्त्रिका संस्थान (Nervous System), न्यूरान (Nevrone) से मिलकर बना है। Nervous Tissue की इकाई सेल को न्यूरान कहते हैं। यह सेल दो प्रकार के होते हैं।



(1) Bipolar Nerve Cells.

(2) Multipolar Nerve Cells.

चित्र सं० २
तन्त्रिका ऊतक की आन्तरिक रचना

इनके तीन मुख्य कार्य हैं :—

(क) Sensory Impulse (संवेदना की सूचनाओं) को ग्रहण करना।

(ख) Motor Impulse (प्रेरक आज्ञा को सूचनाओं) को भेजना।

(ग) Transformation of Sensory Impulse in motor Impulses) को मोटर में बदलना, संवेदनाओं को लेकर उन्हें आज्ञाओं में बदलना।

एक नर्व सेल के तीन भाग होते हैं :—

(क) Axon या Axis Cylinder :—इसमें Nerve Centre होता है। यह Nerve Cell के केन्द्र से आरम्भ होता है और बाहर को जाता है। और मोटर इम्पल्स (प्रेरक आज्ञा की सूचनाओं) को ले जाता है। इन्हें Effer-ent या Motor Nerve Fibre भी कहते हैं।

(ख) दूसरे प्रकार के Fibre वह हैं जो बाहर से आकर न्यूक्लियस या केन्द्र पर समाप्त होते हैं। यह बाहर से Sensory Impulse (संवेदनाओं) को लाते हैं।

(ग) न्यूरान का तीसरा भाग न्यूक्लियस है। इसका काम सूचनाओं को पाना और उनके अनुसार आज्ञा प्रदान करना है।

तन्त्रिका संस्थान का एक भाग केन्द्रीय तथा दूसरा परिसरीय होता है। इस संस्थान का विशेष भाग स्वतन्त्र (Autonomous) होता है जिसे अनुकम्पी (Sympathetic) तथा परानुकम्पी (Parasympathetic) भागों में विभाजित करते हैं।

[२] मांसपेशियाँ (Muscular Tissue) :—शरीर का अधिकतर भाग मांसपेशियों का बना होता है। शरीर के अन्दर और बाहर जितनी गतियां होती हैं वह इन्हीं मांसपेशियों के द्वारा ही होती हैं। मांसपेशियां समस्त शरीर में फैली हैं। यह शरीर के बाहरी हिस्से में लगी रहती हैं और अन्दर पाचन-नली, गर्भाशय,

मूत्राशय तथा श्वास-नलियों में फैली होती हैं। मांसपेशियाँ लाल रंग की होती हैं और पारदर्शक भी होती हैं। कार्य के अनुसार मांसपेशियाँ दो प्रकार की होती हैं।



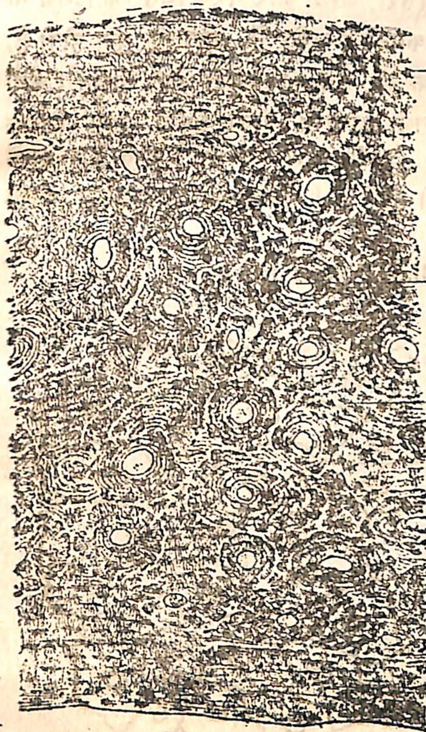
चित्र सं० ३ Striped Fibres

(१) ऐच्छिक मांसपेशियाँ (Voluntary Muscles) :—इन मांसपेशियों की गति इच्छानुसार होती है। इन्हें रेखित पेशी (Striped Muscles) भी कहते हैं। यह अस्थियों को हिलाने-डुलाने का काम करती हैं। यह एक अस्थि से आरम्भ होती है और उसी अस्थि पर जोड़ (Joint) बनाने वाली दूसरी हड्डी पर समाप्त होती है। यह मांसपेशियाँ लचीली होती हैं। इन मांसपेशियाँ से एक प्रकार का रस निकलता है जिसे Sarcolactic Acid कहते हैं। इसके निकलने से मांसपेशियाँ शिथिल पड़ने लगती हैं। और फिर मनुष्य को थकावट मालूम पड़ने लगती है। विद्युत धारा का इनमें झटका लगता है। सर्दी लगने से ये मांसपेशियाँ कड़ी पड़ जाती हैं और फिर इनमें चिलकन पैदा होने लगती है। मनुष्य के मरने के बाद इनका लचीलापन समाप्त हो जाता है तथा भारी और अपारदर्शक हो जाती हैं, क्योंकि इनके अन्दर का तरल पदार्थ जमने लगता है।

(२) अनैच्छिक मांसपेशियाँ (Non Striped Muscles) :—इस प्रकार की मांसपेशी को अनैच्छिक मांसपेशी (Involuntary Muscle) कहते हैं। यह मांसपेशियाँ स्वतन्त्र होती हैं और इनका कार्य मनुष्य की इच्छा पर निर्भर नहीं करता। इनका संचालन एक प्रकार के Nervous System से होता है। जिसे स्वतन्त्र तन्त्रिका संस्थान (Autonomous)

Nervous System) कहते हैं। इसी संस्थान के नियन्त्रण से यह मांसपेशियाँ फैलती तथा सिकुड़ती हैं। ये क्रियाएँ नियमित रूप से क्रम में होती हैं। अनैच्छिक मांसपेशियाँ दो प्रकार की होती हैं। (१) Straited Muscle, जैसे हृदय (Heart) की। (२) Plain Muscle यह आँतों, श्वासनली तथा धमनियों की दीवालों में होती हैं।

हृदय की पेशी रेखित होते हुए भी अनैच्छिक होती है तथा इसमें कई अन्य विशेषताएँ होती हैं। ये अनवरत कार्यरत रहती हैं।



चित्र सं० ४ अस्थि ऊतक की आन्तरिक रचना

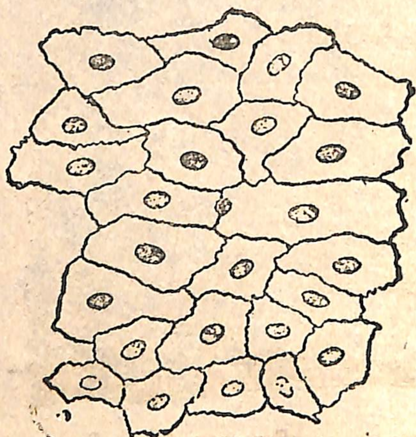
[३] अस्थि ऊतक (Bony Tissue) :—अस्थि शरीर का एक बहुत ही महत्वपूर्ण भाग है। शरीर के अन्दर हड्डियाँ न हों तो शरीर मांस का एक लुण्ड-मुण्ड ढीला लोथड़ा रह जाये। हड्डियाँ शरीर के मुख्य अंगों की रक्षा करती हैं। जैसे—Brain, Heart, Lungs इत्यादि। अस्थि ऊतक दो प्रकार का होता है :—

(1) Hard Bony Tissue, (2) Soft Bony Tissue

हड्डियाँ दो प्रकार की होती हैं। एक ठोस और कड़ी जिसे संहत भाग (Compact Bone) कहते हैं और दूसरी पतली और नरम जिसे कार्टिलेज या उपास्थि (Cartilage) कहते हैं। कार्टिलेज शरीर में बहुत ही कम होती हैं, जैसे—कान की बाहरी हड्डियाँ, नाक के नीचे की हड्डी और नाखून। कड़ी बोन्स भी दो प्रकार की होती हैं। पतली लम्बी व पोली हड्डी यानी जिसके अन्दर नाली होती है जिसे मज्जानाल (Marrow Cavity) कहते हैं। इसके अतिरिक्त ठोस और चिपटी हड्डियाँ भी होती हैं। जैसे—सर की हड्डियाँ, श्रोणी की हड्डियाँ इत्यादि।

[४] उपकला ऊतक (Epithelial Tissues) :—

शरीर की हरेक नलियों के भीतरी भाग में तथा शरीर को बाहर से ढंकने वाले कुछ ऐसे ऊतक होते हैं जो एक स्तर के समान फैले होते हैं। इन्हें इपीथीलीयम (Epithelium) कहते हैं। जिनकी रचना प्रत्येक स्थान के कार्य के अनुसार होती है। निम्नलिखित प्रकार के होते हैं।

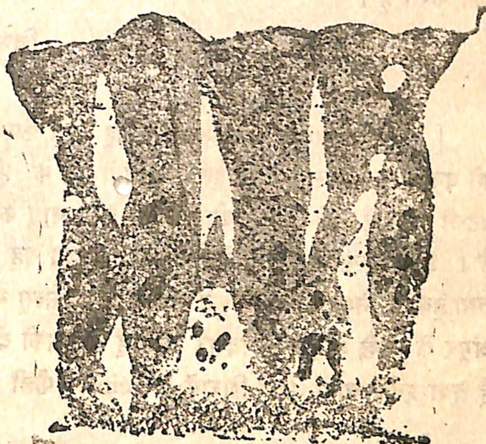


चित्र सं० ५ कालुमनर इपीथीलियम

(क) स्तरित उपकला Stratified Epithelium (स्ट्रेटीफाइड इपीथीलियम) :—ये अधिकतर शरीर के बाहरी भागों में फैले रहते हैं, जैसे—हथेली और तलुओं में। यह रगड़ खाने के लिए कड़ी सतहें बनाती हैं।

(ख) एकस्तरी शल्की उपकला ऊतक Pavement Epithelium (पेवमेण्ट इपीथीलियम) :—ये शरीर के ढँके हुए हिस्सों में पाये जाते हैं, जैसे—रक्त नलियों में, लसीका नलियों में, फेफड़े के वायुकोष में, श्लैष्मिक झिल्लियों में तथा शरीर की सन्धियों की झिल्ली में। इनके सेलस की केवल एक तह होती है जो चिपटी व पतली होती है। इसमें वायु का समावेश बहुत सरलता से होता है।

(ग) स्तम्भाकार उपकला Columnar Epithelium (कालुमनर इपीथीलियम) :—यह ऊतक औरों की अपेक्षा अधिक क्रियाशील होते हैं। यह रक्त से एक प्रकार का रस उत्पन्न करती हैं जिन्हें स्राव कहते हैं। ये पाचननली तथा वृक्कनली के अन्दर लगी रहती हैं।



चित्र सं० ६ स्तम्भाकार उपकला

(घ) रोमक उपकला (Epithelium Oiliated) :—ये सेल्स एक-एक पंक्ति में लगे रहते हैं। इनमें और साधारण सेल्स में अन्तर यह होता है कि इनके ऊपरी भाग पर रोम लगे रहते हैं। ये वस्तुओं को एक ही दिशा में आगे हटाने में सहायता करते हैं।

(ङ) परिवर्ती उपकला (Transitional Epithelium) ट्रांजिशनल इपीथीलियम :—यह कई ऊतकों का एक मिश्रण होता है। यह दो-तीन तह के होते हैं जो सतह पर चपटे हो जाते हैं। यह मूत्रनली में पाये जाते हैं और रासायनिक क्रियाओं से नीचे के अंगों की रक्षा करते हैं।

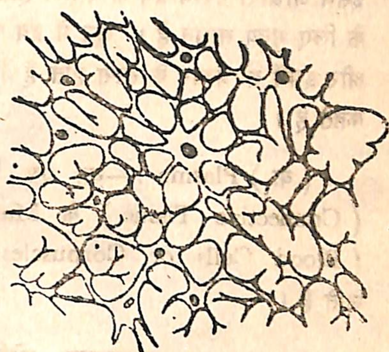


चित्र सं० ७ रोमक उपकला

[५] Alveolar Tissues :—यह सेल्स फेफड़े या वायुकोष (Air Cell) को बनाते हैं। इसके सेल्स हल्के गुलाबी रंग के होते हैं। इसकी दीवार बहुत पतली होती है और इन्हीं दीवारों के द्वारा वायु का समावेश आसानी से होता है। इसके सेल्स लचीले होते हैं। हवा से जब यह भर जाते हैं तो दब जाते हैं तथा हवा के निकलने पर सिकुड़ जाते हैं। यह सेल्स महीन वायु-नली में खुलते तथा अंगूर के गुच्छे के समान बिखरे रहते हैं। इनकी दीवारें एक दूसरे से जुड़ी रहती हैं तथा इनके चारों तरफ शिरायें (Veins) फैली रहती हैं।

[६] Areolar Tissues :—यह संयोजक ऊतक (Connective Tissue) का सबसे साधारण प्रकार है। यह ऊतकों को एक दूसरे से जोड़ता

है। यह सफेद और पीली जाली की तरह होता है। यह शरीर में चारों तरफ फैला हुआ है। खाली स्थानों को भरता भी है। इनके द्वारा शरीर को गर्मी मिलती है। यह उपवास के समय शरीर को भोजन प्रदान करती है। यह Tissue शरीर को सर्दी से बचाते हैं।


चित्र सं० ८ एरियोलर टीशू

[७] ग्रन्थि ऊतक Glandular Tissues :—यह वह सेल है जो एक प्रकार का रस निकालता है। भिन्न-भिन्न सेलस भिन्न-भिन्न प्रकार के रस को निकालते हैं। इन्हीं सेलस के समूह मिलाकर ग्रन्थि (Gland) बनाते हैं। ग्लैंड्स (Glands) शरीर में चारों तरफ फैले हुए हैं। इनसे एक प्रकार का स्राव निकलता है जो शरीर के लिए बहुत उपयोगी है। शरीर के अन्दर ग्रन्थियाँ दो प्रकार की होती हैं। पहली वह है जिसके द्वारा स्राव निकलता है जो नलियों द्वारा आँतों में जाता है और भोजन पाचन में सहायता पहुँचाता है, जैसे कि यकृत (Liver), पैंक्रियास (Pancreas) और सेलाइवरी ग्लैंड्स (Salivary Glands)।

बिना नलीवाली दूसरे प्रकार की ग्रन्थि वह है जिसका स्राव नली से बाहर न निकल कर सीधे रक्त में मिल जाता है। इन्हें अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ (Endocrine Glands) कहते हैं। इनके स्राव को Hormone कहते हैं।

तीसरे प्रकार की ग्रन्थियाँ वह है जो मुख एवं आंतों की भीतरी झिल्लियों में उपस्थित रहती हैं। ये Muscus Glands कहलाती हैं। इससे जो स्राव निकलता है वह चिकनाहट (ल्यूब्रीकेशन) का काम करता है ताकि रगड़ पैदा होने पर छिल न सके।

[८] रुधिर कोशिका (Blood Cells) :—यह Connective Tissue का ही एक विशेष प्रकार है, यह अन्य टीशू से भिन्न है। इसका माध्यम इसमें आधारी पदार्थं द्रव के रूप में होता है और यही द्रव आवाहन और प्रवाहन के लिए मुख्य साधन है। खून में द्रव पदार्थं को प्लाज्मा (Plasma) कहते हैं और इसमें दो प्रकार के सेल्स होते हैं जिसे रक्तकोषायें (Blood Corpuscles) कहते हैं।

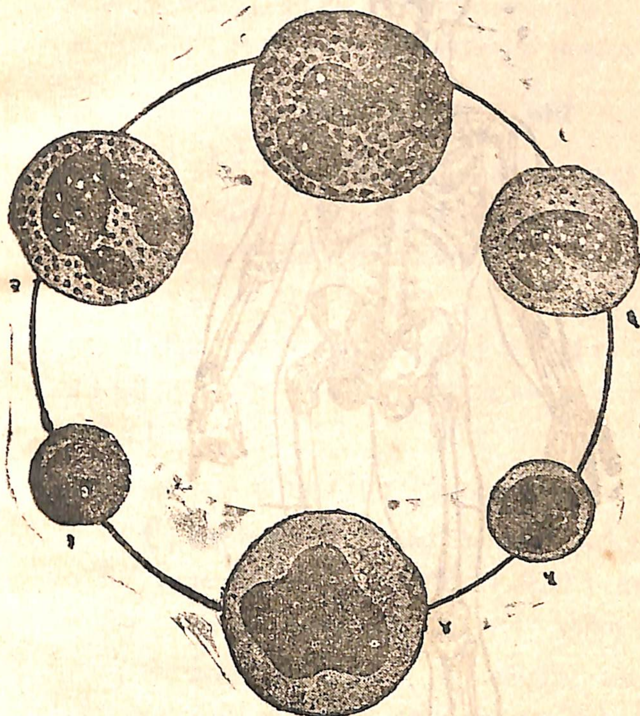
(क) Plasma :—यह एक रंगहीन द्रव है जो कि संयोजक ऊतक (Connective Tissue) के Matrix की तरह होता है। इसमें रक्तकोष (Blood Cells or Corpuscles) तैरकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते हैं।

(ख) लाल रक्तकण, लोहित कोषिका (Red Blood Corpuscles or Erythrocytes) :—यह रक्त में बहुत ज्यादा मात्रा में होते हैं। यह ४०% रक्त में होता है। ये गोलाकार, बीच में मोटे, दोनों तरफ उभरे तथा किनारे की तरफ पतले कोने की तरह होते हैं जो Piles of coin की तरह घूमते रहते हैं। इसमें केन्द्रक नहीं होते हैं और इसमें लाल रंग केवल हीमोग्लोबिन (Heamoglobin) की तरह से है जिसमें हिम का अर्थं है लोहा और Globin एक Protein (भोजन का अङ्ग) है। एक क्यूबिक मि० मि० रक्त में इनकी संख्या ४५ से ५० लाख .ोती है।

[ग] श्वेत रक्तकण :—श्वेत कोषिका (White Blood Corpuscles) इन्हें Leucocytes भी कहते हैं। यह लाल रक्त कण से बड़े होते हैं लेकिन संख्या में काफी कम होते हैं। इन सेल्स का कोई सीमित आकार नहीं है और इसमें Nuclei होते हैं। यह शरीर के अन्दर रक्षा और सफाई करने का काम करते हैं। यह विषैले तथा हानिकारक जीवाणुओं से शरीर की रक्षा करते हैं ‌ र आक्रमण होने पर उनसे लड़ते हैं। खून के अन्दर टूटी-फूटी और व्यर्थं की वस्तुओं को रक्त से हटा ले जाना भी इन्हीं का

काम है। एक घन मि० मि० रक्त में इनकी संख्या ६ से ९ हजार होती है। प्रति ३ सौ लाल रुधिर कोशिका के पीछे १ श्वेत रुधिर कोशिका होती है।

श्वेतकण



१—इयोसिनोफिल १% से ३%

२—पौलिमार्फ ५५% से ६०%

३—लिम्फोसाइट ३५% से ४०%

४ अ—लार्ज मोनोसाइट

४ ब—स्माल मोनोसाइट

६—बेसोफिल

चित्र सं० ९

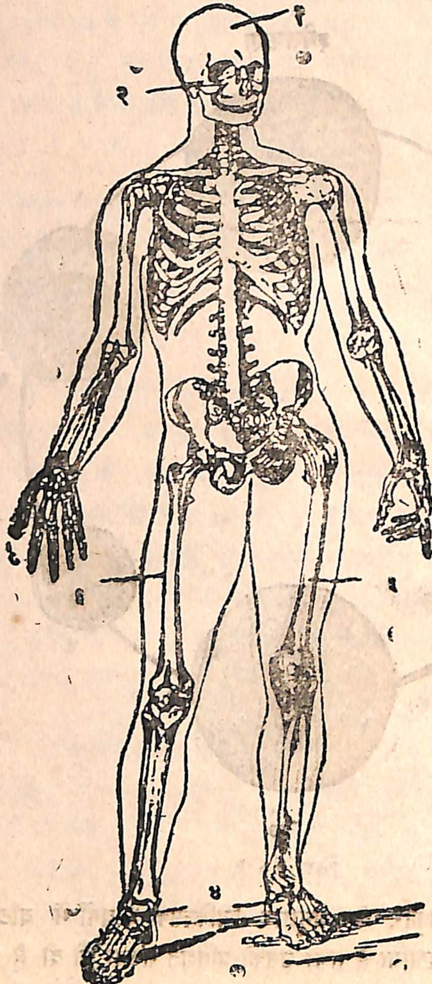
इन्हें कार्य और आकार के अनुसार चिकित्सक ५ वर्गों में बाँट देता है जैसा चित्र सं० ९ में दिखाया है तथा उनकी प्रतिशत संख्या भी दी है।

———

अध्याय २

अस्थियां

(Bones)



चित्र सं० १० अस्थि पंजर

मनुष्य के शरीर का ढाँचा हड्डियों का बना है। इनमें कुछ हड्डियाँ लम्बी, गोली और कुछ बेलन के आकार की हैं। यह संख्या में २०६ हैं।

यह हड्डियाँ या अस्थि (Bone) तथा उपास्थि (Cartilage) दो धातुओं की बनी हैं। हम देख चुके हैं कि अस्थियाँ मांस में गड़ी हुई पाई जाती हैं। अतः मनुष्य का अस्थि-पंजर करीब-करीब सारा आन्तरिक (Internal) है।

अस्थि-कंकाल के कार्य

(१) कंकाल शरीर को सहारा देता है और दृढ़ बनाता है।

(२) कंकाल शरीर के आकार और आकृति को बनाये रखता है। यदि शरीर में हड्डियाँ न हों तो शरीर एक मांस के लोथड़े के तुल्य रह जायगा।

(३) अस्थियाँ शरीर के कोमल भागों की रक्षा करती हैं। करोटि की बहुत-सी हड्डियाँ मिलकर एक बक्स बना लेती हैं जिसमें मस्तिष्क की रक्षा होती है। इसी प्रकार कशेरुकाओं से बनी हुई कशेरुक नली के अन्दर सुषुम्ना की रक्षा होती है।

मनुष्य कंकाल के दो मुख्य भाग किये जाते हैं—

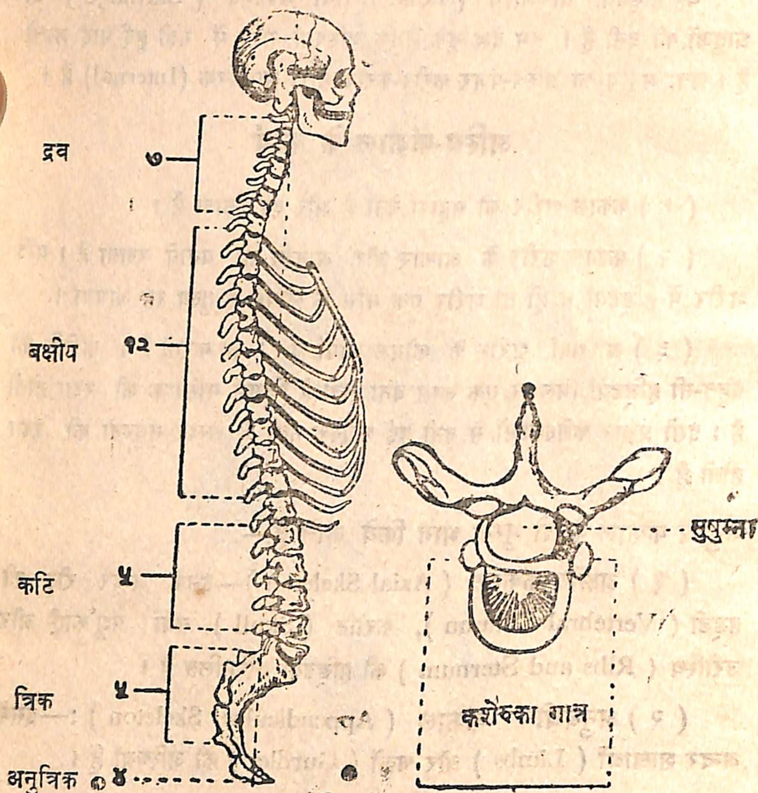
(१) अक्षीय कंकाल (Axial Skeleton)—इसके अन्दर रीढ़ की हड्डी (Vertebral Column), करोटि (Skull) तथा पशुकाएँ और उरोस्थि (Ribs and Sternum) की हड्डियाँ सम्मिलित हैं।

(२) अनुबंधीय कंकाल (Appendicular Skeleton) :—इसके अन्दर शाखाओं (Limbs) और चक्रों (Gurdles) की अस्थियाँ हैं।

मेरुदंड की अस्थियाँ

रीढ़ की हड्डियाँ संख्या में ३२ होती हैं। ये पीठ के बीचो-बीच स्थित हैं। ये कपालास्थि (Occipital Bone) के नीचे के भाग से आरम्भ होती हैं और नीचे जाकर गुदा के समीप समाप्त होती हैं। ये पाँच समूह में विभाजित हैं :—

(१) ग्रीवा कशेरुका (Cervical Vertebrae)—यह संख्या में सात हैं। ऊपर आक्सिपिटल अस्थि तथा नीचे पहले वक्षीय कशेरुका (Thoracic Vertebrae) के बीच स्थित है।



चित्र सं० ११ सुषुम्ना नलिका चित्र संख्या १२ कशेरुका गात्र

(२) वक्षीय कशेरुका (Thoracic Vetebrae) यह संख्या में बारह हैं और सातवें ग्रीवा कशेरुका तथा पहले कटि कशेरुका (Lumber Vertebrae) के बीच स्थित हैं।

(३) कटि कशेरुका (Lumber Vertebrae)—यह संख्या में पाँच हैं और यह बारहवें वक्षीय कशेरुका तथा पहले त्रिक कशेरुका (Sacral vertebrae) के बीच स्थित हैं।

(४) त्रिक कशेरुका (Sacral Vertebrae)—यह संख्या में पाँच होती हैं तथा एक दूसरे से मिली होती हैं। यह पाँचवें कटि कशेरुका तथा पहले अनुत्रिक कशेरुका (Coccygeal Vertebrae) के बीच स्थित हैं।

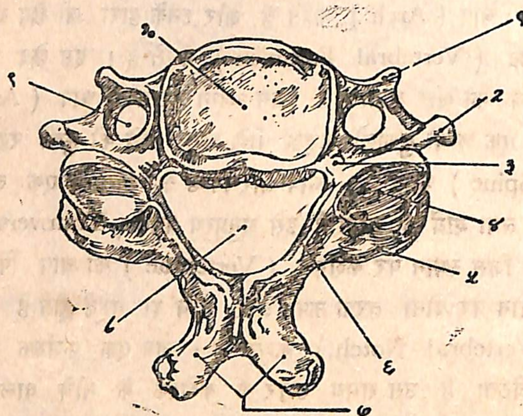
(५) अनुत्रिक कशेरुका (Coccygeal Vertebrae)—यह संख्या में चार होती हैं और यह भी एक दूसरे से मिली हुई होती हैं।

कशेरुका की साधारण रचना—प्रत्येक रीढ़ की हड्डी के अग्र भाग (Anterior Portion) में एक चौड़ा ठोस भाग जो जीन के समान होता है उसे पिण्ड (Body) कहते हैं। पिण्ड (Body) के पिछले तथा बाहरी भाग से दोनों तरफ दो लम्बी हड्डियाँ निकलती हैं जो आपस में पीछे की तरफ एक दूसरे से जुट जाती हैं और एक बड़ा छेद बनाती हैं। इन दोनों हड्डियों को चाप (Arch) कहते हैं और इनके द्वारा जो छेद बनता है उसे कशेरुका छिद्र (Vertebral Foramen) कहते हैं। इस छेद से होती हुई सुषुम्ना नीचे की ओर आती है। जिस स्थान पर दोनों चाप (Arch) मिलते हैं वहाँ से एक लम्बी नुकीली हड्डी पीछे तथा नीचे को झुकी रहती है। उसे कण्टक (Spine) कहते हैं। चाप और पिण्ड के सन्धि से एक लम्बी व चौड़ी हड्डी दायें तथा बायें को जाती है इसे अनुप्रस्थ प्रवर्ध (Transverse Process) कहते हैं। जिस स्थान पर कशेरुक (Vertebrae) का चाप पिण्ड से मिलता है उस स्थान पर दोनों तरफ ऊपर और नीचे दो गड्ढे होते हैं जिन्हें कशेरुक खात (Vertebral Notch) कहते हैं। जब एक कशेरुक दूसरे कशेरुक के ऊपर बैठता है उस समय ऊपर के कशेरुक के नीचे वाला खात और नीचे के कशेरुक के ऊपर वाला खात दोनों मिलकर एक-एक छेद बनाते हैं जिनके द्वारा सुषुम्ना तन्त्रिकाएं (Spinal Nerves) निकलती हैं। खात

के आस-पास पिण्ड से लगे हुए हड्डियों के दो पतले तथा गोले हिस्से ऊपर को उठे रहते हैं। ये पिण्ड के दोनों तरफ होते हैं इन्हें फलक (Facets) कहते हैं। जब एक कशेरुक दूसरे के ऊपर बैठता है तो यह फलक एक दूसरे से लग जाते हैं।

दोनों कशेरुक के पिण्ड के बीच में एक प्रकार की उपास्थि की गद्दी रहती है जो धक्का लगने से इसको बचाती है। इस गद्दी को अन्तर कशेरुक तन्तु उपास्थि (Inter Vertebral Fibro Cartilage) कहते हैं। यह प्रत्येक दो उपास्थि कशेरुक (Vertebrae) के बीच में उपस्थित रहता है। उपरोक्त वर्णन एक कशेरुक (Thoracic Vertebrae) का है।

१—अग्र गुलिका
२—पश्च गुलिका
३—पेडन्किल
४—अधिसंधायक फलक सुपीरियर आर्टिक्युलर फेसेट
५—अध:संधायक फलक इन्फीरियर आर्टिक्युलर प्रोसेस



चित्र सं० १३ साधारण ग्रैव कशेरुक-टिपिकल सर्वाइकल वरटेब्रा

६—पत्रक-लेमिना

७—कण्टक-स्पाइन

८—कशेरुक छिद्र-वरटेब्रल फोरामेन

९—अनुप्रस्थ प्रवर्ध छिद्र-फोरामेन ट्रान्सवरसेरियस

१०—पिण्ड

ग्रीवा कशेरुका (Cervical Vertebrae)—जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। ग्रैवकशेरुक गले में पीछे की तरफ स्थित है। इनकी रचना में साधारण कशेरुक की अपेक्षा कुछ अन्तर है।

१—पहला तो यह है कि कशेरुक की कशेरुक नली (Vertebral Canal) वक्षीय कशेरुक के नाल से बड़ी होती है।

२—ग्रैव कशेरुक का कंटक इतना लम्बा नहीं होता जितना कि वक्षीय कशेरुक का कंटक लम्बा होता है। बल्कि इसके बदले छोटे-छोटे दो कंटक होते हैं जो आपस में लगे रहते हैं।

३—ग्रैव कशेरुक का अनुप्रस्थ प्रवर्ध उतना बड़ा नहीं होता जितना वक्षीय का होता है।

४—जिस स्थान पर अनुप्रस्थ प्रवर्ध और चाप मिलते हैं उसी स्थान पर दोनों ओर एक--एक छेद होते हैं जिनके द्वारा सुषुम्ना तन्त्रिकाएँ निकला करती हैं।

५—ग्रैव कशेरुक का पिण्ड वक्षीय कशेरुक के पिण्ड की अपेक्षा छोटा होता है। इसके अतिरिक्त वक्षीय और ग्रैव कशेरुक में कोई भेद नहीं होता।

पहिले और दूसरे ग्रैव कशेरुक में कुछ विशेषतायें होती हैं जो और कशेरुक में नहीं पायी जाती हैं।

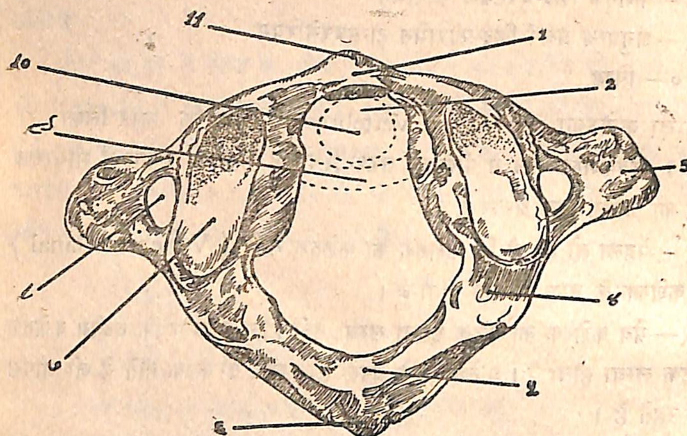
१—अग्रचाप-एण्टीरियर आर्च

२—दन्त प्रवर्ध के लिए फलक-फेसेट फार ओडन्टायड प्रोसेस

३—अनुप्रस्थ प्रवर्ध-ट्रान्सवर्स प्रोसेस

४—कशेरुक धमनी की खात-ग्रूव फार वरटेब्रल आर्टरी

५—पश्च चाप-पोस्टिरियर आर्च



चित्र सं० १४ प्रथम ग्रैव कशेरुक

६—पश्च गुलिका-पोस्टिरियर ट्यूबरकिल

७—पार्श्व पिण्ड पर अधिसंधायक-फलक-सुपीरियर आर्टिक्युलर फेसेट आन लेटरल मास।

८—अनुप्रस्थ प्रवर्ध छिद्र-फोरामेन ट्रांसवर्सेरियम

९—एटलस के अनुप्रस्थ स्नायु की रूप-रेखा आउट लाइन आफ ट्रान्सवर्स लिगामेन्ट आफ एटलस

१०—दन्त प्रवर्ध की रूप-रेखा आउट लाइन आफ ओडोन्टायड प्रोसेस

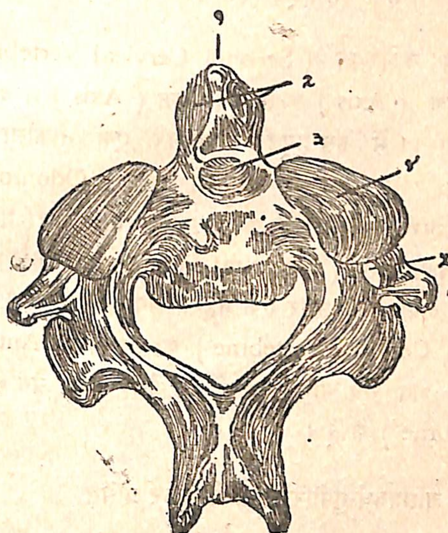
११—अग्र गुलिका-एण्टीरियर ट्यूबरकिल

प्रथम ग्रीवा कशेरुका का नाम एटलस गुलिका (Atalas Vertebrae) भी है। इसके ऊपर पश्च कपालास्थि (Occipital Bone) स्थित रहती है। इस कशेरुक (Vertebrae) में पिण्ड (Body) नहीं होता।

१—दन्त प्रवर्ध-ओडन्टायड प्रोसेस

२—एलर स्नायु-एलर लिगामेंट

३—एटलस के अनुप्रस्थ स्नायु की खात-ग्रूव फार ट्रान्सवर्स लिगामेंट आफ एटलस



चित्र सं० १५ ग्रैव कशेरुक

४—संधायक अधितल-सुपीरियर आर्टिक्युलर सरफेस

५—अनु प्रवर्ध छिद्र फोरामेन ट्रान्सवर्सेरियम

६—कण्टक

इसके स्थान पर एक घूमी हुई हड्डी रहती है जो अग्रचाप (Anterior Arch) बनाती है। इसके बीचो-बीच अग्र भाग के ऊपर एक मोटा तन्तु लगा रहता है जो सिर को इसी हड्डी से मजबूती से जोड़े रहता है। इसके दोनों तरफ दो लम्बे गड्ढे होते हैं जो मध्य की ओर (Medial Side) झुके रहते

हैं। इनके ऊपर पश्च कपालास्थि स्थूलक (Occipital Condyle) आकर लगता है। इनके पार्श्व भाग में दो छेद होते हैं जिनके द्वारा प्रथम ग्रीवा तन्त्रिका (First Cervical Nerve) निकलती है। इस हड्डी का कण्टक बहुत छोटा होता है उसके ऊपर पश्च कपालास्थि (Occipital Bone) से आरम्भ हुई मांसपेशी आकर लगती है। यह हड्डी एक छल्ले के समान होती है।

द्वितीय ग्रीवा कशेरुका (Second Cervical Vertebrae)— इसको अंग्रेजी में अक्षकशेरुक (Axis) कहते हैं। अक्ष (Axis) श द का अर्थ धुरी से होता है और वास्तव में इस हड्डी पिण्ड पर एक नोकीला उभाड़ होता है जो ऊपर को उठा रहता है। इसे दान्ताभ प्रवर्ध (Odontoid process) कहते हैं। इसके ऊपरी नुकीले भाग के ऊपर एक बहुत मोटा मजबूत तन्तु लगा रहता है जो पश्च कपालास्थि (Occipital Bone) के निचले भाग से आरम्भ होता है। पिण्ड के अग्रतल के ऊपर एक गहरी क्यारी बनी होतो है जिसके ऊपर प्रथम ग्रैव कशेरुक (Cervical Vertebrae) का अग्रचाप (Anterior Arch) आकर जुटता है। शेष सब भाग वैसे ही हैं जैसे प्रथम ग्रैव कशेरुक (First Cervical Vertebrae) के हैं।

१—संधायक अधिप्रवर्ध-सुपीरियर आर्टिक्युलर प्रोसेस

२—पशु का शिर के लिये कूट फलक-डेमी फेसेट फार हेड आफ रिब

३—पिण्ड (Body)

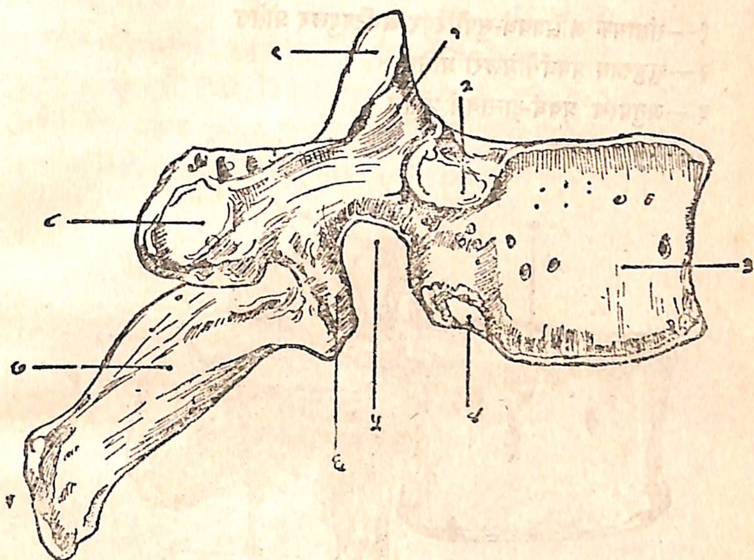
४—पशु का शिर के लिये कूट फलक-डेमी फेसेट फार हेड आफ रिब

५—अधः कशेरुक खात-इन्फीरियर वरटेब्रल नाच

६—कण्टक स्पाइन

७—पशु का गुलिका के लिये फलक-फेसेट फार टयूबरकिल आफ रिब

८—संधायक अधिप्रवर्ध-सुपीरियर आर्टिक्युलर फेसेट



चित्र सं० १६ प्ररूपी वक्ष कशेरुक

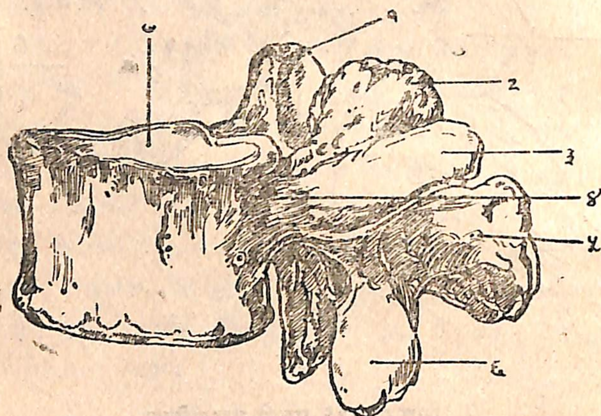
वक्ष कशेरुका (Thoracic Vertebrae)—यह संख्या में १२ होती हैं और सातवें ग्रैव कशेरुक और कटि कशेरुक के बीच में स्थित हैं। यह वक्षस्थल के पीछे का घेरा बनाती हैं। इन कशेरुकाओं में यह विशेषता होती है कि इनकी पिण्ड ग्रीवा कशेरुका की पिण्ड की अपेक्षा बड़ी होती है। इनका कशेरुक छिद्र ग्रीवा कशेरुका के कशेरुक छिद्र (Vertebral Foramen) की अपेक्षा कुछ सँकरा होता है। इन हड्डियों के दोनों तरफ अनुप्रस्थ प्रवर्धं (Transverse Process) उपस्थित होते हैं जो पसली की हड्डियों से लगे होते हैं। वक्ष कशेरुक (Thoracic Vertebrae) का कण्टक (Spine) पतला होता है, लम्बा होता है और इसके अन्त में एक बहुत ही छोटा भाग रहता है जिसके ऊपर पीठ की मांसपेशियाँ लगी रहती हैं। शेष वर्णन इस हड्डी का किया जा चुका है।

१—संधायक अधिप्रवर्ध-सुपीरियर आर्टिक्युलर प्रोसेस

२—चूचुकाय प्रवर्धमैमिलरी प्रोसेस

३—अनुप्रस्थ प्रवर्ध-ट्रान्सवर्स प्रोसेस

४—वृन्त पेडिकल



चित्र सं० १७ कटि-कशेरुक (बगल से)

५—कण्टक प्रवर्ध-स्पाइन प्रोसेस

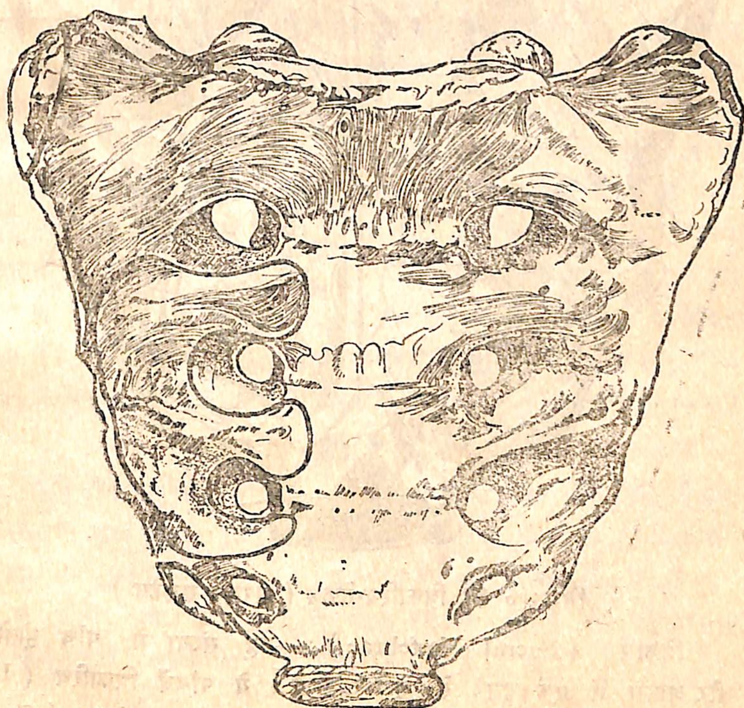
६—संधायक अधःप्रवर्ध इन्फीरियर आर्टिक्युलर प्रोसेस

७—पिण्ड-बाडी

कार्टिकशेरुका (Lumbar Vertebrae)—यह संख्या में ५ होती हैं और १२ वें वक्ष कशेरुक तथा त्रिकास्थिग्रैव के बीच में स्थित हैं। ये वक्ष कशेरुक तथा पिण्ड से बड़े होते हैं। इनके पार्श्वतल पर दोनों तरफ वृक्क (Kidneys) स्थित हैं। और वक्ष उदर मध्यस्थि के बीच का भाग इनके पिण्ड से लगा रहता है।

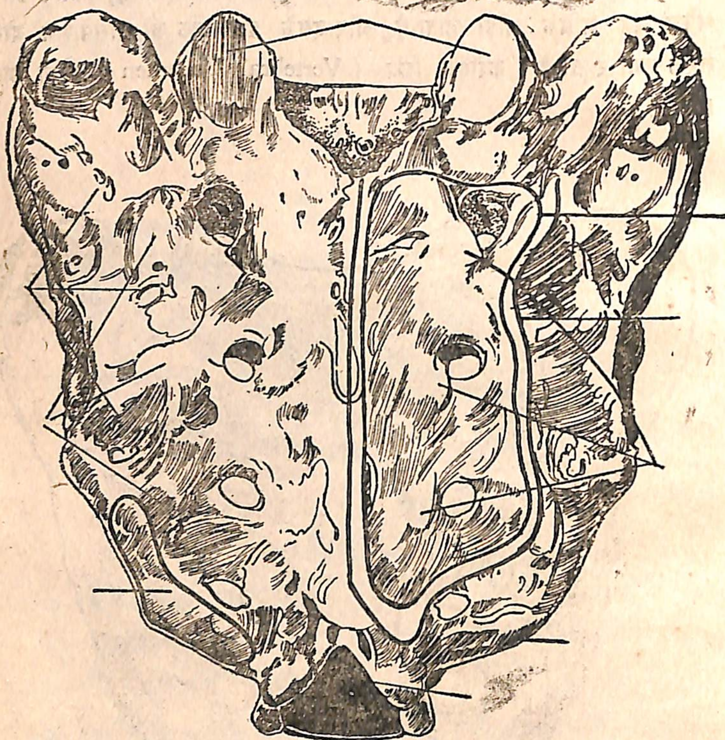
कटिकशेरुक का पिण्ड लम्बाई लिए हुए गोला है। इसकी लम्बाई बेड़े-बेड़े है, इसका पूर्वतल उन्नतोदर है तथा पश्च तल नतोदर है। इनके ऊपर तथा नीचे

का हिस्सा नतोदर है तथा खुरदरा है। इसके ऊपर अन्तरा कशेरुक चक्रिका (Inter Vertebral Cartilage) रहता है। कटिकशेरुक का अनुप्रस्थ प्रवर्ध उतना लम्बा नहीं होता जितना वक्ष कशेरुक का लम्बा होता है, लेकिन उसकी अपेक्षा यह अधिक चौड़ा होता है और इसके द्वारा पीठ की मांसपेशियाँ दोनों तरफ लगी रहती हैं। कशेरुक छिद्र (Vertebral Foramen) इसका छोटा होता है।



चित्र सं० १८ त्रिकास्थि-सेक्रम (पेल्विक सरफेस)

अनुप्रस्थ प्रवर्ध (The Transverse Processes) :—ये आयताकार होते हैं।



चित्र सं० १९ त्रिकास्थि-सेक्रम (डारसल सरफेस)

त्रिकास्थि (Sacral Vertebrae) :—यह संख्या में पाँच होती हैं और आपस में एक दूसरे से जुटी रहती हैं। ये पाँचवें त्रिकास्थि (Lumber Vertebrae) और पहले कटिकशेरुक अनुत्रिक कशेरुक (Coccygeal Vertebrae) के बीच में स्थित है। ऊपर की कशेरुक बड़ी

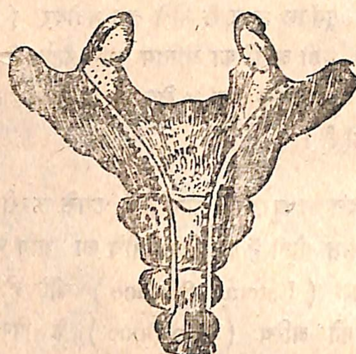
तथा चौड़ी होती है और नीचे की ऊपर की अपेक्षा पतली होती हैं। यह पाँचों हड्डियाँ दोनों श्रोणि की अस्थियों (Hip Bones) के बीच स्थित हैं और श्रोणि (Pelvis) की पश्चिम सीमा बनाती हैं। इस हड्डी के दो धरातल होते हैं पूर्वतल और पश्चतल। पूर्वतल ऊपर से नीचे तक नतोदर (Concave) होता है और इसके सम्पर्क में बड़ी आँतों का अन्तिम भाग रहता है। पूर्वतल में पिण्ड के दोनों तरफ ४ छेद बायीं तरफ तथा ४ छेद दायीं तरफ होते हैं। इनके द्वारा त्रिक तन्त्रिकायें निकलती हैं।

इस अस्थि का पश्चतल खुरदरा होता है। इसके ऊपरी भाग में पीठ की मांसपेशियाँ आकर समाप्त होती हैं। इसका नीचे का भाग चर्म से ढँका रहता है। त्रिक के पार्श्व तल (Lateral Surface) चौड़े होते हैं और खुरदरे होते हैं और श्रोणि की अस्थि (Hip Bone) के पिण्ड के अभिमध्यतल (Medial Surface) से जुटते हैं। यहीं से त्रिक श्रोणि फलक स्नायु (Sacro Iliac Ligament) लगा रहता है। इसका ऊपरी भाग बहुत चौड़ा और मोटा होता है। यह हिस्सा पाँचवें कटि कशेरुक के पिण्ड के निचले धरातल से जुटता है। ऊपरी हिस्से के पश्च भाग में एक त्रिभुजाकार गड्ढा होता है जो रचना के कशेरुक छिद्र (Vertebral Foramen) के समान होता है। इसके अन्दर सुषुम्ना नाड़ी का अन्तिम भाग प्रवेश करता है। दोनों तरफ के चाप (Arches) प्रत्येक कशेरुक (Vertebrae) से संलग्न (Fused) रहते हैं।

इसके नीचे का भाग ऊपर की अपेक्षा बहुत पतला और छोटा होता है तथा सामने को झुका होता है। इसके नीचे का धरातल अनुत्रिकास्थि (Coccyx) के ऊपरी धरातल से जुटता है। मलद्वार इसी पूर्व तल (Anterior Surface) के सम्पर्क में रहता है। इससे दो स्नायु आरम्भ होते हैं जो अनुत्रिकास्थि (Coccygeal Vertebrae) से जाकर लग जाते हैं।

———

अनुत्रिकास्थि (पुच्छ कशेरुकायें)
(Coccygeal Vertebrae)



चित्र सं० २० अनुत्रिकास्थि या कौक्किस

यह चार छोटी-छोटी कशेरुकायें होती हैं जो एक दूसरे से जुटी हुई होती हैं। ऊपर की हड्डियाँ नीचे की अपेक्षा बड़ी होती हैं। यह सामने की तरफ झुकी रहती हैं। सुषुम्ना का अन्तिम भाग (Filum Terminale) यहीं पर आकर समाप्त होता है और इस पर आकर जुटता है। इसके नीचे का हिस्सा पतला और नुकीला होता है। यहाँ से एक मांसपेशी आरम्भ होती है जिसका नाम गुद उन्नयनिका (Levator Ani–लीवटर एनाई) है। इसके दोनों तरफ दो तन्तु आरम्भ होते हैं जो त्रिक गुलिकास्थि (Sacrotuberous Ligaments) कहलाते हैं।

कशेरुकाओं का जन्म

गर्भावस्था के ८वें सप्ताह से इन हड्डियों का जन्म होता है। सबसे पहले पाँच केन्द्र उत्पन्न होते हैं। ये हरे रङ्ग के होते हैं। इनमें दो पिण्ड के केन्द्र, दो चाप के और एक कण्टक होता है। यह केन्द्र धीरे-धीरे बढ़ना शुरू हो

जाते हैं जिससे पिण्ड और चाप की उत्पत्ति होती है। जन्म के समय तक पिण्ड और चाप तैयार हो जाते हैं। जब बच्चे एक साल के हो जाते हैं तो दोनों चाप पीछे को जुट जाते हैं और वहीं से कण्टक आरम्भ होता है।

मेरुदण्ड (Vertebral Column as a whole) :—यदि हम लोग रीढ़ की जुटी हुई हड्डी की परीक्षा करें तो वह देखने में एक साधु की टेढ़ी-मेढ़ी छड़ी के समान रहती है; लेकिन साधुओं की छड़ियाँ रीढ़ की हड्डियों की अपेक्षा बहुत ज्यादा टेढ़ी होती हैं। इन हड्डियों का अभिप्राय शरीर की बहुत-सी हड्डियों को जोड़ना है और दूसरा मुख्य अभिप्राय शरीर के बोझ को लम्ब के समान नीचे की तरफ को ले जाना है। ग्रैव कशेरुक (Cervical Vertebrae) का पिण्ड तथा पाँचों कटि कशेरुक (Lumbar Vertebrae) के पिण्ड सामने को उभड़े रहते हैं और पीछे को दबे रहते हैं। इसके विपरीत बारहों वक्षीय कशेरुक (Thoracic Vertebrae) का पिण्ड तथा पाँचों त्रिकास्थि (Sacral Vertebrae) के पिण्ड क्रम से सामने की तरफ झुके रहते हैं और पीछे की तरफ उभड़े रहते हैं। त्रिक कशेरुक (Sacral Vertebrae) शरीर का बोझ दोनों पैरों की तरफ बाँट देते हैं। इस प्रकार खड़ी अवस्था में या बैठी अवस्था में शरीर सन्तुलित रहता है।

———

सिर की अस्थियां

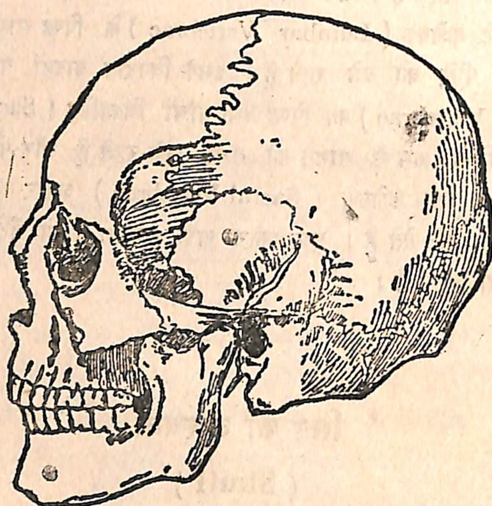
(Skull)

साधारण भाषा में कपाल शब्द से अर्थ सम्पूर्ण सिर की हड्डियों से होता है। यह बात गलत है, क्योंकि सम्पूर्ण सिर की हड्डियों में जबड़ा भी सम्मिलित है जिसके द्वारा मुख के नीचे का भाग बनता है। कपाल से अभिप्राय केवल उन हड्डियों का है जो केवल सिर के ऊपरी भाग के बनने में सम्मिलित होती हैं। यदि कपाल की परीक्षा ऊपर से की जाय तो यह पता चलता है कि यह भिन्न-

भिन्न हड्डियों से मिल कर बना हुआ है और यह हड्डियाँ आपस में एक-दूसरे को इतनी मजबूती से जकड़े हुए हैं कि बिलकुल ही हिल-डुल नहीं सकतीं और मिल कर एक सम्पूर्ण हड्डी बन गई हैं। सिवाय नीचे के जबड़े के जो कपाल के आधार में कनपटी के पास तन्तुओं से जुटा हुआ है। यह अलबत्ता ऊपर से नीचे को हिलता-डुलता रहता है।

सिर की हड्डियाँ निम्नलिखित हैं :—

१—सबसे पीछे पश्च कपालास्थियाँ (Occipital Bone) है। यह संख्या में एक होती है।



चित्र सं० २१ खोपड़ी की हड्डी

२—पश्च कपालास्थियों (Occipital Bone) के ऊपर और सामने दो चौड़ी हड्डी हैं जो पार्श्व कपालास्थियाँ (Parietal Bone) कहलाती हैं। यह संख्या में २ होती हैं।

३—पश्चकपालास्थि (Occipital Bone) के पार्श्व (Lateral Side) में और सामने को तरफ दोनों कनपटी की हड्डियाँ हैं जिन्हें शंखास्थि (Temporal Bones) कहते हैं। यह संख्या में २ होती हैं।

४—पार्श्वकपालास्थि (Parietal Bones) के सामने वह हड्डी होती है जो मस्तिष्क को ऊपर से ढँके हुए है तथा ललाट को भी बनाती है। यह सिर में सबसे सामने स्थित है। इसे पूर्वकपालास्थि (Frontal Bone) कहते हैं। यह संख्या में एक होती है।

यह सब हड्डियाँ ऊपर से देखने पर एक गुम्बद जैसी मालूम होती हैं जो दाँतेदार जोड़ (Sutures) के द्वारा एक दूसरे से जुड़ी रहती हैं और सिर के चमड़े से ढँकी रहती हैं। इनके अन्दर मस्तिष्क स्थित रहता है।

सिर पूर्व दृश्य
(Norma Frontalis)

सिर का सामने से दृश्य—यदि हम सिर की हड्डियों को सामने से देखें तो निम्नलिखित हड्डियाँ दिखलाई पड़ेंगी।

१—सबके ऊपर सामने पूर्व कपालास्थि (Frontal Bone) दिखलाई पड़ेगी। जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। यह ललाटास्थि है।

२—इसके बीचोबीच और ठीक नीचे नाक की दो हड्डियाँ हैं जो सामने और बीच में एक दूसरे से जुटी हुई हैं और ऊपर की तरफ पूर्व कपालास्थि (Frontal Bone) से जुटी हुई हैं। यह नासा अस्थियाँ (Nasal Bones) कहलाती हैं। नासा अस्थि (Nosal Bone) के दोनों तरफ दो गड्ढे हैं जिन्हें नेत्र गुहा (Orbit) कहते हैं। प्रत्येक नेत्र गुहा (Orbit) के अन्दर एक-एक नेत्र गोलक (Eye ball) रहता है।

३—नेत्र गुहा के पार्श्व में एक-एक चौकोर हड्डियाँ दोनों तरफ रहती हैं जिन्हें गाल की हड्डी या गण्डास्थि (Zygomatic Bone) कहते हैं। गाल का उभाड़ इन्हीं हड्डियों के द्वारा होता है।

४—नासास्थि (Nasal Bone) तथा गण्डास्थि (Zygomatic Bone) के नीचे ऊपर के जबड़े की हड्डियाँ होती हैं जिन्हें (Maxilla) कहते हैं ।

५—सबसे नीचे निचले जबड़े की हड्डी होती है जिसे अधःहन्वास्थि (Mandible) कहते हैं । सारांश यह है कि तीन महत्वपूर्ण अंग चेहरे में सामने की ओर स्थित हैं यानी नाक, आँख और मुख ।

———

सिर आधार दृश्य

(Norma Basalis)

कपाल की हड्डियों का आधार—यदि हम सम्पूर्ण कपाल की हड्डियों को उलट कर देखें तो सबसे पीछे पश्च कपालास्थि (Occipital Bone) का वह भाग दिखाई पड़ेगा जिसमें एक बड़ा छेद है । इस छेद को महाछिद्र (Foramen Magnum) कहते हैं । इस छेद के द्वारा सुषुम्ना शीर्ष (Medulla Oblongata) मस्तिष्क से निकल कर कशेरुकाओं के छेद के अन्दर प्रवेश करता है । सुषुम्ना शीर्ष (Medulla Oblongata) के दोनों तरफ दो गोले उभड़े हड्डियों के दो हिस्से होते हैं । जिन्हें पश्च कपालास्थि स्थूलक (Occipital Condyles) कहते हैं । महाछिद्र (Foramen Magnum) के सामने एक चौड़ी फैली हुई हड्डी होती है जो सामने जाकर पूर्व कपालास्थि (Frontal Bone) से मिल जाती है । इसे जतुकास्थि (Sphenoid Bone) कहते हैं । पश्च कपालास्थि (Occipital Bone) के पार्श्व (Lateral Side) तथा जतुकास्थि (Sphenoid Bone) के पीछे शंखास्थि (Temporal Bone) का अन्दरूनी भाग होता है जिसे अश्मभाग (Petrous Portion) कहते हैं । सबसे आगे और नीचे की तरफ तालू होता है जिसे तलत्रास्थि (Palatine Bone) कहते हैं ।

पूर्व कपालास्थि

(The Frontal Bone)

पूर्व कपालास्थि या ललाट-अस्थि :—यह हड्डी सिर की संपूर्ण हड्डियों के सामने स्थित है। इसके दो हिस्से होते हैं। एक ऊपर का गोल भाग जो पट्टक (Squama) कहलाता है और नीचे का भाग जो पिण्ड कहलाता है।

पट्टक (Squama) :—इसके दो तल होते हैं। अग्रतल तथा पश्च-तल। अग्रतल उन्नतोदर होता है और चिकना होता है। इसके ऊपर दोनों तरफ हड्डियाँ कुछ उभड़ी हुई होती हैं जैसा कि प्रायः भाग्यवान पुरुषों के ललाट में देखा गया है। अग्रतल के ऊपर एक चिपटी मांसपेशी होती है जिसे ललाटिका (Frontalis) कहते हैं। गुस्से के समय और त्योरी बदलते समय यह मांस-पेशी सिकुड़ जाती है और शान्तचित्त रहने पर वह मांसपेशी फैली रहती है। इस हड्डी का पिछला किनारा दाँतेदार (Setrated) होता है। और पार्श्व कपालास्थि (Parietal Bone) के अग्रतल से जुटता है। ललाटास्थि (Frontal Bone) के नीचे के भाग में दो चाप होते हैं जो अधि नेत्रगुहा चाप (Supra Orbital Arches) कहलाते हैं। इन दोनों चाप के अभिमध्य में बीचो-बीच नाक की हड्डी (Nasal Bones) लगी रहती है। नासास्थियों के ठीक पीछे चलनी के समान जालीदार हड्डी होती है जिसे झर्झरास्थि प्रवर्ध (Ethmoid Process) कहते हैं। पट्टक का पश्च तल नतोदर होता है और इसके अन्दर धमनियों के चिह्न बने रहते हैं। प्रमस्तिष्क का अग्रखण्ड इसी के ठीक नीचे रहता है।

पिण्ड :—पट्टक का पिण्ड, नेत्रगुहा का छत बनाता है।

पार्श्व कपालास्थि

(Parietal Bone)

चाँद की हड्डी :—यह हड्डी शरीर के सबसे ऊपर स्थित है। यह ललाटास्थि (Frontal Bone) और पश्चकपालास्थि (Occipital Bone)

के बीच में रहती है। यह हड्डी चिपटी नहीं बल्कि गोली होती है और संख्या में दो होती है। इसके दो धरातल तथा चार किनारे होते हैं। इसका ऊपरी धरातल (Superior Surface) चिकना (Smooth), उभड़ा हुआ (Convex) होता है। दोनों तरफ की पार्श्व कपाल हड्डियाँ बीच में एक-दूसरे से मिलकर एक गुम्बद बनाती हैं जो प्रमस्तिष्क के पार्श्व खण्ड को पूरे तौर से ढँके रहता है।

पार्श्वखण्ड के नीचे का धरातल नतोदर होता है और खुरदरा होता है। इसके अन्दर छोटी धमनियों के चिन्ह बने रहते हैं। यह धरातल मस्तिष्क के सम्पर्क में रहता है। पार्श्व कपालास्थि का अग्र किनारा सीधा होता है और दाँतेदार होता है। यह ललाटास्थि के पट्टक के पश्चधार से जुटता है। पार्श्व कपालास्थि का पश्चधार कुछ घूमा होता है और दाँतेदार होता है। यह पश्च कपालास्थि के पट्टक अग्रधारा से जुटता है। पार्श्व कपालास्थि का पार्श्व धारा अन्दर के हिस्से में पतला होता है और शंखास्थि (Temporal Bone) के पट्टक पर आकर लग जाता है। दोनों पार्श्व कपालास्थि के अभि मध्यधारा आपस में बीच में एक-दूसरे से मिल जाते हैं।

बचपन में यह दोनों हड्डियाँ पाँच—छः-महीने तक नहीं जुटतीं और वह स्थान अक्सर नरम और मुलायम रहता है। बाद में यह हड्डियाँ आपस में जुट जाती हैं।

पश्च कपालास्थि
(Occipital Bone)

यह सिर के सबसे पीछे स्थित है। इसके दो हिस्से होते हैं। १—पट्टक, २—पिण्ड।

पिण्ड और पट्टक (Squama) के बीच में एक बहुत बड़ा गोला छेद होता है जिसे महाछिद्र (Foramen Magnum) कहते हैं।

पट्टक (Squama) :—यह सबसे पीछे की ओर स्थित है। इसके दो तल होते हैं और तीन धारा होती हैं। पट्टक का पश्च तल उभड़ा हुआ रहता

है। इसके बीचो-बीच में एक छोटी गोली हड्डी का उभाड़ होता है जिसे पश्च कपाल गुलिका (Occipital Tubercle) कहते हैं। इससे एक बहुत मोटा मजबूत तन्तु आरम्भ होता है जो रीढ़ की हड्डियों के ऊपर को श्रेणियों में लगा रहता है। इसके दोनों तरफ तीन उभड़ी हुई लकीरें बनी रहती हैं जिन्हें अधि, मध्य एवं अधःमन्या रेखा (Superior Neuchal Line, Middle Neuchal Line, Inferior Neuchal Line) कहते हैं। इन लकीरदार उभाड़ों में मांसपेशियाँ आरम्भ होती हैं जो गर्दन, रीढ़ की हड्डियों तथा कुछ पीठ में लगी रहती हैं। इस हड्डी का अग्रधार दाँतेदार होता है और पार्श्व कपालास्थि के पश्चधारा (Posterior Border) से जुटता है। इस हड्डी का पार्श्व धारा शंखास्थि (Temporal Bone) के कर्णमूल प्रवर्ध (Mastoid Proces) के पिछले किनारे से जुटता है। पट्टक का अग्रतल नतोदर होता है और अन्दर की तरफ रहता है। यह दो हड्डियों के द्वारा जो खड़ी रहती हैं तथा बेंड़ी रहती हैं और एक दूसरे को काटती हैं, चार हिस्सों में विभाजित होती हैं। दो हिस्से ऊपर के तथा दो हिस्से में नीचे के। दोनों हिस्से में पश्च खण्ड (Occipital Lobe) का अन्तिम भाग स्थित रहता है और नाचे के हिस्से में लघु मस्तिष्क रहता है।

पिण्ड :—यह महाछिद्र (Foramen Magnum) के अग्रभाग (Anterior Part) में स्थित है। यह चौकोर होता है। इसका नाम पश्च कपालास्थि का अधारी भाग (Basilar Portion of the Occipital Bone) है। इसका सामने का किनारा जतुकास्थि (Sphenoid Bone) के पिण्ड के पश्च किनारे से मिलता है और इसका पार्श्व भाग शंखास्थि से पिट्रस भाग के दोनों तरफ से जुटता है। महाछिद्र (Foramen Mangum) से जैसा कि ऊपर लिखा गया है सुषुम्ना शीर्ष (Medulla Oblongate) निकलता है। महाछिद्र के दोनों तरफ हड्डियों के दो लम्बे उभाड़ होते हैं।

———

शंखास्थि

(Temporal Bone)

यह हड्डी के सिरे के दोनों तरफ पार्श्व में स्थित है। इसके ऊपर पार्श्व कपालास्थि (Parietal Bone) है। सामने ललाटास्थि (Frontal Bone) है। पीछे पश्च कपालास्थि (Occipital Bone) और नीचे के जबड़े का ऊपरी सिरा लगा हुआ है। इस हड्डी के पांच हिस्से होते हैं :—

(१) स्क्वमा (Squama), (२) कर्ण मूल प्रवर्ध (Mastoid Process), (३) शंखास्थि का पिट्रस भाग (Petrous portion of the Temporal Bone), (४) शर प्रवर्ध (Styloid Process—स्टाइलाईड प्रोसेस), (५) गण्ड प्रवर्ध (Zygomatic Process)।

पट्टक (Squama) :—यह शंखास्थि का वह चौड़ा हिस्सा है जो खोपड़ी के पार्श्व भाग में स्थित है। इसका ऊपरी हिस्सा पतला और गोला होता है और पार्श्व कपालास्थि की पार्श्व धारा से जुटता है। इसका सामने का हिस्सा ललाटास्थि से जुटता है। इसके दो तल होते हैं—(१) अभिमध्य, (२) पार्श्व।

पार्श्व तल—(Lateral Surface) चिकना तथा उभरा हुआ रहता है और एक पतली झिल्ली से ढंका हुआ रहता है जिसे शंख प्रावरणी (Temporal Fascia) कहते हैं।

इससे एक मांसपेशी आरम्भ होती है जिसे शंखच्छदिका (Temporalis Muscle) कहते हैं। पट्टक का मन्यातल नतोदर और खुरदरा (Rough) होता है। इसके संपर्क में मस्तिष्क का वह भाग होता है जिसे शंखीय खण्ड (Temporal Lobe) कहते हैं।

कर्ण मूल प्रवर्ध—(Mastoid Process) का कनपटी के पीछे का हिस्सा है जो पश्च कपालास्थि के पट्ट के अग्रभाग से जुटता है। यह कान के

छेद के पीछे होता है। इस भाग में अक्सर फोड़े हुआ करते हैं जो बाद को प्रायः भयानक रूप धारण करते हैं।

शंखास्थि का पिट्रस भाग (Petrous portion of the Temporal Bone) :—यह कनपटी की हड्डी का वह हिस्सा है जो सिर के भीतर स्थिर रहता है। इसके पश्च भाग में पश्च कपालास्थि तथा अग्रभाग में जतुकास्थि (Sphenoid) रहती है। इस हड्डी के अन्दर सुनने के अंग स्थिर रहते हैं।

शर प्रवर्ध (Styloid Process):—यह एक बहुत पतला हिस्सा सलाई के आकार का होता है जो नीचे की तरफ स्थिर रहता है। इस हड्डी से दो स्नायु आरम्भ होते हैं—(१) कण्ठिका शर स्नायु (Stylo-hyoid Ligament) कहलाता है। यह स्नायु शर प्रवर्ध से आरम्भ होता है और कण्ठिकास्थि पर जुटता है तथा दूसरा तन्तु (२) शर अधो हनु स्नायु (Stylomendibulum Ligament) कहलाता है। यह शर प्रवर्ध से आरम्भ होता है और नीचे जबड़े से जुटता है।

गण्डप्रवर्ध (Zygomatic Process) :—यह एक पतली लम्बी हड्डी होती है। यह कान के छेद के पास से शुरू होती है और सामने गण्डास्थि (Zygomatic Bone) से जाकर जुट जाती है।

शंखास्थि (Temporal Bone) के दो छेद होते हैं—(१) कान का छेद, (२) नीचे की तरफ का छेद जिसे Carotid Canal कहते हैं और जिससे Internal Carotid Artery मस्तिष्क के अन्दर प्रवेश करती है।

जतुकास्थि

(Sphenoid Bone)

यह एक चौड़ी हड्डी है जो मस्तिष्क के आधार पर स्थिर रहती है और जिसका आकार डैना फैलाए हुए चमगादड़ के समान है। इसके दो भाग होते हैं—(१) पिण्ड, (२) पक्षक (Ala)।

पक्षक (Ala) :—यह वह फैला हुआ हिस्सा रहता है जिसके ऊपर वृहद मस्तिष्क का आधार रहता है। इसके सामने का हिस्सा ललाटास्थि के पिण्ड के पिछले भाग के सम्पर्क में रहता है और इसके पीछे का भाग शंखास्थि के पिट्रस भाग के अग्र भाग से लगा रहता है।

पिण्ड (Body)—यह चौकोर, पतला तथा छोटा भाग होता है जो दोनों पक्षक के बीचोबीच होता है। इसके पीछे का हिस्सा पश्चकपालास्थि के आधारी भाग से जुटता है। इसके ऊपरी भाग के ऊपर पीयूष ग्रन्थि (Hypophysis Cerebri) तथा Peneal Body स्थित है।

अन्य अस्थियाँ
(Bones of Face)

इनके अन्तर्गत निम्नलिखित हड्डियाँ सम्मिलित हैं— (१) ललाटास्थि (Frontal Bone), (२) गण्डास्थि (Zygomatic Bone), (३) ऊर्ध्व हन्वास्थि, (Maxilla) (४) नासास्थि (Nasal Bone), (५) अधोहन्वास्थि (Mandible) आदि।

ललाटास्थि (Frontal Bone)—इसका वर्णन जैसा कि पहले हो चुका है। इसके दो हिस्से होते हैं (१) मस्तिष्क के ढक्कन अर्थात् करोटि (Cranium) के काम में आता है, (२) ललाट बन जाता है।

इसके नीचे का हिस्सा बोचो-बीच में नाक की हड्डी से जुटता है और नाक की हड्डी की दोनों तरफ ललाटास्थि का निचला भाग नेत्रगुहा (Eye Orbit) का ऊपरी भाग बनाता है।

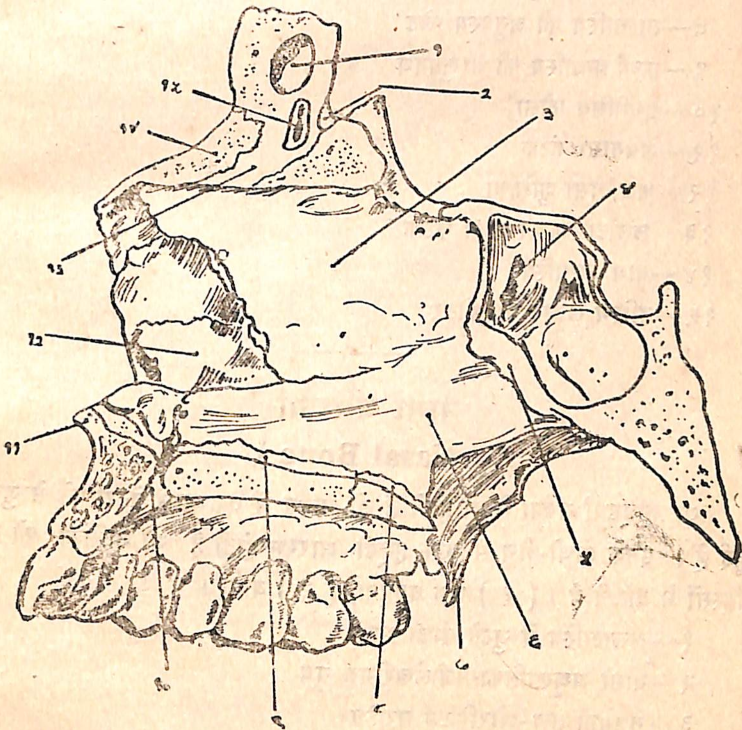
ललाटास्थि से एक मांसपेशी आरम्भ होती हैं जिसे ललाटिका (Frontalis) कहते हैं जिसके सिकुड़ने तथा फैलने से रोष या गुस्सा, प्रसन्नता तथा संतोष के चिह्न प्रतीत होते हैं।

गण्डास्थि (Zygomatic Bone)—यह दो आयताकार हड्डियाँ हैं जो गाल के दोनों ओर स्थित हैं इसके चार भाग होते हैं—(१) एक

ऊपरी भाग जो नेत्र (Eye Orbit) का आधार बनता और नासास्थि से मिलता है। इसका पार्श्व भाग, शंखास्थि के गण्ड प्रवर्ध से जुटता है। इसके नीचे का भाग उर्ध्व हन्वास्थि से जुटता है। इसका बाहरी धरातल चर्म से ढंका रहता है।

१—वाम ललाट वायुकोटर

२—छिद्र सीकम



चित्र सं० २२ नासापुट (नेजल सेप्टम)

३—झर्झरास्थिका का लम्ब फलक (परपेण्डिक्युलर प्लेट आफ इथमायड बोन)

४—जतुकास्थि वायुकोटर

५—वोमर अस्थि का वाम पक्षक

६—वोमर

७—टेरिगवायड हेमुलस

८—ताल्वास्थि की अनुप्रस्थ प्लेट

९—ऊर्ध्व हन्वास्थि की तालुप्रवर्ध

१०—इन्सीसिव फोसा;

११—अग्रनासा कंटक

१२—अधःनासा शुक्तिका

१३—ललाटास्थि का नासा कंटक

१४—वाम नासास्थि

१५—दक्षिण ललाट वायुकोटर

———

नासा अस्थियाँ
(Nasal Bone)

यह हड्डियाँ संख्या में दो होती हैं जो आपस में एक दूसरे के सामने से जुटी हुई हैं। इनके बीचो-बीच से एक हड्डी आरम्भ होती है जो नासिका को दो हिस्सों में बाँटती है। (१) एक दाहिना, (२) बायाँ।

१—ललाटास्थि से जुटने वाला भाग

२—नासा अश्रुखातिका-नेजोलैंखरीमल ग्रूव

३—नेत्रगुहा तल-ओरबिटल सरफेस

४—अधःनेत्रगुहा खातिका—इन्फ्रा ओरबीटल ग्रूव

५—जत्रुका प्रवर्ध

६—दन्त नाल मुख—ओपनिंग आफ डेण्टल कैनाल

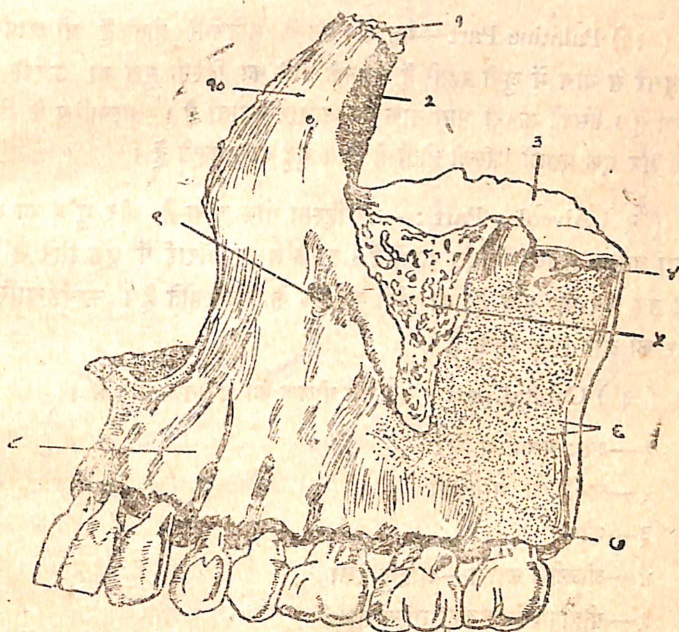
७—गुलिका ट्यूबरोसिटी

८—कैनाइन इमिनेन्स

९—इन्फ्रा ओरबिटल फारामेन--अधः नेत्र गुहा छिद्र

१०—ललाट प्रवर्ध-फ्रन्टल प्रोसेस

नासास्थि का ऊपरी हिस्सा ललाटास्थि के निचले तथा मध्य भाग से जुटता है। नासास्थि के अभिमध्य तल के ऊपर बहुत पतली झिल्ली होती है



चित्र सं० २३—ऊर्ध्वहन्वास्थि (मेग्जिला)

जो अन्दर की तरफ रहती है और यहां सूंघने की तन्त्रिकायें ललाटास्थि के निचले छेद को पार करके ऊपर मस्तिष्क को जाती है। नासास्थि का पार्श्व तल नेत्रगुहा की अभिमध्य सीमा बनाती है और ऊर्ध्वहन्वास्थि से भी जुटता

है। नासास्थि के नीचे का भाग नरम हड्डी से जुटा रहता है। जिसे नासा उपास्थि कहते हैं।

उर्ध्वहन्वास्थि (Maxilla) :—यह ऊपर के जबड़े की हड्डियाँ हैं जो संख्या में दो होती हैं और आपस में एक-दूसरे से बीच में जुड़ी रहती हैं। इनके मुख्य तीन भाग होते हैं (१) Palatine Part (२) Alveolar Part, (३) Orbitai Part.

(१) Palatine Part—यह दो पतली हड्डियाँ होती हैं जो आपस में एक दूसरे से बीच में जुड़ी रहती हैं। इनके नीचे का हिस्सा मुख का ऊपरी भाग बनाता है। इसका ऊपरी भाग नाक का आधार बनाता है। तालवास्थि के पिछले हिस्से पर एक पतली झिल्ली होती है जिसे मृदु तालु कहते हैं।

(२) Alveolar Part :—यह हिस्सा गोल होता है और मुँह का ऊपरी जबड़ा बनाता है जिसमें दाँत रहता है। इसके अन्दर घेराई में एक सिरे से दूसरे सिरे तक १६ छेद होते हैं जो दाँतों की जड़ के लिये होते हैं। ऊर्ध्वहन्वास्थि से ऊपर का ओंठ लगा रहता है।

(३) Orbital part—यह नेत्र गोलक का धरातल भाग है।

१—अधः हन्वास्थि शिर

२—चर्वणिका मांसपेशी

३—कोण

४—ओब्लीक लाइन—अऋजु रेखा

५—ग्रीवापार्श्वच्छदिका मांसपेशी

६—सृकु अवनमनिका मांसपेशी

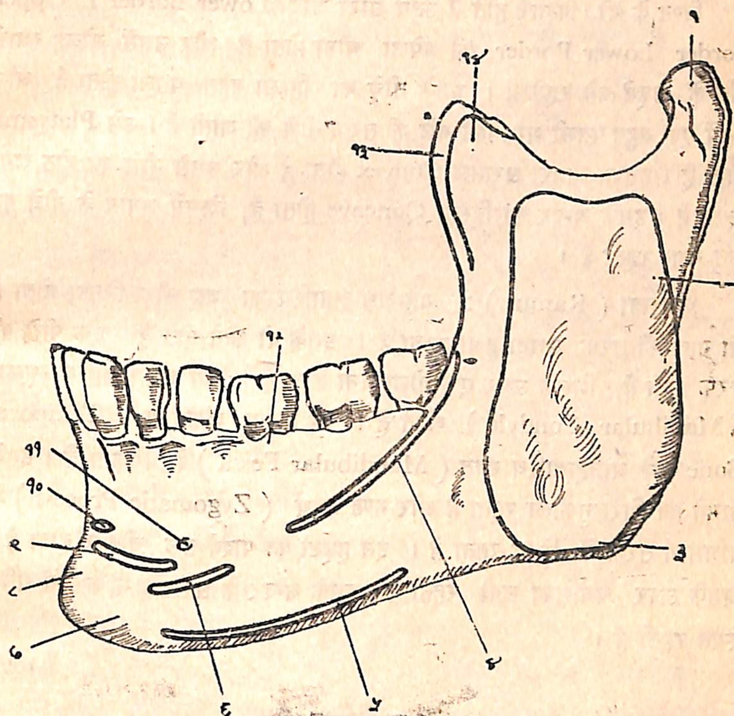
७—चिबुक गुलिका (मेन्टेल ट्यूबरकिल)

८—चिबुक प्रोद्वर्ध (मेन्टेल प्रोट्यूबरेन्स)

९—निम्न ओष्ठ अवनमनिका मांसपेशी (डिप्रेसर लेबिआई इन्फीरियोरिस)

१०—अधर उन्नमनिका मांसपेशी

११—चिबुक छिद्र (मेन्टेल फोरामेन)
१२—दन्तधारा (एल्वियोलस)



चित्र सं० २४—अधः हन्वास्थि (मेण्डिबल)

१३—शंखच्छदिका (टेम्पोरैलिस) मांसपेशी
१४—कोरोनायड प्रोसेस

अधोहन्वास्थि (Mandible) :—यह दो हड्डियाँ होती हैं जो आपस में एक-दूसरे के बीच में जुटी रहती हैं। इसके दो हिस्से होते हैं।

१—पहला हिस्सा वह है जिसमें दाँत लगा रहता है जिसे पिण्ड कहते हैं।

२—बगल का चौड़ा हिस्सा जिसे प्रशाखा (Ramus) कहते हैं।

पिण्ड के दो किनारे होते हैं ऊर्ध्व धारा और Lower Border। Upper Border Lower Border की अपेक्षा चौड़ा होता है और उसमें सोलह स्थाई दाँत के गड्ढे बने रहते हैं। इसके नीचे का हिस्सा बहुत पतला होता है और उसमें एक बहुत पतली मांसपेशी गले की तरफ नीचे को जाती है। उसे Platysma कहते हैं। इसका बाहरी धरातल Convex होता है और उससे नीचे का होठ लगा रहता है। इसके अन्दर का हिस्सा Concave होता है, जिसमें जबान के नीचे का तन्तु लगा रहता है।

प्रशाखा (Ramus) :—यह अधोहन्वास्थि का वह चौड़ा हिस्सा होता है जो गाल की तरफ उभड़ा हुआ रहता है। इसके दो कोने होते हैं—एक पीछे की तरफ होता है, जिसके ऊपर एक गोला बना होता है। उसे अधोहन्वास्थि स्थूलक (Madibular Condyle) कहते हैं। यह हिस्सा शंखास्थि (Temporal Bone) के अधोहन्वास्थि खात (Mandibular Fossa) से मिलता है। इसके सामने का सिरा नुकीला रहता है और गण्ड प्रवर्ध (Zygomatic Process) के अभिमध्य तरफ में स्थित रहता है। इस हड्डी का पार्श्व तल चौकोर होता है। जिसके ऊपर चर्वणिका लगी रहती है। इसके अन्दर के धरातल में कर्णपूर्व ग्रन्थि स्थित रहती है।

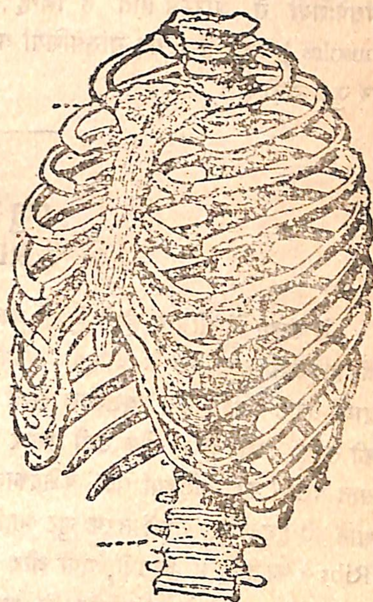
उरोस्थि

(Sternum)

यह वक्ष की अस्थि है जो वक्षस्थल के बीचो-बीच स्थित है। यह करीब सात इञ्च लम्बी है। ऊपर का हिस्सा थोड़ा चौड़ा है और नीचे नुकीला होता है। इसके दो धरातल होते हैं तथा दो किनारे होते हैं (१) ऊपर का चौड़ा हिस्सा जिसे उरोस्थि मुष्ठि (Manubrium Sterni) कहते हैं। बीच का भाग पिण्ड

कहलाता है। (२) नीचे का अन्तिम भाग नुकीला और छोटा होता है, जिसे उरःपत्रक (Xiphistesnum) कहते हैं।

उरोस्थि मुष्टि (Manubrium Sterni)—यह करीब-करीब चौकोर हड्डी होती है जिसके ऊपर का हिस्सा कुछ गोल तथा दबा हुआ होता है जिसके दोनों किनारों पर एक-एक गड्ढे लगे रहते हैं जिसमें जत्रुक (Clavicle) हड्डी जुटी रहती है। वास्तव में इसी स्थान पर समूची बाँह धड़ से जुटी होती है। इसके नीचे का भाग उरोस्थि (Sternum) के पिण्ड के ऊपरी हिस्से से जुटता है। जिस स्थान पर यह दोनों हड्डियाँ आपस में जुटती हैं उसके दोनों किनारों पर गड्ढे रहते हैं जिन पर पहली तथा दूसरी पसली की हड्डियों के सामने का भाग आकर जुटता है।



चित्र संख्या २५—पसलियाँ

उरोस्थि पिण्ड (Body of the Sternum)—इसका लम्बा हिस्सा ऊपर से नीचे तक रहता है जो ठीक दाहिने ग्राहकोष के सामने स्थित है। इसके दोनों तरफ गड्ढे बने होते हैं जिनमें तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठवीं तथा सातवीं पसली की हड्डी के सामने का हिस्सा इस हड्डी से जुटा रहता है। सामने का हिस्सा चर्म के पीछे स्थित रहता है और इसके दोनों तरफ से वृहत वक्षच्छदिका (Pectoralis Major Muscles) लगी होती है।

वक्ष की हड्डी का अन्तिम भाग जो बहुत छोटा होता है और नीचे को

स्थित है वह उर:पत्रक (Xiphisternum) कहलाता है। इसके पिछले भाग पर मध्यच्छदिका (Diaphragm) लगा रहता है और इसके निचले भाग दो मांसपेशियों से आरम्भ होते हैं जिन्हें समादरिका (Rectus Abdominis muscles) कहते हैं। यह मांसपेशियाँ यहाँ से आरम्भ होकर नीचे श्रोणि अस्थि पर जुट जाती हैं।

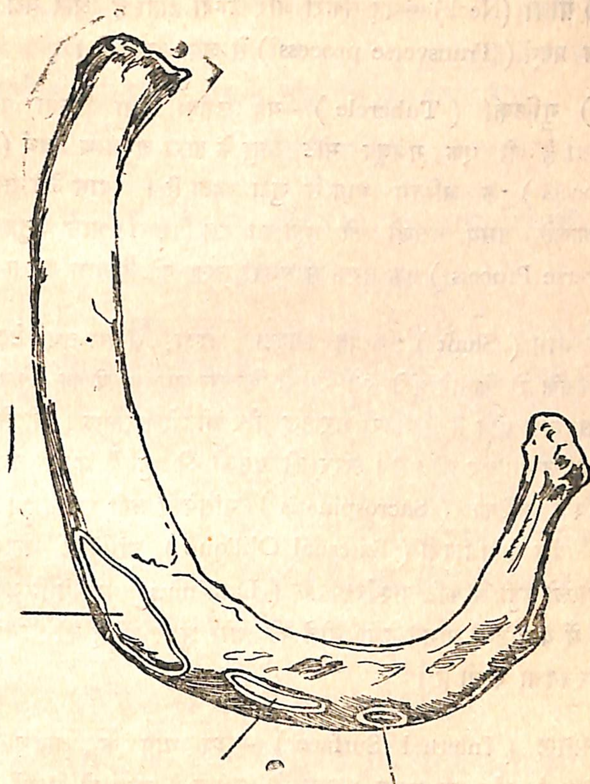
———

पशु ंकायें
(Ribs)

ये संख्या में चौबीस होती हैं जो वक्षस्थल की दीवार बनाती हैं। १२ पसली की हड्डियाँ वक्षस्थल के दाहिनी तरफ स्थित हैं और १२ पसली की हड्डियाँ बायीं तरफ स्थित हैं। वक्षस्थल देखने में ऊपर की तरफ सँकरा है और नीचे की तरफ चौड़ा है। ठीक उसी प्रकार से जैसे एक पिंजड़ा होता है। ऊपर की सात पसली की हड्डियाँ वक्ष कशेरुकाओं से आरम्भ होती हैं और सामने आकर सीने की हड्डी के दोनों तरफ जुट जाती हैं इन्हें वास्तविक पशु ंकायें (True Ribs) कहते हैं। आठवीं, नवीं और दसवीं पसली की हड्डियाँ एक तरफ की आपस में एक दूसरे से कार्टिलेज के द्वारा जुट जाती हैं। इसी प्रकार दूसरे तरफ की हड्डियों के सामने के किनारे आपस में एक दूसरे से कार्टिलेज के द्वारा जुट जाते हैं। अन्तिम दो पसली हड्डियाँ वक्ष कशेरुका से आरम्भ होती हैं, मगर ये किसी से जुटती नहीं और अलग-अलग लगी रहती हैं। इन्हें कूट पशु ंकायें (Floating Ribs) कहते हैं।

यदि हम एक बीच की पसली की हड्डी की परीक्षा करें तो देखेंगे कि पसली की हड्डी के तीन हिस्से होते हैं—

(१) कशेरुक अन्त भाग (Vertebral End)
(२) मध्य भाग (Shaft)
(३) अग्र भाग (Anterior End)



चित्र सं० २६—द्वितीय पसली की हड्डी

कशेरुका अन्त भाग (Vertebral End)--यह हिस्सा पीछे को स्थित होता है। इसके तीन भाग होते हैं—(१) शिर, (२) ग्रीवा, (३) गुलिका।

(१) शिर (Head)—यह गोला है और आपस के दो वक्ष कशेरुकाओं के पार्श्वतल (Lateral Side) के गड्ढे में जुटता है।

(२) ग्रीवा (Neck)—यह सँकरा और लम्बा होता है और वक्ष कशेरुका से अनुप्रस्थ प्रवर्ध (Transverse process) से लगा रहता है।

(३) गुलिका (Tubercle)—यह उभड़ा हुआ हिस्सा पसली की हड्डी का होता है जो एक मजबूत मोटे तन्तु के द्वारा अनुप्रस्थ प्रवर्ध (Tranverse Process) के अन्तिम भाग से जुटा रहता है। श्वास लेते समय और श्वास निकालते समय पसली की हड्डी का यह पिछला भाग अनुप्रस्थ प्रवर्ध (Transverse Process) एक तरफ से दूसरी तरफ को फिसला करता है।

मध्य भाग (Shaft) :—यह चिपटा, लम्बा, सँकरा तथा टेढ़ा हिस्सा होता है, जिसके दो किनारे होते हैं। ऊपरी किनारा तथा नीचे का किनारा और इसके दो धरातल होते हैं—बाहरी धरातल और भीतरी धरातल। बाहरी धरातल चिकना तथा उन्नतोदर होता है। ऊपर की पसली की हड्डी के बाहरी तथा पिछले हिस्से में त्रिक कंटिका (Sacrospinatis) मांसपेशी लगी रहती है। बीच की हड्डियों से तिर्यक् बाह्यओदरी (External Obliquo) मांसपेशी आरम्भ होती है और निचली हड्डी से कटि पार्श्वच्छदिका (Latisiums) मांसपेशी लगी रहती है। पार्श्व में ये हड्डियाँ सामने तथा नीचे की ओर झुकी हुई हैं और इनके बाहरी धरातल पर त्वचा रहती है।

अन्तःतल (Internal Surface)—मध्य भाग के अन्दर का भाग नतोदर होता है और एक लम्बा धरातल के उभाड़ के द्वारा दो हिस्सों में विभाजित रहता है। एक ऊपर का हिस्सा, एक नीचे का हिस्सा। नीचे के हिस्से में अन्तरापशुंका धमनी शिरा तथा तन्त्रिका (Intercostal Arteries, Intercostal Vein और Intercostal Nerves) लगी रहती है। इस हड्डी के दो किनारे होते हैं। एक ऊपरी तथा दूसरा निचला। ऊपर की पसली की हड्डी के नीचे के किनारे से जो मांसपेशियाँ आरम्भ होती हैं वे नीचे की दूसरी पसली की हड्डी के ऊपरी किनारे पर समाप्त होती हैं। यह मांसपेशी दो होती हैं—(१) बाह्य-अन्तरा पशुंका (Intercostalis externus) तथा (२) आभ्यन्तर अन्तरापशुंका

(Intercostolis Internus) मांसपेशियाँ हैं। पसली की हड्डियों के अंदर के धरातल के सम्पर्क में फेफड़े की झिल्ली तथा परिफुपफुस रहता है। इस प्रकार ये सम्पूर्ण पसली की हड्डियाँ वक्षस्थल के अङ्गों की रक्षा करती हैं।

हाथ और पैर की अस्थियाँ या शाखास्थियाँ

(Bones of Extremities)

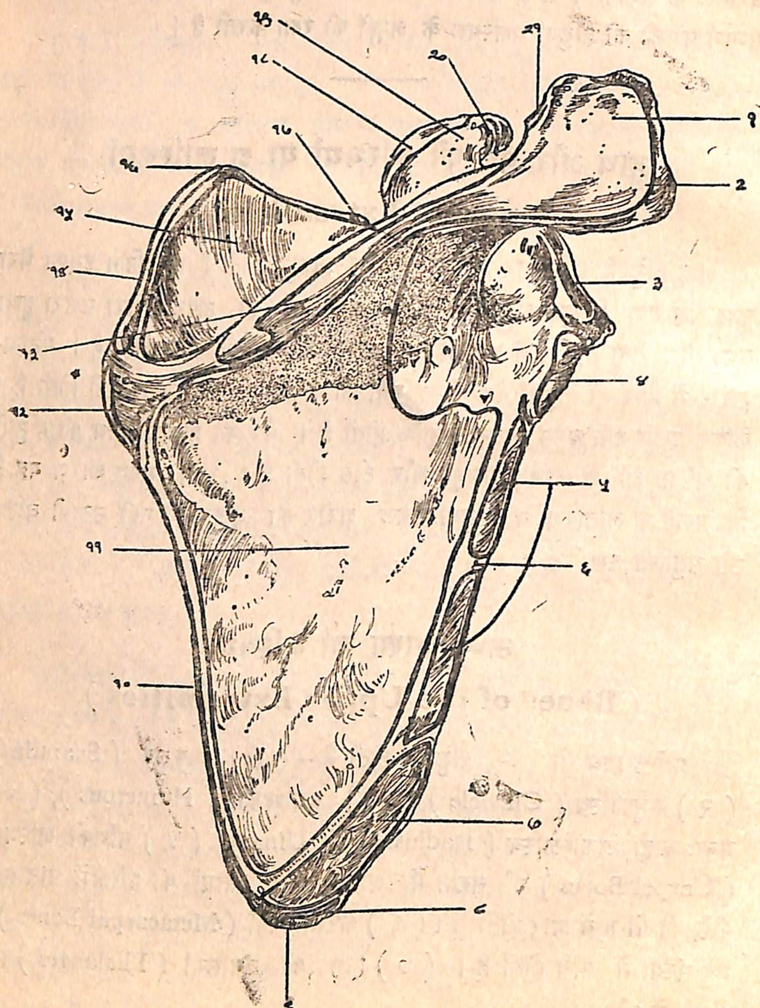
यह हड्डियाँ अधिकतर लम्बी तथा बेलनदार होती हैं। लेकिन इनका घेरा कुछ अंश तक त्रिभुजाकार होता है। इन हड्डियों का ऊपरी शिरा उभरा हुआ तथा गोल होता है, नीचे का हिस्सा ऊपर की अपेक्षा चौड़ा होता है। मनुष्य-शरीर में हाथ की हड्डियाँ पैर की हड्डियों की अपेक्षा पतली तथा छोटी होती हैं। लेकिन इसमें गति बहुत स्वतन्त्रतापूर्वक होती है। पैर की हड्डियाँ, हाथ की हड्डियों की अपेक्षा अधिक लम्बी, मजबूत और ठोस होती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि चलने के अतिरिक्त ये हड्डियाँ केवल शरीर का बोझ ही नहीं उठातीं बल्कि उसे संतुलित रखती हैं।

ऊर्ध्व शाखा की अस्थियाँ

(Bones of the Upper Extremities)

प्रत्येक हाथ में ३२ हड्डियाँ होती हैं—(१) अंसफलक (Scapula), (२) जत्रुकास्थि (Clavicle), (३) प्रगण्डिका (Humerous), (४) अन्तः बाह्य प्रकोष्ठास्थि (Radius and Ulna), (५) मणिकी अस्थियाँ (Carpel Bones) जो संख्या में आठ होती हैं, सामने की पंक्ति में चार तथा पीछे की पंक्ति में चार होती हैं। (६) करभास्थियाँ (Metacarpal Bones)। यह संख्या में पाँच होती हैं। (७) हाथ की उँगलियाँ (Phalanges)। ये संख्या में चौदह होती हैं।

अंसफलक
(Scapula)



चित्र सं० २७ स्केपुला

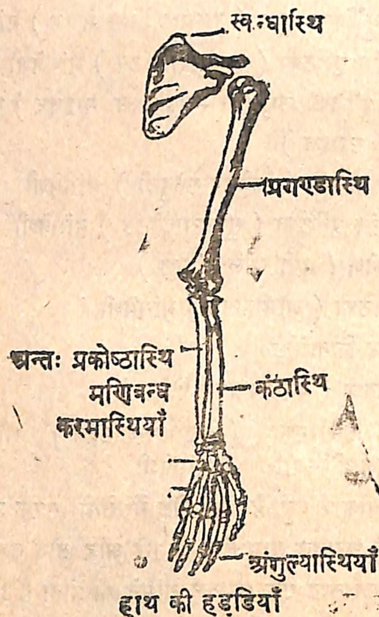
१—अंश कूट (एक्रोमियन)
२—त्रिकोणिका (डेल्टायड मांसपेशा)
३—अंसगर्त (ग्लिनायड कैविटी)
४—त्रिशिरस्का (ट्राइसेप्स मांसपेशी-लौंग हेड)
५—लघु अंसाभिवर्तिका (टीरीज माइनर मांसपेशी)
६—ग्रूव फार सरकम्पलेक्स स्केपुलर धमनी
७—वृहत् अंसाभिवर्तिका (टीरीज मेजर मांसपेशी)
८—कटिपार्श्वच्छदिका (लेटिसमस डोरसाई मांसपेशी)
९—अधः कोण (इन्फीरियर ऐंगिल)
१०—समचतुर्भुजिका वृहत (राम्बाइडियस मेजर) मांसपेशी
११—अधः अंस पृष्ठिका (इन्फ्रास्पाइनेटस) मांसपेशी
१२—समचतुर्भुजिका लघु (राम्बाइडियस माइनर) मांसपेशी
१३—कंटक (स्पाइन)
१४—अंसउन्नमनिका (लिवेटर स्केपुली) मांसपेशी
१५—ऊर्ध्व अंस पृष्ठिका (सुप्रास्पाइनेटस) मांसपेशी
१६—ऊर्ध्व कोण (सुपीरियल ऐंगिल)
१७—अंस कंठिका (ओमोहाइड) मांसपेशी
१८—कोनायड लिगामेन्ट
१९—तुण्ड प्रवर्ध (कोराक्वायड प्रोसेस)
२०—प्रगण्ड द्विशिरस्का (बाइसेप्स-शार्टहेड) और तुण्ड प्रगण्डिका (कारेकोब्रेकियालिस) मांसपेशी

यह एक त्रिभुजाकार हड्डी है जो पीठ में दोनों तरफ ऊपरी हिस्से में स्थित है। इस हड्डी के दो धरातल तथा तीन किनारे और तीन उभाड़ होते हैं। इसका एक धरातल पीछे का तथा एक धरातल सामने का होता है। पीछे के धरातल के ऊपरी भाग में एक हड्डी जो तिरछी होती है वह उभड़ी रहती है इस हड्डी को कंटक (Spine–स्पाइन) कहते हैं। कंटक (Spine) अंसफलक (Scapula) के पिछले धरातल को दो भागों में विभाजित करता है। नीचे का चौड़ा तथा

बड़ा हिस्सा जिसे अधः अंसपृष्ठिका खात (Fossa Infraspinata) कहते हैं यहाँ से एक मांसपेशी आरम्भ होती है जिसे अधः अंशपृष्ठिका (Infraspinatus Muscles) कहते हैं। कंटक (Spine) का ऊपरी भाग सँकरा होता है जिसे ऊर्ध्वअंश पृष्ठिका खात (Fossa Supraspinata) कहते हैं इससे भी एक मांसपेशी आरम्भ होती है।

ऊर्ध्व शाखा की अस्थियां

(Bones of Upper Extremities)



ऊर्ध्व शाखा की अस्थियाँ—चित्र सं० २ ८

१—अंसफलक (Scapula)—यह एक त्रिभुजाकार हड्डी है जिसके तीन किनारे, दो धरातल और तीन हड्डियों के उभाड़ होते हैं। एक छिछला तश्तरी के समान गड्ढा होता है जो अंसफलक के पार्श्वतल में स्थित है। इस गड्ढे को अंसगर्त (Glenoid Cavity) कहते हैं।

अंसफलक का पहला धरातल पूर्व में रहता है और दूसरा पश्चिम में होता है। इसका अग्र तल ऊपर से नीचे तक नतोदर होता है और पीछे पसली की हड्डियों से लगा रहता है। इससे एक त्रिभुजाकार मांशपेशी निकलती है। जिसका नाम अधो अंसफलकिका (Sub-Scapularis) है।

इसका पश्चतल (Posterior Surface) उन्नतोदर होता है और एक कंटक के द्वारा दो हिस्सों में बँट जाता है। ऊपर का $\frac{1}{5}$ और नीचे का $\frac{4}{5}$ हिस्सा होता है। ऊपर के सँकरे भाग से एक मांसपेशी निकलती है जिसे ऊर्ध्व अंसपृष्ठिका (Supraspinatus Muscle) कहते हैं। नीचे के बड़े तथा चौड़े भाग से एक मांसपेशी निकलती है जिसे अधः अंसपृष्ठिका (Infraspinatus Muscle) कहते हैं। कंटक का ऊपरी तथा पार्श्व भाग चौड़ा हो गया है। इसे असकूट (Acromion) कहते हैं और यह चौड़ा भाग जत्रुक (Clavicle) से जुटता है। इसके ऊपरी भाग से एक चौड़ी मांसपेशी आरम्भ होती है जिसे त्रिकोणिका (Deltoid Muscle) कहते हैं।

अंसगर्त (Glenoid Cavtity) के ऊपर प्रगन्डास्थि (Humerous) का ऊपरी भाग आकर जुटता है। अंसगर्त के ऊपर एक हड्डी लटकती रहती है। इसका नाम तुण्ड प्रवर्ध (Corancoid Prócess) है। प्रवर्ध से तन्तुओं का बना हुआ एक मोटा सम्पुट (Capsule) होता है। जो प्रगण्डास्थि (Humerous) को चारों तरफ से जकड़े रहता है। इसे संधायक सम्पुट (Articular Capsule) कहते हैं। संधायक सम्पुट (Articular Capsule) और प्रगण्डास्थि के शिर के बाद एक तेल के समान चिकना द्रव्य रहता है जो प्रगण्डास्थि को अंसगर्त में चारो तरफ घुमाने में मदद देता है। इस तरल पदार्थ को श्लेषक द्रव (Synovial Fluid) कहते हैं।

(१) अंसफलक (Scapula), (२) जत्रुक (Clavicle), (३) प्रगण्डास्थि (Humerous) यह तीनों अस्थियाँ एक स्थान पर मिल कर एक संधि बनाती

१—उरोस्थि गत अन्त (स्टरनल एण्ड)

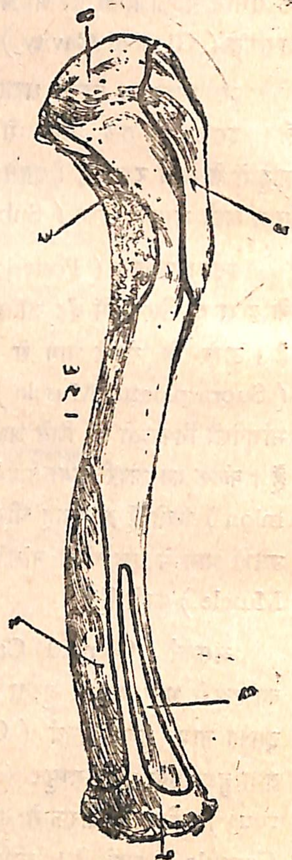
२—वृहत वक्षच्छदिका (पेक्टोरैलिस मेजर) मांसपेशी

३—त्रिकोणिका (डेल्टायड) मांसपेशी

४—अंसकूट अन्तभाग (एकोमियन एण्ड)

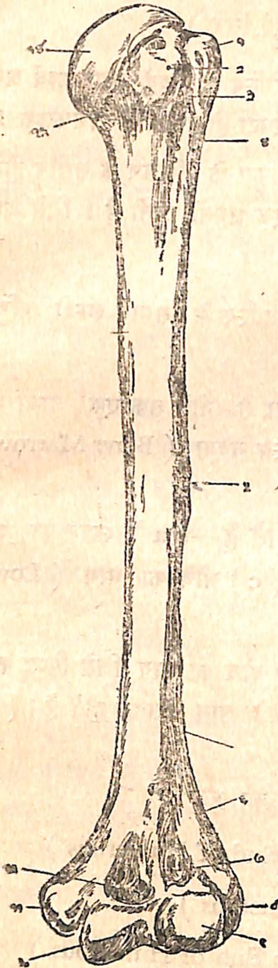
५—समलम्बिका (ट्रैपिजियम्) मांसपेशी

६—उरोजत्रुक कर्णं मूलिका (स्टरनोमेस्टायड) मांसपेशी



चित्र सं० २९ क्लैविकल

हैं जिसे स्कन्ध सन्धि (Shoulder Joint) कहते हैं। इस स्कन्ध सन्धि को गेंद-बल्ला सन्धि की किसम में रखते हैं।



१—वृहत् गुलिका (ग्रेटर ट्युबरोसिटी)
२ – लघु गुलिका (लैसर ,,)
३—द्वि शिरस्का खातिका बाइसीपिटल ग्रूव)
४ – (सर्जिकल नेक)
५— त्रिकोणिका गुलिका (डेल्टायड ट्यूब-रासिटी)
६—पार्श्व अधिस्थूल कंटक (लेटरल सुप्रा-कान्डायलर रिज)
७ —बहि:प्रकोष्ठिका खात (रेडियल फोसा)
८—पार्श्व अधिस्थूलक (लेटरल इपीका-न्डायल)
९—मुण्डक (कैपिट्युलम)
१०— चक्रक (ट्रौक्लिया)
११ —अभिमध्य अधिस्थूलक (मीडियल इपी-कान्डायल)
१२—चंचु खात (कीरोनायड फोसा)
१३—एनाटामिकल नेक
१४—शिर (हेड)

चित्र सं० ३० प्रगण्डास्थि (ह्यूमरसः)

(२) जत्रुक अस्थि (Clavicle Bone) यह संख्या में दो होती हैं जो उरोस्थि (Sternum) के दोनों तरफ ऊपरी भाग में स्थित हैं। इसके दो

सिरे होते हैं। एक अभिमध्य सिरा तथा दूसरा पार्श्व सिरा।

अभिमध्य अन्त भाग गोला होता है और उरोस्थि के पार्श्व तथा ऊर्ध्व अन्त भाग पर जुटता है। जत्रुक का पार्श्व भाग चिपटा होता है जो अंसफलक के अंसकूट से जुटता है। जत्रुक का ऊपरी हिस्सा फुफ्फुस के शिखर के समीप होता है। जत्रुक के ठीक पीछे तथा नीचे के भाग में एक धमनी रहती है। जिसे अधो जत्रुक धमनी (Sub Clavian Artery) कहते हैं।

(३) प्रगण्डास्थि (Humerous)--प्रगण्डास्थि के समान लम्बी हड्डियों के कुछ विशेष समान लक्षण इस प्रकार हैं--

(१) प्रत्येक लम्बी हड्डी के बीचोबीच ऊपर से नीचे तक एक लम्बा छेद होता है जिसे अस्थि नलिका कहते हैं जिसमें अस्थि मज्जा (Bone Marrow) रहता है।

(२) इन हड्डियों के तीन भाग होते हैं—(a) ऊपर का भाग (Upper End), (b) बीच का भाग, (c) नीचे का भाग (Lower End)।

(a) ऊपरी भाग गोल होता है। (b) बीच का भाग जिसे पिण्ड कहते हैं, प्रायः त्रिभुजाकार होता है जिसके तीन किनारे व तीन धरातल होते हैं। (c) नीचे का भाग चिपटा होता है।

(Humerous) प्रगण्डास्थि के तीन भाग होते हैं।

१--प्रगण्डास्थि का ऊपरी भाग (Upper End of Humerous)

२--प्रगण्डास्थि का पिण्ड (Body of Humerous)

३--प्रगण्डास्थि का निचला भाग (Lower End of Humerous)

(१) प्रगण्डास्थि का ऊपरी भाग---प्रगण्डास्थि ऊपर अंसफलक और नीचे कूर्पर सन्धि के बीच स्थित है। इसका ऊपरी भाग कंधे की संधि से आकर जुटता है। इसके ऊपरी हिस्से के चार भाग होते हैं--

(१) सिर (Head)—यह छड़ी की मुठिया के समान गोल होता है और अंसफलक के अंसगर्त (Glenoid Cavity) से जुटता है।

(२) ग्रीवा (Neck)—शिर के नीचे के भाग को जो सँकरा होता है ग्रीवा कहते हैं। ग्रीवा के चारों तरफ एक बहुत मोटी तथा मजबूत झिल्ली लगी होती है जो अंसगर्त (Glenoid Cavity) और सिर (Head) को अच्छी तरह से बाँधे रहती है। इसे संघायद सम्पुट (Articular Capsule) कहते हैं।

(३) वृहत् गुलिका (Greater Tubercle) इसके बगल में रहती है।

(४) लघु गुलिका (Lesser Tubercle) के ऊपर वह मांसपेशियाँ जुटती हैं जो अंसफलक (Scapula) से आरम्भ होती हैं। त्रिकोणिका, जत्रुक (Clavicle) और अंसकूट (Acromion) से आरम्भ होती है और प्रगाण्डास्थि (Humerous) के ऊपरी भाग में आकर लगती है। इसमें अन्तः-पेशी इन्जेक्शन (Intramuscular Injection) लगाया जाता है।

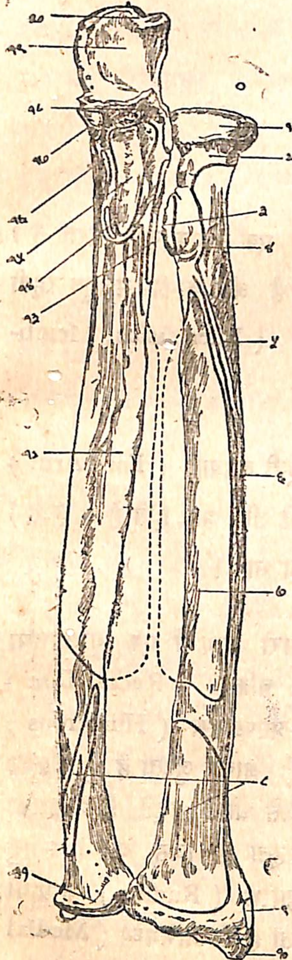
(२) प्रगण्डास्थि पिण्ड (Body of Humerous)—अन्य लम्बी हड्डियों के समान प्रगण्डास्थि (Humerous) का पिण्ड (Body) भी त्रिभुजाकार होता है। इसकी तीन धारायें (Borders) होते हैं—(१) अग्रधारा (Anterior Border), (२) अभिमध्य धारा (Medial Border), (३) पार्श्व धारा (Lateral Border), तथा तीन तल (Surface) होते हैं— (१) अग्रधारा (Anterior Border) और अभिमध्यधारा (Medial Border) के बीच का भाग अग्र अभिमध्य तल (Anterior Medial Surface) कहलाता है। (२) अग्र (Anterior) और पार्श्व धारा (Lateral Border) के बीच का भाग अग्र पार्श्व तल (Anterior Lateral Surface) कहलाता है। (३) पीछे का पश्चिम तल (Surface) पश्चिम तल (Posterior Surface) कहलाता है।

अग्रधारा (Anterior Border) और अग्र अभिमध्य तल (Anterior Medial Surfacc) के ऊपर की मांसपेशी को द्विशिरस्का (Biceps Muscle) कहते हैं। अग्र पार्श्व (Anterior Lateral) तथा पश्च तल (Posterior Surface) पर जो मांसपेशी होती है उसे त्रिशिरस्का (Triceps Muscle) कहते हैं।

(३) प्रगण्डास्थि का निम्न भाग (Lower End of Humerous) — इसका निम्न भाग (Lower End) चौड़ा होता है और इसके अभिमध्य (Medial) तथा पार्श्व धारा (Lateral Borders) बहुत नुकीले होते हैं। इसके नीचे के भाग में एक चक्रक (Trochlea) होती है, इसके ऊपर अन्तः-प्रकोष्ठास्थि (Ulna Bone सामने और पीछे की तरफ घूमती है। चक्रक (Trochlea) के दोनों तरफ हड्डी के दो उभाड़ होते हैं जिन्हें अभिमध्य अधिस्थूल (Medial Epicondyle) तथा पार्श्वअधि स्थूलक (Lateral Epicondyle) कहते है।

कूर्पर सन्धि (Elbow Joint)—इस सन्धि के बनने में तीन अस्थियाँ भाग लेती हैं—(१) प्रगण्डास्थि (Humerous), (२) बहिःप्रकोष्ठास्थि (Radius), (३) अन्तःप्रकोष्ठास्थि (Ulna)। कूर्पर सन्धि (Elbow Joint) को कब्जा सन्धि (Hinge Joint) की किस्म में रखते हैं।

(४) अग्रबाहु (Fore Arm)—अग्रबाहु में दो हड्डियाँ होती है। अँगूठे की तरफ जो हड्डी होती है उसे बहिःप्रकोष्ठास्थि (Radius) कहते हैं, जो कानी अँगुली की तरफ होती है उसे अन्तः प्रकोष्ठास्थि (Ulna) कहते हैं। दोनों हड्डियाँ कूर्पर अस्थि (Elbow Joint) से आरम्भ होती है और कलाई की सन्धि पर समाप्त होती है। ये दोनों हड्डियाँ एक दूसरे के समानान्तर तथा त्रिभुजाकार होती हैं। इन दोनों अस्थियों की अभिमध्य धारा



चित्र सं० ३१ अन्तः बहिः प्रकोष्ठास्थि (Radius ulna)

१—बहिःप्रकोष्ठास्थि सिर (हेड रेडियस)

२—ग्रीवा (नेक)

३—बहिःप्रकोठास्थि गुलिका (रेडियल ट्यूबरोसिटी)

४—उत्तानी (सुपिनेटर) मांसपेशी

५—टेढ़ी रेखा (आब्लीक लाइन)

६—गोल अवतानिका (प्रोनेटर टीरीज मांसपेशी)

७—दीर्घ अंगुष्ठ आकुञ्चनी (फ्लेक्सर पौलिसीस लौंगस) मांसपेशी

८—चतुरस्त अवतानिक (प्रोनेटर क्वाड्रेटस) मांसपेशी

९—प्रगण्ड बहिःकोष्ठिका (ब्रेकियो रेडियालिस मांसपेशी)

१०—शर प्रबर्ध (स्टायलायड प्रोसेस)

११—शिर (हेड) अन्तःप्रकोष्ठास्थि (अलना)

१२—गम्भीर अंगुलि आकुञ्चनी फ्लेक्सर डिजिटोरम प्रोफन्डस मांसपेशी

१३—उत्तानी (सुपिनेटर) मांसपेशी

१४—दीर्घ अंगुष्ठ आकुञ्चनी (फ्लेक्सर पौलिशिस लौंगस) मांसपेशी (अक्सेजनल हेड)

१५—प्रगण्डिका (ब्रेकियालिस) मांसपेशी

१६—गोलअवतनिका (प्रोनेटर टीरीज) मांसपेशी अन्तःप्रकोष्ठिका शिर (अल्नर हेड)

१७—उपरस्थि अंगुलि आकुञ्चनी (फ्लेक्सर डिजीटोरम सब्लिमिस) मांसपेशी

१८—चंचु प्रवर्धं (कोरोनायड प्रोसेस)

१९—चक्रक खात (ट्राक्लियर नाच)

२०—कूर्पर (आलेक्रानन)

नुकीला होता है। एक झिल्ली द्वारा आपस में एक से एक जुटा रहता है। यह झिल्ली ऊपर से नीचे की ओर फैली रहती है और काफी मजबूत रहती है। इस झिल्ली का नाम अन्तरास्थिकला (Interrossius Membrane) है।

बहिःप्रकोष्ठास्थि (Radius) :—यह हड्डी अग्रबाहु (Fore Arm) में पार्श्व (Lateral Side) में स्थित है। इसके तीन भाग होते हैं। (१) ऊपरी भाग, (२) बीच का भाग, (३) नीचे का भाग।

ऊपरी भाग (Upper End) के सबसे ऊपरी भाग में एक गोला तथा छिछला गड्ढा होता है। इसे बहिःप्रकोष्ठिका चक्रिका (Radial Disc) कहते हैं। इस चक्रिका (Disc) के ऊपर प्रगण्डास्थि (Humerous) का सबसे नीचे का भाग मुण्डक (Capitulum) आकर जुटता है। चक्रिका (Disc) के नीचे का भाग सँकरा होता है जिसे ग्रीवा कहते हैं। इसकी चारों तरफ झिल्ली का बना एक फीता लपेटा रहता है जिसे वलयी स्नायु (Anular Ligament) कहते हैं। बहिःप्रकोष्ठास्थि (Radius) के ग्रीवा (Neck) के नीचे हड्डी का एक गोला हिस्सा रहता है जो अभिमध्य (Medial Side) में रहता है और अन्तःप्रकोष्ठकास्थि (Ulna) से जुटता है। इस गोले हिस्से को बहिःप्रकोष्ठिका गुलिका (Radius Tuberosity) कहते हैं।

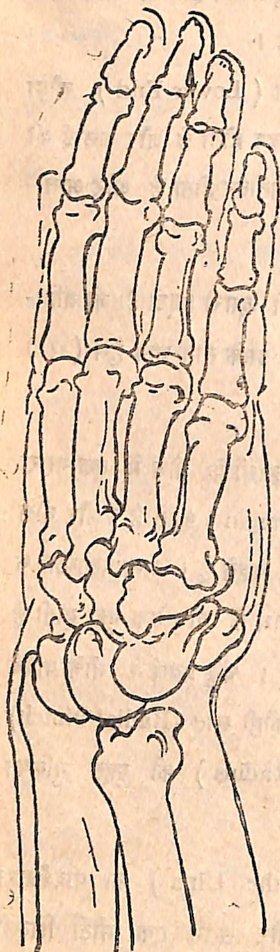
बीच का भाग (Body of the radius) त्रिभुजाकार होता है और अभि-मध्य (Medial) की तरफ थोड़ा झुका हुआ रहता है।

बहिःप्रकोष्ठास्थि (Radius) के नीचे का भाग (Lower End) चौड़ा तथा त्रिभुजाकार होता है। इसके नीचे का भाग नतोदर होता है और कलाई की हड्डियों से जुटता है। इसका अभिमध्य भाग भी नतोदर होता है और अन्तः-प्रकोष्ठास्थि से जुटता है।

अन्तःप्रकोष्ठास्थि (Ulna)—यह अग्रबाहु की दूसरी हड्डी है जो बहिः-प्रकोष्ठास्थि (Radius) के अभिमध्य में स्थित है। इसके तीन भाग हैं। (१) ऊपरी भाग, (२) पिण्ड, (३) निचला भाग।

ऊपरी भाग के दो भाग होते हैं। इन दोनों हिस्सों के बीच में एक गहरा गड्ढा होता है। ऊपर वाले भाग को कूर्पर (Olecranon) कहते हैं। और नीचे के भाग को चंचु प्रवर्ध (Coronoid Process) कहते हैं। अन्तःप्रकोष्ठास्थि (Ulna) के कूर्पर (Olecranon) और चंचु प्रवर्ध के बीच एक गुहा होती है जिसे चंचु खात (Coronoid Fossa) कहते हैं। चंचु प्रवर्ध के नीचे पार्श्व (Lateral Side) में एक गड्ढा है जिसे बाह्य प्रकोष्ठी खात (Radial Notch) कहते हैं। इसी गड्ढे में बाह्य प्रकोष्ठास्थि (Radius) की वृहत गुलिका (Tuberosity) फिट होती है।

अन्तःप्रकोष्ठास्थि का पिण्ड (Body of the Ulna) का पार्श्वधारा (Lateral Border) बहुत तेज होता है और उससे एक मोटी झिल्ली लगी होती है जिसे अन्तरास्थि कला (Interosius Membrance) कहते हैं।



चित्र सं० ३२
हथेली एवं अँगुलियों की हड्डियाँ

अन्तःप्रकोष्ठास्थि (Ulna) का निचला हिस्सा ऊपरी हिस्से की अपेक्षा बहुत ही छोटा होता है और कानी अँगुली की तरफ कलाई की हड्डी से जुटता है।

५—मणिबन्धन की अस्थियाँ (Wrist Bones) या (Carpal Bones) :—यह संख्या में आठ होती हैं। इनका ऊपरी भाग बहिः-प्रकोष्ठास्थि (Radius) और अन्तःप्रकोष्ठास्थि (Ulna) से जुटा रहता है और नीचे का भाग करभास्थियों (Matacarpal Bones) से जुटता है। इनका मुख्य काम कलाई को आसानी के साथ घुमाना है।

६—करभास्थियाँ (Metacarpal Bones) :—यह हथेली की हड्डियाँ हैं। संख्या में पाँच हैं। यह ऊपर मणिबन्धन की अस्थियों (Carpal Bones) से तथा नीचे अँगुली की अस्थियों से लगी रहती हैं।

७—अंगुलियाँ (Phalanges) :—यह अँगुली की हड्डियाँ हैं जो संख्या में चौदह हैं। ऊपर की ओर करभास्थियों (Metacarpal Bones) से लगी रहती हैं।

अधःशाखा की अस्थियां
(Bones of the Lower Extremities)



चित्र सं० २३ हिप बोन (नितम्बास्थि)

(१) नितम्बास्थि (Hip Bone)

(२) उर्विकास्थि (Femur)

(३) अन्तर्जंघिका (Tibia)

(४) बहि:जंघिका (Fibula)

(५) पद कूर्चास्थि (Tarsal Bone)

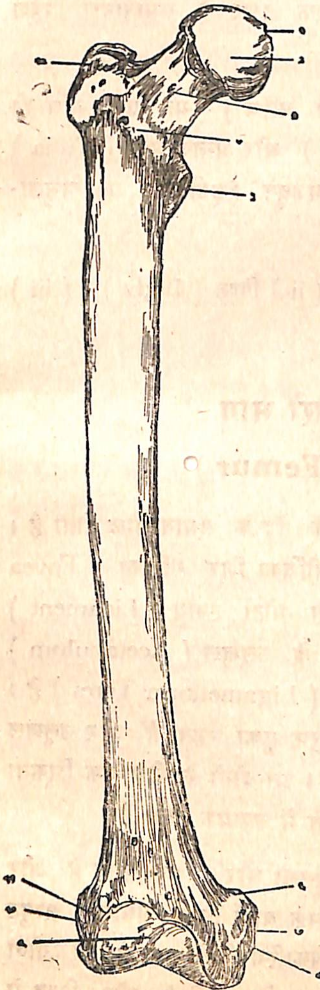
(६) प्रपदास्थि (Metatarsal Bone)

(७) पैर की अंगुलियाँ (Toes)

१. नितम्बास्थि— (Hip Bones) :—यह तीन हड्डियों से मिलकर बना है— (a) श्रोणिफलक (Ilium), (b) आसनास्थि (Ischium), (c) जघनास्थि (Pubis)।

इन हड्डियों के पार्श्व में कटोरी के समान एक गढ्ढा होता है जिसे उलूखल (Acetabulum) कहते हैं। उलूखल के नीचे एक बहुत बड़ा छेद होता है जिसे गवाक्षाछिद्र (Obturator Foramen) कहते हैं। इस छेद का तीन चौथाई भाग एक मोटी मजबूत झिल्ली से ढंका रहता है जिसे गवाक्षकला (Obturator Membrane) कहते हैं। इस हड्डी के पीछे की तरफ एक गहरा हिस्सा होता है जिसे वृहत् आसन खात (Greater Sciatic Notch) कहते हैं।

नितम्बास्थि का एक भाग श्रोणिफलक होता है तथा इलियम के ऊपरी घूमे हुए भाग को शिखर (Crest) कहते हैं। शिखर के अग्र या अग्रभाग (Front End) को अधि अग्र श्रोणि कंटक (Anterior Superior Iliac Spines) कहते हैं। अधि अग्र श्रोणि कंटक से एक बहुत ही मोटा और मजबूत स्नायु (Ligament) आरम्भ होता है जो जघनास्थि (Pubic Bone) पर आकर गुलिका में जुट जाता है। इन दोनों का आकार मिलकर V शक्ल का हो जाता है। इसे वक्षणस्नायु (Inguinal Ligament) कहते हैं। यह वंक्षणस्नायु (Inguinal Ligament) पूरे उदर का आधार बनता है और जाँघ को उदर से अलग करता है और वंक्षणस्नायु (Inguinal Ligament) के बीच एक छेद होता है जिसे



१—उरु शिर गर्तिका (पिट आन हेड)

२—शिर (हेड)

३—ग्रीवा (नेक)

४—ट्रोकेन्ट्रिक लाइन

५—लैसर ट्रोकेन्टर

६—अभिवर्तनी गुलिका (एडक्टर ट्युबरकिल)

७—अभिमध्य अधिस्थूलक (मिडियल इपीकान्डायल)

८—अभिमध्य स्थूलक मिडियल कान्डायल)

९—जानु तल (पटेलर सरफेस)

१०—पार्श्व अधिस्थूलक (लेटरल इपीकान्डायल)

११—पार्श्वं स्थूलक (लेटरल कान्डायल)

१२—ग्रेटर ट्रोकेन्टर

चित्र सं० ३४ उर्विका अस्थि (फीमर बोन)

वंक्षण वलय (Inguinal Ring) कहते हैं। वंक्षण वलय के द्वारा और्वी शिरा, और्वी धमनी, और्वी तन्त्रिका ऊपरी जाँघ में एक दूसरे के समानान्तर प्रवेश करते हैं।

(२) ऊर्विका अस्थि (Femur–जघे की अस्थि)—यह एक जाँघ की लम्बी हड्डी है जो नितम्बास्थि (Hip Bone) और अन्तर्जंघिका (Tibia) के बीच स्थित है। लम्बी हड्डियों में यह सबसे मजबूत हड्डी है। यह त्रिभुजाकार होती है। इसके तीन भाग होते हैं।

(i) ऊपरी भाग (Upper End), (ii) पिण्ड (Body), (iii) निचला भाग (Lower End)

और्विकास्थि का ऊपरी भाग
(Upper End of Femur)

(i) शिर (Head)—यह छोटे काठ के गेंद के समान गोल होता है। जिसके बीचो-बीच एक गड्ढा होता है। जिसे और्विका शिर गर्त्तिका (Fovea Capitis Femors) कहते हैं। इससे एक बहुत मोटा स्नायु (Ligament) लगा रहता है जो नितम्बास्थि (Hip Bone) के उलूखल (Acetabulum) से आरम्भ होता है। इसका नाम गोल स्नायु (Ligamentum Teres) है। और्विका का सिर ऊपर की ओर अन्दर की तरफ झुका रहता है और उलूखल (Acetabulum) के गड्ढे में आकर जुटता है। इन दोनों के बीच एक चिकना तरल पदार्थ रहता है जो और्विका के शिर के गति में सहायक होता है।

(ii) ग्रीवा (Neck)—यह शिर से पतला और "करा होता है और पिण्ड के साथ १२०° का कोण बनाता है। इसके चारों तरफ संघायक सम्पुट (Articular Capsule) लगा रहता है। और्विकास्थि (Femur) की ग्रीवा प्रगण्डास्थि (Humerous) ग्रीवा की अपेक्षा लम्बी रहती है और पिण्ड से अलग होती है।

(iii) वृहद् ट्रोकेन्टर (Great Trochanter)—जिस तरह प्रगण्डास्थि में वृहत गुलिका (Greater Tubercle) होता है वैसे ही उर्विकास्थि (Femur) में Greater Trochanter होता है। यह पार्श्व में स्थित है। इसके दो तल होते हैं, पार्श्व तल और अभिमध्य तल।

पार्श्व तल चौकोर, उन्नतोदर और खुरदरा होता है। इसके ऊपर क्रम से तीन मांसपेशियाँ आकर लगती हैं। इसका अभिमध्य तल उन्नतोदर होता है और इसके ऊपर तुण्डिकापेशी (Piriformis Muscles) आकर लगती हैं।

(iv) लघु ट्रोकेन्टर (Lesser Trochanter)—यह नीचे की तरफ और अभिमध्य में स्थित है। यह हड्डी का एक छोटा गोला होता है।

और्विका पिण्ड (Body of Femur)—इसका पिण्ड त्रिभुजाकार होता है। इसका आधार सामने की ओर और शिखर (Apex) पीछे की ओर होता है। इस हड्डी के तीन तल होते हैं।

(i) अग्रतल Anterior Surfaceal, (ii) पश्च अभिमध्य तल (Posterior Medial Surface), (iii) पश्च पार्श्व तल (Posterior Lateral Surface) इसके अभिमध्य तल (Medial Surfacc) के ऊपर तीन पेशियाँ क्रम से ऊपर से नीचे तक लगी है। यह पेशियाँ नितम्बास्थि से आरम्भ होती हैं। इसके अतिरिक्त तीन और बड़ी मोटी पेशियाँ हैं जो जांघ को तीन तरफ से ढंके रहती हैं।

उर्विकास्थि का निचला हिस्सा (Lower End of Femur)—उर्विकास्थि (Femur) का निचला भाग चौड़ा और मोटा होता हैं। यह दो भागों मे विभाजित हो गया है। पहला अभिमध्य अधिस्थूलक (Medial Epicondyle) और दूसरा पार्श्व अधिस्थूलक (Lateral Epicondyle)।

पार्श्वं अधिस्यूलक अभिमध्य अधिस्यूलक की अपेक्षा कुछ बड़ा और नीचे की ओर लटका होता है तथा अन्तर्जंघास्थि से जुटा होता है।

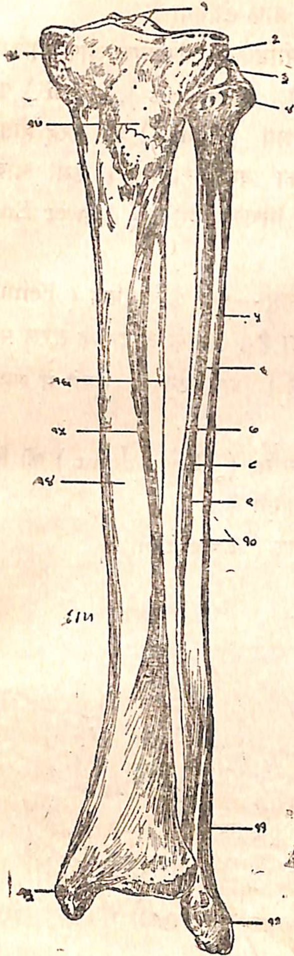
जानु संधि (Knee Joint)—घुटने की संधि—इसके बनने में चार हड्डियाँ भाग लेती हैं।

(i) उर्विका का निचला हिस्सा (Lower of End Femur) (ii) अन्तर्जंघास्थि (Tibia), (iii) वहिर्जंघास्थि (Fibula) (iv) जान्वास्थि (Petalla) :—यह घुटने के ऊपर का उभरा हुआ भाग हैं तथा पहले एक स्नायु के रूप में होता है। यह उर्विकास्थि के निचले हिस्से से लेकर अन्तर्जंघास्थि के ऊपरी हिस्से से जुटता है। इस स्नायु को जानु स्नायु (Ligamentum Petallae) कहते हैं। बाद में करीब ६ वर्ष की अवस्था में इसका मध्य भाग कठोर अस्थि के रूप में परिवर्तित हो जाता है जिसे जान्वास्थि (Petalla) कहते हैं।

अभिमध्थ एवं पार्श्व स्वस्तिक स्नायु (Medial Cruciate Ligament and Lateral Cruciate Ligament)—

ये दोनों संधि को अच्छी तरह जकड़े रहती हैं अभिमध्य स्वस्तिक स्नायु (Medial Cruciate Ligament) अन्तर्जंघिका (Tibia) के अभिमध्य (Medial Side) से आरम्भ होकर उर्विकास्थि (Femur) के पार्श्वं (Lateral) में जुटी रहती है। इस तरह पार्श्वं स्वस्तिक स्नायु (Lateral Cruciate Ligament) अन्तर्जंघिका (Tibia) के पार्श्वं (Lateral Side) में प्रारम्भ होकर उर्विका (Femur) के अभिमध्य (Medial Side) में जुटी रहती हैं, जो एक दूसरे को काटती हुई रहती हैं।

अन्तर्जंघिका (Tibia) के अभिमध्य (Medial) और पार्श्वं (Lateral Side) में दो गद्दी (Ring) होती हैं जिसे चक्रिका (Disc) कहते हैं।



चित्र सं० ३५ अन्तर्जंघिका और बहिर्जंघिका अस्थि (टीबिया और फिबुला हड्डी)

१—अस्तरास्थूलक उत्सेध की गुलिका (ट्यूबरकिल आफ इण्टर कौण्डायलर इमिनेन्स)

२—अन्तर्जंघिका का पार्श्व स्थूलक (लेटरल कौण्डाल आफ टीबिया)

३—शर प्रवर्ध (स्टायलायड प्रोसेस)

४—बहिर्जंघिका शिर (हेड आफ फिबुला)

५—अग्रधारा (एण्टीरियर बार्डर)

६—अन्तरा अस्थिधारा (इण्ट्रौसियस बार्डर)

७—अभिमध्य शिखर (मीडियल क्रेस्ट)

८—पूर्व तल (एण्टीरियर सरफेस)

९—पश्च तल का अभिमध्यम भाग (मीडियल पार्ट आफ पोस्टीरियर सरफेस)

१०—पार्श्व तल (लेटरल सरफेस)

११—अधःत्वक त्रिकोण क्षेत्र (ट्रँगुलर सबक्युटेनियस एरिया)

१२—पार्श्व गुल्फ (लेटरल मैलियोलस)

१३—अभिमध्य गुल्फ (मीडियल मैलियोलस)

१४—अभिमध्य तल (मीडियल सरफेस)

१५—अन्तःजंघिका अग्रधारा (एण्टीरियर बार्डर टीबिया)

१६—अन्तःजंघिका अन्तरास्थि धारा (इन्ट्रौसियस बार्डर टीबिया)

१७—अन्तर्जाघिका गुलिका (ट्यूबरकिल आफ टीबिया)

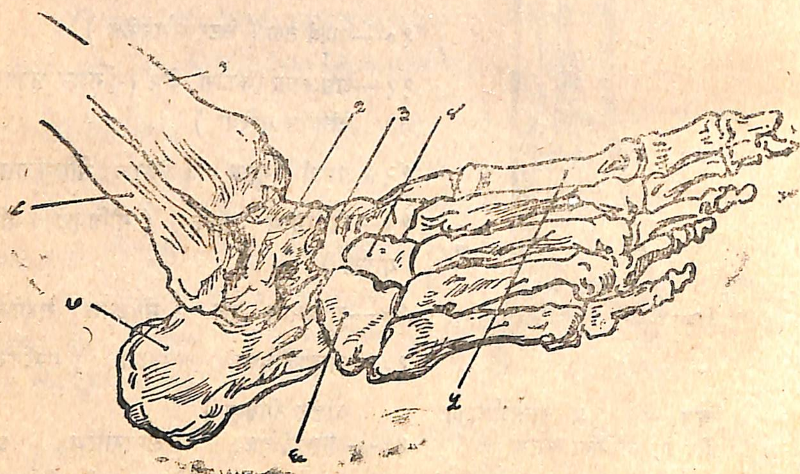
१८—अन्तर्जाघिका अभिमध्य स्थूलक (मीडियल कौण्डायल आफ टीबिया)

(i) अभिमध्य नवचन्द्रक (Medial Meniscus), (ii) पार्श्व नवचन्द्रक (Lateral Meniscus) यह वलय (Ring) की तरह होता है और उपस्थि तन्तु (Fibro-Cartilage) का बना होता है। इसी चक्रिका (Disc) पर उर्विकास्थि (Femur) का निचला सिरा (Lower End) जुटता है।

(Synovial Membrane) श्लेषक कला—यह उर्विकास्थि (Femur) और अन्तर्जाघिका (Tibia) के मध्य में होता है। इसके अन्दर के तरल पदार्थ को श्लेषक द्रव (Synovial Fluid) कहते हैं। यह घुटने के मुड़ने में सहायक होता है।

जानु सन्धि (Knee Joint) की ओर सन्धि (Hinge Joint) की किस्म में रखते हैं। इसके अन्दर दो प्रकार की गति होती है।

(i) कुञ्चन (Flexion), (ii) प्रसार (Extention)



चित्र सं० २६—पैर के पंजे एवं अंगुलियों की अस्थियाँ

१—अन्तर्जंघिकास्थि (टीबिया) का निचला सिरा
२—घुटिकास्थि (टैलस)
३—नौकाभस्थि (नेविक्युलर)
४—कीलाकार अस्थि (क्यूनिफार्म)
५—पादकूर्च (टार्सल)
६—घनास्थि (क्युबायड)
७—पार्ष्यिका (कैल्केनियम)
८—बहि:जंघिकास्थि (फिबुला) का निचला सिरा

(३) अन्तर्जंघिकास्थि (Tibia)—यह पैर के नीचे की लम्बी हड्डी है जो काफी मजबूत और मोटी होती है। इसका परी भाग मोटा और चौड़ा होता है। ऊपरी भाग के ऊपर दो गोले तथा छिछले गड्ढे होते हैं। इसके अन्दर उर्विकास्थि (Femur) का निचला सिरा (Lower End) आकर लगता है। इसके नीचे का भाग ऊपर की अपेक्षा पतला और सँकरा होता है। इसके नीचे और अभिमध्य में हड्डी का एक उभाड़ होता है जो नीचे की तरफ लटका रहता है उसे अभिमध्य गुल्फ (Midial Maleolus) कहते हैं। अन्तर्जंघिका (Tibia) का अभिमध्य तल ऊपर से नीचे तक चिकना तथा चपटा और त्वचा से ढंका रहता है। इसके पाश्र्व में पाश्वं धारा स्थित रहता है। इस धारा से लगी हुई एक मोटी तथा मजबूत झिल्ली होती है जो पाश्वं धारा (Tibia) से आरम्भ होकर अन्तर्जंघिकास्थि (Fibula) से लग गई है। यह झिल्ली पैर को दो भागों में विभाजित करती है।

(i) झिल्ली के सामने का भाग (Anterior Portion) और (ii) झिल्ली के पीछे का भाग (Posterior Portion) कहलाता है।

(४) बहिर्जंघिकास्थि (Fibula)—(Tibia) अन्तर्जंघिकास्थि के (Lateral Side) पाश्वं में एक दूसरी पतली हड्डी होती है जो इसी के समानान्तर होती है। इसे (Fibula) कहते हैं। इसके तीन भाग हैं।

(i) ऊपरी सिरा (Upper End), (ii) पिण्ड (Body), (iii) निचला सिरा (Lower End)। बहिर्जंघिकास्थि (Fibula) का ऊपरी भाग अभिमध्य में नतोदर हाता है और अन्तर्जंघिकास्थि (Tibia) के पार्श्व (Lateral) तथा ऊपरी सिरे (Upper End) से जुटता है। इसका निचला सिरा (Lower End) चौड़ा होता है और पार्श्व गुल्फ (Lateral Maleolus) कहलाता है । इसका (Body) प्रायः चर्म से ढका रहता है।

(५) यादकूर्च अस्थियाँ (Tarsal Bones)—ये हड्डियाँ संख्या में सात होती हैं और सब मिलकर एँड़ी की हड्डियाँ बनाती हैं। हड्डियाँ काफी मोटी, मजबूत और बड़ी होती हैं।

(६) प्रपदिक अस्थियाँ (Metatarsal Bone)—ये संख्या में पाँच होती हैं और इनके नीचे का भाग नतोदर होता है। ये हड्डियाँ एँड़ी की हड्डी और पैर की अँगुलियों के बीच स्थित रहती हैं। ये हड्डियाँ भी काफी मजबूत और मोटी होती हैं।

(७) अंगुलियाँ (Tose)—ये हाथ अंगुलियों के समान संख्या में चौदह होती हैं लेकिन उनकी अपेक्षा ये कम लम्बी तथा काफी मोटी होती हैं। पंजे तथा एँड़ी की हड्डियाँ एक ही धरातल में नहीं स्थित रहतीं, बल्कि वे एक चाप बनाती हैं जहाँ एँड़ी और पंजा जमीन पर लगा रहता है और तलवा ऊपर को उठा रहता है। पदचाप (Arch of Foot) इसी उठे हुए भाग को कहते हैं। इस प्रबन्ध से चलने में आसानी होती है।

———

तीसरा अध्याय

श्वसन-तन्त्र

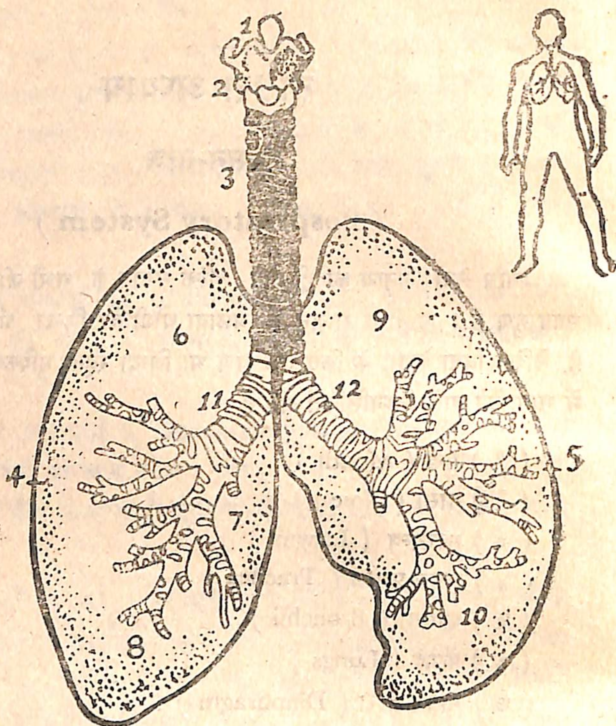
(Respiratory System)

श्वास लेना मनुष्य का ही नहीं बल्कि संसार के सभी जीवधारियों का एक मुख्य गुण है। पानी व भाजन के अलावा थोड़ी देर जिन्दा भी रहा जा सकता है, लेकिन बिना श्वास के लिए एक क्षण भा जिन्दा रहना मुश्किल है। श्वसनक्रिया में भाग लेने वाले निम्नलिखित अंग हैं –

(१) मुख (Mouth)
(२) नासा (Nose)
(३) स्वरयन्त्र (Larynx)
(४) श्वास-प्रणाल (Trachea)
(५) श्वसनी (Bronchii)
(६) फेफड़े (Lungs)
(७) महाप्राचीरा (Diaphragm)
(८) वक्ष भित्ति (Chest wall)
(९) श्वसन पेशियाँ (Respiratory muscles)

श्वास लेने की प्रथम क्रिया तो नासा से होती है। जब जुकाम हो जाता है और नाक में बलगम जमा हो जाता है, उस समय लोग मुँह से श्वास लेते हैं। लेकिन बुद्धिमानों का कथन है कि श्वास हमेशा नाक से लेना चाहिए। इससे यह लाभ है कि नाक के बालों द्वारा हवा छन कर अन्दर प्रवेश करती है। नाक के पिछले हिस्से में एक खाली स्थान होता है जिसे नासा ग्रसनी (Nasopharynx) कहते हैं।

1. इपोग्लाटिस कण्ठच्छद
2. लैरिंग्ज, स्वर यन्त्र
3. ट्रेकिया, श्वास प्रणाल
4. दक्षिण फुफ्फुस
5. वाम "
6. ऊपरी खण्ड
7. मध्य "
8. अधो खण्ड
9. ऊपरी खण्ड
10. अधो खण्ड
11. दक्षिण ब्रांकस श्वसनी
12. वाम ब्रांकस श्वसनी



चित्र सं० ३७—मनुष्य के फेफड़े की रचना

हवा पहले नाक में प्रवेश करती है और फिर नासाग्रसनी से होती हुई मुख के पिछले हिस्से में आती है और फिर वहाँ से स्वर-यन्त्र (Larynx) में प्रवेश करती है। स्वर-यन्त्र श्वसन-संस्थान, का वह अंग है जो गले में सबसे सामने बीचो-बीच स्थित है। इसके सामने दो चौड़ी नरम हड्डियाँ होती हैं जिन्हें थायरायड कार्टिलेज (Thyroid Cartilage) कहते हैं। इसके ऊपरी हिस्से में एक ढक्कन लगा रहता है जिसे कण्ठच्छद (Epiglottis) कहते हैं जो भोजन के गले में आते ही श्वास-नली को ढँक लेता है और अन्न को स्वर-यन्त्र में

आने से रोकता है। श्वासप्रणाल और श्वसनी के अन्दर एक प्रकार के सेल्स होते हैं जिसे इपीथीलियल सेल्स (Epithelial Cells) कहते हैं। यह तीन प्रकार के होते हैं।

(१) स्तम्भाकार उपकला (Columnar Epithelium)

(२) रोमल उपकला (Ciliated Epithelium) :—यह रोमक सेल्स होते हैं जो श्वसनी तथा श्वास-प्रणाल में पाये जाते हैं। यह बाहर की ओर गति बढ़ाने में सहायक होते हैं।

(३) श्लेष्मल उपकला (Mucus Epithelium) :—यह श्लैष्मिक झिल्लियों में पाये जाते हैं। यह झिल्ली मुख के अन्दर होती है और श्वासनली के भी अन्दर पाई जाती है। इसके अन्दर ग्रन्थिकोशाएं (Glandular Cells) भी होती हैं। इनसे एक प्रकार का तरल पदार्थ निकलता है जिसे श्लेष्मा (Mucus) कहते हैं। इसमें कुछ मोट झिल्लियाँ भी होती हैं जो शरीर के अन्तर्गत मुख्य अंगों को ढंके रहती हैं, जिसे मस्तिष्क का आवरण कहते हैं। हृदय के आवरण को पेरीकारडियम कहते हैं तथा उदरावरण को पेरीटोनियम और फुफ्फुसावरण को प्लूरा (Pleura) कहते हैं।

लैरिंक्स (Larynx) के नीचे से श्वास की नली प्रारम्भ होती है। एक चौड़ी नली होती हैं जो नीचे की ओर चलकर श्वास-प्रणाली (Trachea) कहलाती है। इसके सामने के हिस्से में कार्टिलेज के बने छल्ले जिन्हें Cartilagenous rings कहते हैं, लगे रहते हैं। श्वास-प्रणाल के नीचे लम्बी मांसपेशियाँ लगी रहती हैं। यह लम्बी मांसपेशियों से बनी एक नली होती है जिसकी रक्षा सामने से उपास्थि के छल्ले करते हैं। इसके अन्दर की तरफ रोमश उपकला होती है जिसमें रोम रहते हैं; जो हर वस्तु को ऊपर नाक की तरफ बढ़ाने में क्रियाशील रहते हैं। जिस स्थान पर श्वास-प्रणाल समाप्त होता है वहाँ से वायुनली दो भागों में बंट जाती है। एक दाहिने फेफड़े में आती है

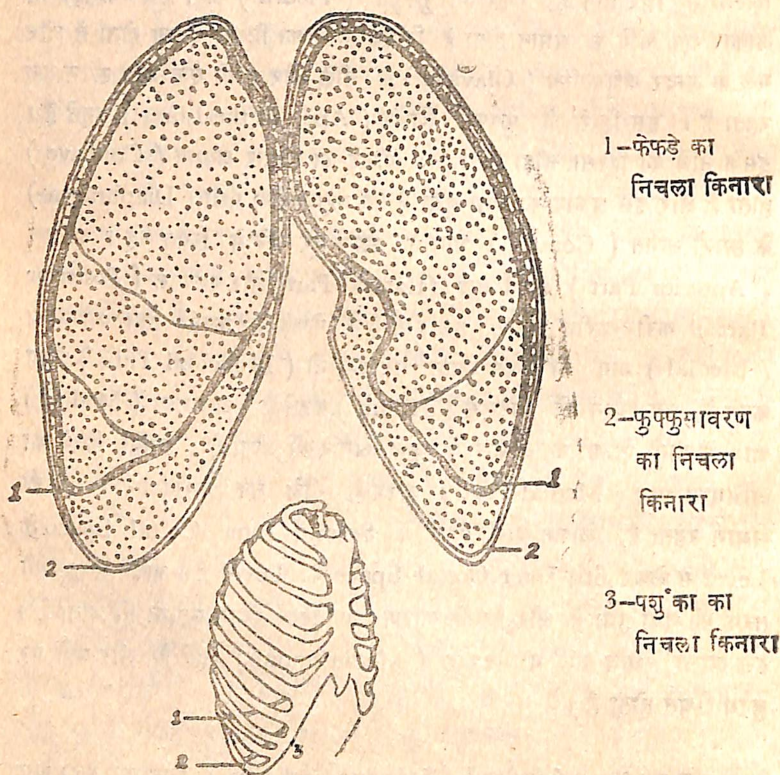
और दूसरी बायें फेफड़े में जाती है। इन्हें श्वसनी Bronchi कहते हैं। यह दो होती हैं–दाहिनी श्वसनी (Bronchus) और बायीं श्वसनी (Bronchus)।

श्वसनी नीचे आकर शाखाओं में बँट जाती हैं जिसे ब्रोंकाई श्वसनी कहते है। प्रत्येक श्वसनी (Bronchus) अपनी ओर के फेफड़े में घूमती है। फेफड़े में पहुँच कर प्रत्येक श्वसनी (Bronchus) अनेक छोटी-छोटी शाखाओं में बँट जाती हैं जिसे श्वसनिका (Bronchioles) कहते हैं। प्रत्येक ब्रांकियोल के सिर पर वायु-कोषों या एलवियोलाई (Alveoli) का एक गुच्छा होता है। इनकी संख्या बहुत ही अधिक होती है। प्रत्येक वायुकोष का दीवार की झिल्ली बहुत ही पतली होती है। यह इतनी पतली होतो है कि अन्दर का श्वासनली द्वारा आई हुई हवा और रक्त को नलियों की पतली-पतली कोशिकाओं के अन्दर उपस्थित रक्त के बीच कोशिका की दीवार और पतली झिल्ली के सिवाय कुछ नहीं होता। यहों पर शरीर की शिराओं द्वारा घूम कर जो रक्त हृदय में स्वच्छ करने के लिए भेजा जाता है, साफ होता है। वायुकोष के अन्दर का वायु से ऑक्सीजन जो जीवन के लिए आवश्यक है गंदा रक्त ग्रहण कर शुद्ध होता है, और अपनी गंदगियाँ जैसे कार्बन-डाईआक्साइड (CO_2) आदि हवा को वापिस दे देता है। उड़ने वाली वस्तुएं जैसे मद्य (Alcohol) और लहसुन आदि के सेवन से उसका गंध भरा तेल आदि भी रक्त वायु को दे देता है। यही कारण है कि श्वास से इनके बाहर आने पर गन्ध आस-पास फैल जाती है। इस प्रकार फेफड़े शरीर से मल बाहर निकलने वाले विसर्जन अंगों (Excretory Organs) का भी कार्य करते हैं। इसके विपरीत श्वासनली से फेफड़े में यदि कोई घुलनशील वस्तु खींची जाय तो उसका प्रभाव रक्त और वायु में होने वाले आदान-प्रदान पर पड़ता है। जैसे नशीली वस्तुओं के धुएं, सिगरेट और गाँजा आदि पीने से नशा आ जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि नशोलो वस हवा से मिलकर फेफड़ों के वायुकोशाओं में भर जाती है और उसका शोषण रक्त में होते ही हम उसके प्रभाव का अनुभव करते हैं। रक्त और वायु में परस्पर आदान-प्रदान की अन्त:वायुकोष श्वसन (Internal Alveolar Respiration) कहलाता है।

फुफ्फुस एवं फुफ्फुसावरण (Lungs and Pleura) :—फेफड़े संख्या में दो होते हैं, जो पूरे वक्षस्थल के अन्दर फैले रहते हैं। दाहिना फेफड़ा दाहिनी तरफ और बायाँ फेफड़ा बायीं तरफ होता है। ये फेफड़े चारों तरफ से एक दोहरी झिल्ली से घिरे होते हैं, जिसे परिफुफ्फुस (Pleura) कहते हैं। फेफड़ों का आकार एक चोंगे के समान होता है जिसके ऊपर का हिस्सा पतला होता है और गले के अन्दर जत्रुकास्थि (Clavicle) के पीछे और उससे एक इञ्च ऊपर तक रहता है। इस हिस्से को फुफ्फुस शिखर (Apex of the Lung) कहते हैं। इसके नीचे का हिस्सा चौड़ा होता है। फेफड़े का आधार अवनत (Concave) होता है और इस प्रकार का बना हुआ है कि महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm) के ऊपरी उन्नत (Convex) भाग के ऊपर पूरे तौरे से स्थित रहे। अग्रतल (Anterior Part), पार्श्व तल (Lateral Part) और पश्चतल (Posterior Part) करीब-करीब उन्नत तल होते हैं। फेफड़े के ऊपरी तथा अभिमध्य (Medial) भाग को जिस स्थान पर श्वसनी (Bronchial Tubs) प्रवेश करते हैं, उस स्थान को हाइलम (Hilum) कहते हैं। अभिमध्य (Medial) भाग में दोनों फेफड़ों के आकार में कुछ अन्तर हो जाता है। दाहिने फेफड़े का अभिमध्य भाग (Medial Part) ऊपर से नीचे तक करीब-करीब एक ही समान रहता है, लेकिन बायें फेफड़े में Second Inter Costal Space के Level से लेकर 6th Inter Costal Space के Level तक अन्दर तथा बायीं तरफ को दबा हुआ है और जिसके कारण एक रिक्त स्थान उत्पन्न हो जाता है। इस खाली स्थान को मध्यावकाश (Mediastinum) कहते हैं और यहीं पर हृदय स्थित होता है।

यदि वक्षास्थि एवं पशुंकायें (Sternum and ribs) काट कर देखा जाय तो बीच में हृदय दिखाई पड़ेगा और हृदय के दाहिने तरफ दायाँ फेफड़ा नीचे की तरफ रहेगा तथा हृदय की बायीं तरफ बायाँ फेफड़ा दिखलाई पड़ेगा। दाहिने फेफड़े के अभिमध्य किनारे (Medial Border) का कुछ हिस्सा हृदय के दक्षिण

अलिन्द (Right Auricle) के ऊपर Overlap करता है। इसी प्रकार वाम फुफ्फुस (Left Lung) का अभिमध्य किनारा (Medial Border) वाम निलय (Left Ventricule) के बायें किनारे के ऊपर Overlap करता है, और



चित्र सं० ३८--वक्ष, फेफड़ा और परिफुफ्फुस

दोनों फुफ्फुस महाप्राचीरा पेशी के ऊपरी धरातल पर स्थित रहते हैं। दाहिने फेफड़े के नीचे महाप्राचीरा पेशी रहती है और महाप्राचीरा पेशी के नीचे यकृत

रहता है। हृदय के नीचे महाप्राचीरा का मध्य भाग रहता है और उसके नीचे आमाशय (Stomach) रहता है। इसी प्रकार बायें फेफड़े के नीचे महाप्राचीरा रहती है, और महाप्राचीरा के नीचे प्लीहा (Spleen) रहती है।

फेफड़े की परीक्षा बाहर से करने के लिए हम लोगों को चाहिए कि उसका विस्तार अच्छी तरह से समझ लें। फेफड़े का शिखर (Apex) या ऊपरी कोना जत्रुकास्थि के बीचो-बीच एक इञ्च ऊपर Supra Clavicular Space में रहता है। दाहिने फेफड़े का अभिमध्य किनारा शिखर से आरम्भ होकर नीचे को Sternum के दाहिने किनारे के नीचे से होता हुआ सातवें Inercostal Space तक पहुँचता है, वहाँ से फेफड़े का अग्र निम्न किनारा (Anterior Inferior Border) शुरू होता है और स्तन रेखा (Mammary Line) के १० वें Inter Costal space के Level तक पहुँचता है, तथा वहाँ से कक्ष रेखा (Axillary Line) से होता हुआ रीढ़ की हड्डी के पास तक पहुँच जाता है। बायें फेफड़े का अभिमध्य किनारा (Medial Border) भी दाहिने के समान तीसरे Intercostal Space तक उसी तरह रहता है, और वहाँ से अभिमध्य में (Medial Side) में घूम कर अन्दर से चला जाता है, फिर नीचे घूम कर वह पीछे की तरफ चला जाता है। इस प्रकार बायें फुफ्फुस के अभिमध्य (Medial Side) में एक जगह निकल आती है। जिसके अन्दर हृदय स्थित रहता है। जैसा कि ऊपर वताया गया है। इसलिये चिकित्सक को चाहिये कि फेफड़े के इन्हीं क्षेत्रों में परीक्षा करें।

श्वसन-क्रिया

(Respiration)

श्वसन-क्रिया (Respiration) से तात्पर्य है श्वास लेना और श्वास निकालना। श्वास लेने की क्रिया को प्रश्वसन (Inspiration) और बाहर निकालने की निःश्वसन (Expiration) क्रिया कहते हैं।

(अ) प्रश्वसन (Inspiration) :—महाप्राचीरा (Diaphragm) एक गोल गुम्बज के समान होता है। जब यह पेशी सिकुड़ती है तो यह चपटा हो जाता है। जिससे वक्षगुहा का आयतन बढ़ जाता है। कुछ पेशियों की स्थिति पसलियों के बीच में होती है और इन पेशियों के संकोचन से पसलियाँ ऊपर उठ जाती हैं जिससे वक्षस्थित (Sternum) सीने की हड्डी उभर जाती है। वक्ष की भीतरी पसलियों के ऊपर उठने तथा महाप्रचीरा पेशी (Diaphragm) के पचटे होने की वजह से वक्षगुहा का भीतरी आयतन सभी दिशाओं में बढ़ जाता है। इसका वजह से फेफड़े को फैलने का अधिक अवसर प्राप्त हो जाता है। फेफड़े के इस प्रकार फैलने से उनके अन्दर के बढ़े स्थान में हवा भर जाती है।

(ब) निःश्वसन (Expiration)—ढीले होने पर महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm) गोल गुम्बज के आकार की पुनः हो जाती है और दो पसलियों को बाँधनेवाली पसलियाँ नीचे झुक जाती हैं। इससे वक्षगुहा का आयतन कम हो जाता है। इससे फेफड़े पर दबाव पड़ता है जिससे उनके भीतर की हवा का कुछ भाग बाहर निकल जाता है। यह श्वास निकालने की क्रिया छाती की दीवार के लचकदार होने से पुनः अपनी स्थिति पर वापस आने तथा महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm) के ढीले होकर ऊपर फूल जाने पर होती है।

श्वास-क्रिया निम्नलिखित बातों पर निर्भर है :—

(१) किसी स्थान की समुद्र के धरातल से ऊँचाई-नीचाई :—जो स्थान समुद्र के धरातल से ऊँचे होते हैं वहाँ वायु का दबाव बहुत कम होता है और वायु का सुगमता से समावेश होता है। ऐसे स्थान के निवासियों की श्वास-क्रिया तेज होती है और अच्छी होती है। इसलिए यक्ष्मा (T. B.) के रोगियों को पहाड़ पर रखा जाता है। समुद्र के धरातल पर जिस हवा की मात्रा के लिए कम बार श्वास लेना पड़ता है उसी मात्रा के लिये ऊँचाई पर कई बार श्वास लेना पड़ता है।

इसके विपरीत जो स्थान समुद्र के धरातल के नीचे होता है वहाँ की वायु का दबाव बहुत अधिक होता है और श्वास लेने में तकलीफ होती है। काम करने वाले थोड़ी देर में थक जाते हैं। इसके अलावा अधिक ऊँचाई या अधिक नीचाई पर जाने वाले Air Bag लेकर जाते हैं। इस थैली में वायु ७६ सेण्टीमीटर दबाव पर रहती है जो समुद्र की सतह पर धरातल पर का दबाव है।

(२) फेफड़े के अन्दर वायु का दबाव (Intrathorasic Pressure) :—श्वास निकलने के बाद फेफड़े की कोषाओं के अन्दर वायु का दबाव घट जाता है और इतना घट जाता है कि करीब-करीब वायुकोषाओं के अन्दर हवा एकदम नहीं रह जाती जिसका परिणाम होता है कि बाहर की हवा अन्दर की ओर आती है तथा वायुमण्डल में वायु का दबाव फेफड़े के अन्दर वायु के दबाव से अधिक होता है। इससे वायु अधिक से कम दबाव वाले भाग में पहुँच जाती है। ठीक इसका उलटा श्वास निकलने पर होता है। श्वास लेने के बाद फेफड़े के अन्दर की वायु का दबाव बाहरी वायुमण्डल के दबाव से अधिक होता है। इससे फेफड़ा सिकुड़ने लगता है और वायु बाहर निकल जाती है।

(३) फेफड़े का लचीलापन (Elasticity of Chest Wall)—चूँकि फेफड़े के सेल्स की दीवारें लचीली होती हैं और वह ठीक वैसे ही काम करती हैं जैसे फुटबाल के अन्दर रबड़ की नली यानी ब्लाडर। लचीली होने के कारण वायु का समावेश आसानी से होता है। रोग से जब दीवारें कड़ी पड़ जाती हैं तो श्वास लेने में तकलीफ होती है।

(४) वक्षस्थल की भित्ति तथा महाप्राचीरा की गति (Movement of Chest Wall and Diaphragm) :—जब हम श्वास लेते हैं तो वक्ष की दीवार और सामने की तरफ फैलती है जिसका परिणाम यह होता है कि सीने के अन्दर जगह बढ़ जाती है और फेफड़ा फैलने लगता है तथा साथ-साथ महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm) नीचे की ओर झुक जाती हैं। नीचे की तरफ जगह बढ़ जाने से फेफड़ा नीचे की ओर फैलने लगता है।

(५) मानसिक अवस्था (Mental Condition) :—मानसिक अवस्था का भी श्वास पर बहुत असर पड़ता है। क्रोध के समय, डर के समय, घबड़ाहट के समय श्वास की गति बढ़ जाती है। दौड़ने पर भी श्वास की गति बढ़ जाती है। सोते समय श्वास की गति घट जाती है।

(६) फेफड़े की गति पर उम्र का असर :—छोटे बच्चों की श्वासक्रिया जवानों की अपेक्षा अधिक होती है और बूढ़े को जवानों से कम होती है। एक जवान मनुष्य की श्वास-गति १८ से २४ प्रति मिनट होती है।

श्वसन-क्रिया से लाभ

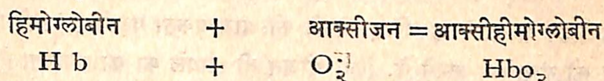
इस विषय में आपको यह पहले बता देना आवश्यक होगा कि श्वास-क्रिया फेफड़े के अतिरिक्त चर्म के द्वारा भी होती है। चर्म के अन्दर जो महीन-महीन छेद होते हैं उनके द्वारा वायु का समावेश होता है और उनसे बाहरी तन्तु शुद्ध वायु ग्रहण करते हैं।

श्वास लेने का उद्देश्य रक्त की शुद्धि है। जो हवा श्वास के द्वारा फेफड़े में प्रवेश करती है उसमें ७९% नाइट्रोजन होती है और २१% आक्सीजन तथा अन्य गैसें होती हैं। आक्सीजन रक्त को शुद्ध ही नहीं करता बल्कि शरीर के अन्दर जो संकोच (Contraction) की क्रिया होती है उसे सहायता देता है। यह चयापचय (Metabolism) शरीर के हर ऊतक में चलता रहता है। इसमें शक्ति (Energy) की उत्पत्ति के लिये कोषाओं (Cells) की टूट-फूट (Katabolism) और उनकी पुनः निर्माण (Anabolism) क्रियायें सम्मिलित हैं।

Exchange of Gases in Lungs)

जिस समय हम श्वास लेते हैं उस समय शुद्ध वायु फेफड़े के अन्दर जाती है। फेफड़े की कोषाएँ बहुत छोटी होती हैं और उनमें कोशिकाएँ गुथी रहती हैं। ये केशिकाएँ बहुत ही करीब होती हैं और इनकी दीवारें भी बहुत ही करीब होती हैं। वायु फेफड़े के अन्दर पहुँचने के बाद केशिकाओं में पहुँचती है और इनसे लाल

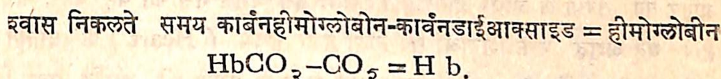
रुधिर कोषायें इस वायु का ग्रहण करती हैं। इससे सिर्फ आक्सीजन Oxygen ही सोख ली जाती है।



हिमोग्लोबीन + आक्सीजन = आक्सीहीमोग्लोबीन

$Hb + O_2 \quad HbO_2$

जब हम वायु बाहर निकालते हैं तो ठीक इसका उल्टा होता है। श्वास निकलने के समय केशिकाओं के अन्दर अशुद्ध रक्त होता है यानी कि लाल रक्त कण (R. B. C.) आक्सीजन और कार्बन के संयोग से बने हुए कार्बनडाइ-आक्साइड से भरे रहते हैं। श्वास निकलते समय यह गैस (R. B. C.) से निकलकर फेफड़े के भीतर चली जाती है।

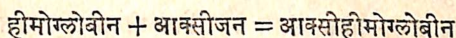


श्वास निकलते समय कार्बनहीमोग्लोबीन-कार्बनडाईआक्साइड = हीमोग्लोबीन

$$HbCO_2 - CO_2 = Hb.$$

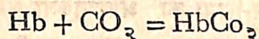
Exchange of Gases in Tissues

जिस समय शुद्ध रक्त ऊतकों में पहुँच जाता है, तब वहाँ की कोषाएँ (Cells) शुद्ध रक्त से आक्सीजन शोषित करते हैं।



हीमोग्लोबीन + आक्सीजन = आक्सीहीमोग्लोबीन

दूसरी क्रिया यह होती है कि ये कोषायें (Cells) अपना कार्य करते समय कार्बन डाइ आक्साइड (CO_2) गैस निकालते हैं। इस गैस का दबाव कैपेलरी रक्त के दबाव से बहुत कम होता है। जिसका परिणाम यह होता है कि कैपेलरी के एक CO_2 को शोषित कर लेता है और उसमें अन्दर निम्न क्रिया होती है :—



$$Hb + CO_2 = HbCo_2$$

यह अशुद्ध खून कहलाता है जो काफी गाढ़ा रहता है और रक्त भी स्वयं कुछ भारी हो जाता है। यह अशुद्ध रक्त या शिरारक्त (Venous Blood) कहलाता है।

श्वास-क्रिया का अभिप्राय (Object of Respiration) :—मनुष्य का ही नहीं बल्कि सभी जीवधारियों के जीवन का प्रधान लक्षण साँस लेना है।

भोजन और पानी के बिना तो हम कुछ समय तक जीवित भी रह सकते हैं किन्तु बिना साँस लिए तो २-३ मिनट जिन्दा रहना कठिन हो जाता है। जिस प्रकार स्टीम इञ्जन के चलने के लिए कोयले की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार हमारे शरीर को संचालित करने के लिए भोजन ही कोयले का काम करता है। जिसको जलाकर शक्ति उत्पन्न करने के लिए आक्सीजन की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए सभी जीवधारियों का श्वास लेना आवश्यक कार्य है।

जैसा कि हम पहले बयान कर चुके हैं कि ऊतकों के कार्य करने के समय CO_2 गैस निकलती है और गैस स्वयं अशुद्ध है तथा यह अशुद्ध रक्त के द्वारा ही बाहर की तरफ ले जायी जाती है। अतः इस अशुद्ध गैस को वह ग्रहण कर लेता है। यह अशुद्ध रक्त शिराओं से होता हुआ हृदय (Heart) के दाहिने भाग दक्षिण अलिन्द में पहुँचता है और दाहिने भाग से फेफड़े की अशुद्धि बाहर निकल कर शुद्ध होने के लिए जाती है। वहाँ से निःश्वसन के द्वारा अशुद्धि बाहर निकल जाती है। यदि यह गैस न निकले और रक्त में अधिक समय तक रह जाय तो रक्त को अशुद्ध कर देती है जिसके फलस्वरूप आक्सीजन कम होने से स्वास्थ्य ही नहीं बिगड़ जाता बल्कि उससे प्राण निकलने का डर रहता है। इस-लिए श्वास-क्रिया का होना बहुत आवश्यक है क्योंकि इससे रक्त अपनी अशुद्धियाँ बाहर निकाल कर आक्सीजन ग्रहण करता है। अर्थात् शुद्ध हो जाता है।

कृत्रिम श्वसन—(Artificial Respiration) :—जब मनुष्य की श्वास-क्रिया किसी कारण से एकदम कम हो जाती है और श्वास लेने से वह असमर्थ हो जाता है ऐसी दशा में कृत्रिम श्वास-क्रिया की आवश्यकता पड़ जाती है, क्योंकि श्वास-क्रिया बन्द नहीं होनी चाहिए। ऐसी दशा में तुरन्त ही इस क्रिया को प्रयोग में लाना चाहिए नहीं तो एक मिनट भी देर करने से मनुष्य के प्राण निकलने की आशंका रहती है।

———

कृत्रिम श्वसन क्रिया
(Artificial Respiration)

यह देख चुके हैं कि छाती के फैलने से वायु अन्दर प्रवेश करती तथा उसके सिकुड़ने से बाहर निकलती है। इस प्रकार का कार्य प्रकृतितः अपने-आप होता रहता है। इसका बन्द हो जाना ही श्वासावरोध है। कृत्रिम विधि से वक्ष को संकुचित करना तथा फिर फैलाना ही कृत्रिम श्वास-क्रिया का मूल मन्त्र है। इसकी दो विधियाँ हैं—शेफर की विधि तथा सिल्वेस्टर की विधि।

शेफर की विधि
(Schaffer's Method)

(१) रोगी के मुँह को नीचा करके लिटाना चाहिए। पैर फैले रहें, भुजायें सिर से आगे की ओर रहें तथा मुँह एक ओर को रहे ताकि श्वास को

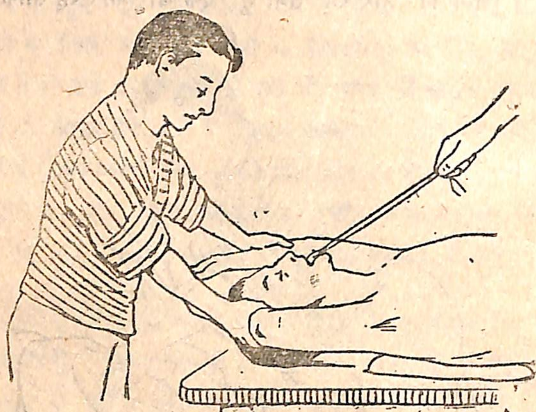


:चित्र सं० ३९–सिल्वेस्टर की विधि-बहिश्वंसन

प्रवेश करने में बाधा न हो। स्वतः रोगी की बगल में घुटनों के बल बैठ जाओ।

(२) बहिर्श्वसन—अपने हाथों को पीठ पर वक्ष के नीचे के भाग पर इस प्रकार रखो कि उनके नीचे के किनारे कमर की अस्थि के ऊपरी किनारों को लगभग छूते रहें, कलाई तथा अँगूठे एक दूसरे के बिल्कुल पास हों, एवं अँगुलियाँ नीचे की ओर रुख किए पेट के ऊपरी भाग पर रहें। अब कुछ उठकर तथा रोगी के शरीर पर झुक कर अपनी भुजाओं को सीधा रखते हुए ही अपने शरीर का भार भुजाओं के सहारे ही रोगी के ऊपर डालो। इस भार के डालने से ही छाती संकुचित होगी तथा वायु बाहर निकलेगी।

(३) अन्तर्श्वसन—अपने हाथों को वहीं रखा रहने दो किन्तु धीरे-धीरे पीछे की ओर झुक कर अपने शरीर का भार रोगी पर से हटाते हुए पूर्व स्थिति में आ जाओ। अब वक्ष प्रान्त के फैलने से वायु अन्दर प्रवेश करेगी।



चित्र संख्या ४०—सिल्वेस्टर की विधि अन्तर्श्वसन

सिल्वेस्टर की विधि (Silvester's Method)

(१) रोगी को पीठ के आधार पर चित लिटा दो, कपड़े ढीले कर दो तथा कन्धे के नीचे कोई गद्दी रख दो।

(२) ध्यान रखो कि वायु का मार्ग खुला रहे। एक सहायक को चाहिये कि रोगी की जिह्वा को सँभाल कर पकड़ कर बाहर की ओर खींचे रहे, क्योंकि जिह्वा के पीछे गिरने से श्वास-मार्ग बन्द हो जायगा।

(३) बहिर्श्वसन—रोगी के सिर के पास झुक जाओ और यदि रोगी ऊँची मेज पर हो तो खड़े रहो। रोगी की भुजाओं को कुहनी के पास पकड़ कर उसकी छाती पर छाती :की हड्डी के दोनों ओर रखकर दबाओ। इस तरह वक्ष-प्रान्त के संकुचन करने से वायु बाहर निकलेगी।

(४) अन्तर्श्वसन—दोनों बाहुओं को उसी प्रकार पकड़े हुए ऊपर-बाहर तथा अपनी ओर खींचो। इस प्रकार करने से वक्षप्रान्त के फैलने से वायु अन्दर प्रवेश करेगी।

शेफर अथवा सिल्वेस्टर विधि से यह कृत्रिम श्वास-क्रिया एक मिनट में बारह बार तक दुहराते रहना चाहिये। दबाव दो सेकेण्ड तथा दबाव हटाना तीन सेकेंड हो। जब स्वतः श्वास आने लगे तब आपकी गति भी उसी के अनुसार होनी आवश्यक है अर्थात् जब बहिर्श्वसन स्वतः हो रहा हो तभी दबाव पड़े। साथ ही रोगी को गर्मी पहुँचानी चाहिये। जब स्वतः श्वास आने लगे तब कृत्रिम श्वास-क्रिया बन्द की जा सकती है, किन्तु प्राकृतिक श्वास बन्द होती दिखाई पड़ने पर शीघ्र ही फिर वह क्रिया दुहरानी चाहिए। जब तक प्रकृतितः श्वास न आने लगे या डाक्टर रोगी को मृत न घोषित कर दे तब तक कृत्रिम श्वास-क्रिया करते रहना आवश्यक है।

लबोर्ड की विधि
(Labord's Method)

इस विधि में रोगी को पीठ के बल लिटाते हैं तथा दोनों गालों को दबा कर रखते हैं। किसी सूखे कपड़े से उसकी जीभ को. पकड़ कर खींचना चाहिए और उसे जरा ऊपर करके २ सेकेण्ड तक छोड़ देना चाहिए जिससे जीभ भीतर न चली

जाय। इस प्रकार से १ मिनट में १५ बार क्रिया करनी चाहिए। इस कार्य से फ्रेनिक तन्त्रिका (Phrenic Nerve) को उत्तेजना मिलती है और इससे महाप्राचीरा (Diaphragm) का संकोच होने से स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास की क्रिया के लौट आने की अत्यधिक रूप से सम्भावना होती है।

रॉकिंग या ईव की विधि
(Rocking or Eve's Method)

रोगी के शरीर के बराबर लम्बा और चौड़ा एक तख्ता लेकर उस पर रोगी को पीठ के बल पर लिटा दें। इस तख्ते के नीचे ठीक बीच में एक दूसरी गोलाकार लकड़ी रख दें। अब रोगी के दोनों हाथों और पैरों को पट्टी से तख्ते के साथ बाँध दें परन्तु सीने और पेट को नहीं बांधें। अब रोगी को तराजू के पल्ले के समान एक बार सिर और दूसरी बार पैर को उठाकर जमीन से ऊँचा-नीचा किया जाता है। इस क्रिया को Sea-Saw क्रिया कहते हैं। इस प्रकार से रोगी को ४०° के कोण तक ऊँचा-नीचा करना चाहिए और एक मिनट में १२-१५ बार करना चाहिये। सिर के नीचे की तरफ जाने से उसके पेट के अन्दर की आन्त्र ऊपर की ओर खसक कर महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm) पर दबाव डालेगी। फिर ऊँचा होने से वह खसक कर नीचे चली जाती है। इस प्रकार से उसकी श्वास-प्रश्वास क्रिया चालू हो जाती है। इस विधि से कृत्रिम श्वसन देने वाले व्यक्ति या परिचारक शीघ्र परिश्रान्त नहीं होते हैं तथा इसके लिए विशेष रूप से बनाए गए यन्त्र भी आते हैं।

———

चौथा अध्याय

पाचन-तन्त्र

(Digestive System)

पाचन-संस्थान से अभिप्राय उन अंगों से है जो पाचन-क्रिया में भाग लेते हैं। इसमें दो प्रकार के अंग सम्मिलित हैं। (१) पाचन-नली (Alimentary Canal), (२) पाचन-ग्रन्थियाँ (Digestive Glands)।

पाचन-नली मुख से आरम्भ होती है और उदर से होती हुई गुहा पर समाप्त होती है। पचान-ग्रन्थियाँ शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में स्थित हैं। यह बाद में विस्तारपूर्वक बतलाया जायगा। इन अंगों का मुख्य कार्य भोजन को पचाकर शोषण के लायक बनाना तथा उचित और आवश्यक मात्रा में शोषण करके रक्त द्वारा हर एक तन्तु को पहुँचाकर उन्हें पुष्ट बनाना और उनको कार्य करने लायक शक्ति देना है।

जिस प्रकार एक कुटुम्ब के पुरुष लोग काम करके अन्न घर में पहुँचाते हैं और औरतें उस अन्न को पकाकर उनको खिलाती और स्वयं खाती हैं उसी प्रकार मनुष्य भोजन पेट में डाल देता है और पेट आदि पाचन-संस्थान के अंग उसे पचाकर सारे शरीर को पहुँचाते हैं। केवल इतना ही नहीं बल्कि कुछ भोजन-सामग्री जरूरत के लिए जमा भी रहती है ताकि वह उपवास के समय काम में लायी जा सके।

हमारा भोजन

(Our Food)

पाचन-क्रिया की जानकारी प्राप्त करने के पूर्व यह आवश्यक है कि हम लोग भोजन के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त कर लें। भोजन मनुष्य को शक्ति और

निर्माण के लिए उसी प्रकार आवश्यक है जैसे श्वास के लिए वायु, प्यास के लिए जल। शरीर में ६०% जल होता है और बाकी ठोस पदार्थ हैं। ९०% जल की पूर्ति शुद्ध जल द्वारा तरल पदार्थ जैसे शर्बत, तरकारी का शोरवा, दूध, दाल तथा फल के जलीय अंश द्वारा की जाती है। जल के अलावा हमारे भोजन के निम्नलिखित भाग हैं :—

(१) प्रोटीन (Protein)
(२) वसा (Fats)
(३) कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate)
(४) नमक (Salts)
(५) विटामिन (Vitamins)

(१) प्रोटीन—यह एक जैव (Organic) वस्तु है जिसके अन्दर नाइट्रोजन (Nitrogen) नामक तत्व अधिक मात्रा में मिलता है। यह शरीर की मांसपेशियों को ताकतवर बनाती है ताकि मनुष्य के अन्दर काम करने की ताकत हमेशा बनी रहे। इसके साथ-ही-साथ शरीर के ऊतकों की प्रोटीन की कमी को पूरा करती है। यह निम्नलिखित खाद्य-पदार्थों में पायी जाती है :—

(१) मांस (प्रथम श्रेणी का प्रोटीन), (२) मछली, (३) अंडा, (४) दूध, (५) हर प्रकार की दाल, (६) सेम।

(२) चर्बी (Fat)—यह भी शरीर के लिए बहुत उपयोगी है। इसके द्वारा शरीर को गर्मी तथा आँच मिलती है। जिस प्रकार दीपक के जलने में तेल या घी की आवश्यकता है उसी प्रकार शरीर के तन्तुओं को मजबूत बनाने के लिए चर्बी की आवश्यकता पड़ती है। यह दीर्घ काल तक स्थिर मात्रा में शक्ति उत्पन्न करती है। यह प्राणिज एवं वानस्पतिक दो वर्ग की होती है।

यह निम्नलिखित वस्तु में पायी जाती है—

(१) घी, (२) तेल, (३) दूध, (४) मक्खन, (५) चर्बी, (६) हर प्रकार के सूखे मेवे आदि।

(३) कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate) :—यह Carbon, Oxygen और Hydrogen का मिश्रण है। यह शरीर को मजबूत बनाये रखता है तथा ताकत देता है। इसलिए इसका ध्यान भोजन में बहुत महत्वपूर्ण है। यह निम्नलिखित वस्तुओं में पाया जाता है।

चीनी, गुड़, गन्ना तथा मीठे फल, गाजर, चुकन्दर, मिठाइयाँ, केक तथा दूध में। यह जौ, गेहूँ, बाजरा तथा ज्वार जैसे अन्न में भी पाया जाता है।

(४) नमक (Salt) :—इसकी अधिकतर मात्रा सोडियम क्लोराइड (Sodium Chloride) के रूप में लेते हैं। नमक खाद्य-पदार्थों के अलावा निम्नलिखित रूप में होता है :—

शरीर में पाये जाने वाले नमक :—

(1) Phosphate of Iron, (2) Calcium Phosphate, (3) Sodium Phosphates, (4) Sodium Chloride, (5) Potassium Chloride, (6) Sodium Sulphate, (7) Calcium Chloride, (8) Potassium Sulphate, (9) Magnesium Phosphate.

इन नमकों की कमी के कारण तथा इनके योग के कारण रोग पैदा होने का डर रहता है।

(५) विटामिन्स (Vitamins) जीवनीय गण:—यद्यपि साधारण भोजन के अन्दर मनुष्य की आवश्यकता की करीब-करीब सभी वस्तुएँ पायी जाती हैं फिर भी कुछ प्राकृतिक वस्तुएँ ऐसी भी होती हैं जिनके अभाव से सब कुछ होते हुए मनुष्य के शरीर की उचित वृद्धि नहीं हो पाती। इन्हें आधुनिक काल में विटामिन कहते हैं। ये न तो हमको शक्ति देते हैं न गर्मी और न तो टूट-फूट की मरम्मत में सहायक होते हैं फिर भी हम सभी के स्वास्थ्य के लिए बहुत आवश्यक हैं। विटामिन्स रहित भोजन निष्प्राण होता है। इनकी कमी के कारण नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

विटामिन्स कई प्रकार के होते हैं। उनमें कुछ ऐसे भी हैं जो चर्बी में घुलनशील हैं और कुछ जल (Water) में। विटामिन A D E और K चर्बी में घुलते हैं बाकी जल में घुलनशील हैं।

(१) Vitamin A (विटामिन ए) :—चर्बी में घुलनशील है और हरी वस्तुओं में अधिकतर प्राप्त होता है। इसलिए जो बराबर हरी वस्तुएँ घास, पेड़ के पत्ते खाते हैं, उन जानवरों को विटामिन 'ए' उन्हीं वस्तुओं से प्राप्त होता है। गायें तथा बकरियाँ जो हरी घास इत्यादि अधिक खाती हैं उनके दूध तथा मक्खन में विटामिन ए की मात्रा अधिक होती है। इसके अलावा विटामिन ए अण्डे और मछली के तेल में तथा हरी सब्जी में अधिक पाया जाता है। विटामि 'ए' के सेवन से उचित वृद्धि होती है। अधिक गर्म करने से विटामिन 'ए' नष्ट हो जाता है। इसका दृष्टि से घना सम्बन्ध है। इस विटामिन की कमी से नक्तान्धता होती है।

(२) विटामिन बी$_1$ (Vitamin B_1) :—यह विटामिन पानी में घुलनशील होता है। यह विटामिन अनाज के बाहर वाले कण में होता है जो कूटते समय निकल जाता है। यह बिना चाले हुए आटे में पाया जाता है। यह विटामिन अण्डे की जर्दी में पाया जाता है। इस विटामिन से मनुष्य के शरीर में काफी स्फूर्ति आती है। भूख लगती है। इसकी कमी से बेरी-बेरी (Beri-Beri) नाम का रोग हो जाता है। यह मांस, कलेजी, दूध, सिरका, पाव रोटी, अण्डा, दही और खमीर में भी पाया जाता है। पालक के साग में यह विटामिन बहुत पाया जाता है। इसकी कमी से निद्रानाश एवं पेशियों में पीड़ा होती है।

(३) विटामिन बी$_2$ (Vitamin B_2) :—यह विटामिन (राइबोफ्लेविन) गर्म करने पर भी नष्ट नहीं होता, बल्कि शरीर की गर्मी को बाहर बनाये रखता है। इसके रहने से मनुष्य में वृद्धि होती है। यह भी साग, मांस; मछली तथा अण्डे में मिलता है। इसकी कमी से मुख में व्रण होते हैं।

(४) विटामिन${}_{१२}$ (Vitamin B_{12}) :—यह रक्त निर्माण में कार्य करता है तथा प्रोटीन को नाश होने से बचाता है।

(५) विटामिन बी${}_{६}$ (Vitamin B_6 :—यह गर्मियों में होने वाले वमन एवं जी-मिचलाने को रोकता है।

(६) विटामिन सी (Vitamin C) :—यह अम्ल विटामिन जल में घुलनशील होता है और हर स्कर्वी (Scurvy) रोग से मनुष्य को बचाता है। यह विटामिन ताजे फल, हरी तरकारियों, बीज के अँखुओं में पाया जाता है। जहाजों में जब हरी तरकारी इत्यादि उपलब्ध नहीं रहती तो उस समय विटामिन 'सी' की बहुत कमी पड़ जाती है। जिसका परिणाम यह होता है कि पूरे जहाजवासियों को स्कर्वी की बीमारी हो जाती है। इसके प्रभाव से हृदय भी बहुत कमजोर पड़ जाता है। जिसके कारण रक्तहीनता की बीमारी हो जाती है। क्षार वस्तुएँ इसके लिए घातक होती हैं। क्योंक यह स्वयं अम्ल है। इस विटामिन को (Ascorbic Acid) एस्कारबिक एसिड भी कहते हैं। यह आँवला, नीबू, सन्तरा में खूब पाया जाता है।

(७) विटामिन डी (Vitamin D) :—यह विटामिन शरीर के अन्दर कैल्शियम (Calcium) की कमी को पूरा करता है। हड्डियों को मजबूत बनाता है और साथ-ही-साथ रक्त को भी शुद्ध करता है। अधिक गर्म करने पर भी यह नष्ट नहीं होता। इसके अभाव से चर्मरोग अधिक होता है। बच्चे हृष्ट-पुष्ट न होकर दुबले-पतले मालूम पड़ते हैं। सूखा रोग भी इसके अभाव से हो जाता है। यह विटामिन सूर्य के प्रकाश में ही शरीर में बनता है और मछली, मक्खन तथा मछली के तेल (Codliver Oil) में पाया जाता है। इसकी कमी से रिकेट नामक रोग होता है।

(८) विटामिन ई (Vitamin E) :—यह विटामिन भी चर्बी में घुलनशील है। यह तेल में भी पाया जाता है। इसकी कमी से वन्ध्यत्व (Sterility) उत्पन्न होता है और पुरुषों में अण्डकोष नष्ट हो जाता है। जिनको गर्भपात हमेशा होता है उनको Vit. E देने से बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इसका रक्त की धम-

नियों की दीवाल बनाने वाली पेशियों पर भी अच्छा कार्य है। इससे स्मरण-शक्ति बढ़ती है। अंकुरित अनाज में मिलता है।

(९) विटामिन के (Vitamin K) :—यह विटामिन रक्तस्राव को रोकने में सहायक होता है। अतः Coagulant कहलाता है। यह अण्डे तथा हरी पत्तियों में पाया जाता है। यह यकृत में रहता है।

भोजन का सिद्धान्त

(Principles of Dieting)

किसी भी मनुष्य का भोजन निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहता है।

(१) अवस्था (Age)।

(२) भौगोलिक परिस्थितियाँ (Geographical Conditions)।

(३) आर्थिक अवस्था एवं शारीरिक तथा मानसिक कार्य।

(१) अवस्था (Age) :—एक नवजात शिशु का पाचन-संस्थान भली प्रकार विकसित नहीं होता है और न तो पाचन-रस ही बनता है। इसलिए बच्चा सिवा माँ के दूध के और कुछ भी नहीं पचा सकता और यदि उसकी माँ के दूध नहीं रहता तो उस बच्चे को ऐसी औरत का दूध पिलाना चाहिए जिसके बच्चे की उम्र वही हो। यदि ऊपरी दूध पिलाना है तो ऊपरी दूध गाय का होना चाहिए। चूँकि गाय का दूध माँ के दूध से बहुत गाढ़ा होता है, इसलिए बच्चे को गाय का दूध इस प्रकार देना चाहिये।

(१) दूध—एक भाग।

(२) पानी—दो भाग।

(३) ग्लूकोज—मीठा करने लायक।

(४) चूने का पानी—दो या चार बूँद।

छोटे बच्चों को दूध समय-समय पर पिलाना चाहिये। ऐसा नहीं, कि जब वह रोने लगे तब दूध पिला दें। दूध देने में सफाई की बहुत जरूरत है।

दूध का बर्तन हमेशा ढँका रहना चाहिए। जिस बर्तन में दूध पिलायें वह साफ हो। दूध को ठण्डा नहीं पिलाना चाहिए बल्कि वह कुछ हलका गरम रहे। कभी-कभी फल का रस उपयोगी होता है। गर्मी के दिनों में बच्चों को पानी भी देना चाहिए।

बच्चा जैसे-जैसे बढ़ना शुरू करता है उसके अन्दर पाचन-शक्ति भी उसी रफ्तार से बढ़ती है, लेकिन यह रफ्तार करीब ५० वर्ष की अवस्था तक काम करती है और फिर जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है उसी के अनुपात में पाचनशक्ति भी कम हो जाती है।

बच्चा जब बड़ा होता है तो वह हर एक चीज को आसानी से कूँच सकता है, क्योंकि इस समय तक उसके सभी दाँत निकल आते हैं। इसी के साथ-साथ आमाशय भी बढ़ता है तथा यह आमाशय अपने से कई रस निकालना शुरू कर देता है जो भोजन को पचाने में सहायता पहुँचाते हैं। इस समय यकृत भी करीब पूर्ण रूप से अपना कार्य करता है तथा यह भी एक प्रकार का रस प्रदान करता है। मनुष्य जब अपनी युवावस्था में होता है उस समय पाचन-शक्ति अपने उच्च शिखर पर होती है।

जिस प्रकार मशीन के पुर्जे जैसे-जैसे पुराने होने लगते हैं कुछ समय के बाद फिर उनमें तेल या मरम्मत की जरूरत पड़ती है। उसी प्रकार मनुष्य के बुढ़ापे में आमाशय इत्यादि अन्य अंग जो भोजन के पाचन में सहायता पहुँचाते हैं, वह सब काम करते-करते शिथिल पड़ जाते हैं और इस वजह से पाचन-शक्ति भी कमजोर पड़ने लगती है और इस अवस्था में मनुष्य बहुत ही परहेजी खाना खाता है जो पाचन-शक्ति के वश में हो। इस अवस्था में ज्यादातर सादा तथा हल्का भोजन लेना चाहिए। अधिकतर भारी भोजन करने पर खून का दबाव (Blood Pressure) बढ़ जाता है।

(२) **भौगोलिक परिस्थितियाँ** (Geographical Conditions)—

प्रकृति का यह नियम है कि जिस स्थान की जो पैदावार होती है वही उस स्थान के मनुष्यों का भोजन हो जाता है। जैसे—बंगालियों का भोजन मछली होता है; मद्रासियों का भोजन मिरचा, इमली का झोल; काबुलियों का भोजन गोश्त, तन्दूरी रोटी और मेवे तथ टुण्ड्रा के रहने वालों का भोजन सेल मछली आदि। उत्तर प्रदेश में रोटी, दाल, चावल, तरकारी तथा गोश्त वगैरह सभी चलता है। क्योंकि गंगा-यमुना के मैदान में करीब-करीब हर प्रकार के अन्न उत्पन्न होते हैं।

(३) आर्थिक अवस्था (Economic Condition)—इस सम्बन्ध में यह लिखना अनुचित न होगा कि समस्या का पूरा उत्तरदायित्व आर्थिक अवस्था पर है। केवल इतना ही नहीं बल्कि मैं यहाँ तक दावे के साथ कहूँगा कि किसी भी मनुष्य का स्वास्थ्य उसकी आर्थिक दशा पर निर्भर है। किसी भी देश के निवासियों की अगर आर्थिक अवस्था में सुधार हो जाय और भोजन उन्हें पर्याप्त तथा उनके अनुसार मिलने लगे तो उस क्षेत्र के निवासियों का स्वास्थ्य बहुत ही अच्छा होगा। अधिक कार्य करने वाले को अधिक पौष्टिक भोजन चाहिए। कार्य शारीरिक जैसे, पहलवानों का हो या मानसिक जैसे क्लर्क, विद्यार्थी आदि का हो। भोजन लिंग और आकार पर भी निर्भर करता है।

(४) संतुलित भोजन (Balanced diet)—संतुलित भोजन वह भोजन कहलाता है जिसमें शरीर जिन-जिन खाद्य अंगों को जितनी मात्रा में चाहता हो वह खाद्य-अंग उतनी ही पर्याप्त मात्रा में उपस्थित हों और भोजन के अंगों की शरीर में कमी को भली प्रकार से पूरा कर सके। सबसे श्रेष्ठ भोजन दूध माना जाता है, क्योंकि इसमें भोजन के सभी भाग उचित मात्रा में मिलते हैं केवल लोहा मात्र नहीं होता।

साधारण काम करनेवाले मनुष्यों के भोजन में कम-से-कम अग्रलिखित वस्तुएँ होनी चाहिए—

प्रोटीन	दाल	१	,,
	शाक-सब्जी	५	,,
	फल	१½	,,
	दूध	७	,,
	मांस-मछली	२	,,
कार्बोहाइड्रेट	गेहूँ का आटा, चावल....	६-८ छटाँक	
	शक्कर	१	,,
वसा	मक्खन, घी और तेल....	१	,,

निम्न सारिणी से यह स्पष्ट होगा कि उपर्युक्त भोजन में मुख्य तत्व किस मात्रा में उपस्थित हैं :—

भोजन में मुख्य तत्वों की औसत मात्रा

भोजन	जल	प्रोटीन	चर्बी	लवण	चीनी	स्टार्च
आटा	३७	८	३	२	३	४७
चावल	१३	६	·१	०·५	०·५	७९
आलू	७५	२	०·२	०·८	४	१८
दाल	१५	२३	२	२	२	५५
गोश्त या मछली	७१	१९	५	१·३	४	—
दूध	८७	३५	४	०·७	५	—
अंडा	७४	१३	११	१	०·७	—
मक्खन	१५·५	०·६	८१	२·५	०·४	—
टमाटर	९४	१·०	०·२	०·५	४·३	—
संतरा	८७	०·९	०·२	·०५	११·२	—

उपर्युक्त टेबुल से यह मालूम होता है कि फल व साग-सब्जी मनुष्य के

लिए बहुत ही बहुमूल्य वस्तुएं हैं। लोहा हरी सब्जियों में अधिक पाया जाता है। इनसे विटामिन "ए" और "सी" लोहा, लवण और पानी आवश्यक मात्रा में मिल जाते हैं। दूध, घी और मट्ठा से कार्बोहाइड्रेट, चर्बी, प्रोटीन और लवण मिलते हैं। दूध में कैल्शियम और फासफोरस की पर्याप्त मात्रा होती है। इसके अतिरिक्त विटामिन "ए", "बी" १ और २ भी होते हैं। विलायती दूध में अल्ट्रावायलेट प्रकाश डालकर इसमें विटामिन "डी" उत्पन्न कर देते हैं। अल्ट्रा-वायलेट का काम धूप से भी लिया जा सकता है, क्योंकि उसमें वह होती है। अनाज तथा दाल, चावल में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा सबसे अधिक होती है किन्तु दाल में और वस्तुओं की अपेक्षा प्रोटीन की मात्रा सबसे अधिक होती है। मांस-मछली और अण्डे में प्रोटीन की मात्रा बहुत काफी होती है।

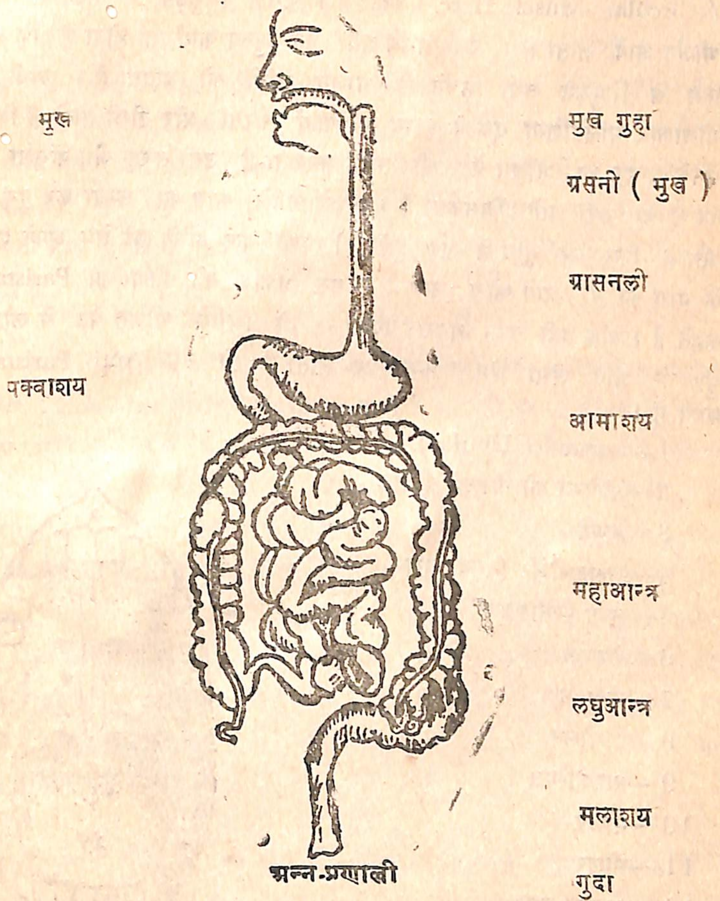
———

पाचन-अंग

(Digestive Organs)

पाचन-संस्थान में वे अंग सम्मिलित हैं जो पाचन-क्रिया में भाग लेते हैं। इनके दो भाग होते हैं। (१) पाचन-नली (Alimentary Canal), तथा (२) पाचन-ग्रन्थियाँ (Digestive Glands)।

पाचन-नली—यह मुख से आरम्भ होती है और गुदा (Anus) पर समाप्त होती है। इस नली की लम्बाई करीब ३० फीट होती है। यह मांसपेशियों की बनी हुई एक नली है, जिसका अन्दरूनी भाग श्लैष्मिक कला (Mucus membrane) से घिरा होता है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित भाग होते हैं—मुख, मुखगुहा, ग्रासनली (Oesophagus), आमाशय, पक्वाशय, छोटी आँतें, बड़ी आँतें और गुदा। इस नली के अन्दर स्थान-स्थान पर कुछ ऐसी ग्रन्थियाँ होती हैं जो भिन्न-भिन्न प्रकार के स्राव उत्पन्न करती हैं जिससे भोजन के पचने में सहायता मिलती है।

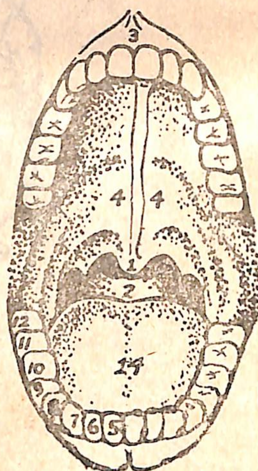


चित्र सख्या ४१

पाचन-नली की मांसपेशियाँ दो प्रकार की होती हैं। कुछ लम्बी होती हैं जिन्हें Longitudinal Muscle fibre कहते हैं। इनके संकोचन से नली की लम्बाई कम हो जाती है। दूसरी मांसपेशियों को गोलाकार मांशपेशियाँ

(Circular Muscle fi re) कहते हैं। इनके सिकुड़ने से नली के अन्दर भोजन आगे जाता है। इन मांसपेशियों का मुख्य कार्य यह होता है कि इनके क्रम से सिकुड़ने तथा फैलने से भोजन आँतों को बढ़ाता है। लम्बी और गोलाकार मांसपेशियाँ एक के बाद एक कार्य करती और ढीली होती हैं जिससे उनके अन्दर का भोजन पेट की तरफ सरकता है उसी तरह जैसे केंचुआ भूमि पर सरक कर आगे खिसकता है। पहले अगले भाग को लम्बा कर दूर बढ़ा देता है फिर उसे भूमि से दृढ़तापूर्वक चिपका कर पीछे छूटे शेष अपने शरीर के भाग को भी आगे खींच लेता है। इस प्रकार की क्रिया को Paristalsis कहते हैं। यदि यही क्रिया विपरीत दिशा में हो जिससे भोजन पेट से लौटकर मुँह में आए जैसा वमन होने पर होता है तो उसे Anti Paristalsis कहते हैं।

1—काकलक (Uvula)
2—फेरिंग्ज की पिछली दीवाल
3 – मसूढ़े
4—साफ्ट पैलेट (मृदु तालु)
5—मध्य इन्साइजर
6—लेटरल ,,
7—कैनाइन
8—प्रीमोलर
9—बाइकस्पिड
10—मोलर
11—मोलर
12—विज्डम टूथ
13—टान्सिल
14—जिह्वा



चित्र सं० ४२—मुख की आन्तरिक रचना

पाचन-संस्थान के मुख्य अंग जो ऊपर बताये जा चुके हैं, मुख से शुरू होते हैं। मुख के अन्दर अग्रलिखित भाग होते हैं—

सबसे पहले ऊपर-नीचे के दोनों जबड़ों में कुल मिलाकर सयानों में ३२ दाँत होते हैं और बच्चों में २८। दांत पीछे तिकोनी जबान होती है, जिसके आगे का हिस्सा नुकीला और पीछे का हिस्सा फैला हुआ तथा चौड़ा होता है। जवान के ऊपरी भाग पर श्लैष्मिक झिल्ली लगी रहती है। इस झिल्ली के नीचे स्वाद कलियाँ (Taste Buds) उपस्थिति रहते हैं। मुख के दोनों तरफ गाल का भीतरी भाग होता है, जिसके अन्दर लार निकलनेवाली ग्रन्थियाँ होती हैं जिन्हें कर्ण पूर्व ग्रन्थि-पैरोटिड ग्लैण्डस (Parotid Glands) कहते हैं।

ऊपर के हिस्से में भी लार निकलनेवाली ग्रन्थियाँ होती हैं, जिन्हें अवअधोहनु ग्रन्थि (Sub-Maxillary Glands) कहते हैं। इसी प्रकार जबान के सामने तथा नीचे के भाग में बीचो-बीच दोनों तरफ लार निकलनेवाली दो ग्रन्थियाँ होती हैं जिन्हें अधो जिह्वा ग्रन्थि (Sub-Lingual Gland) कहते हैं। यदि हम जबान के पिछले भाग को अंगुली से या किसी पतले यन्त्र से धीरे से दबायें तो हम देखेंगे कि जबान के ऊपर बीचो-बीच एक लम्बा हिस्सा लटका रहता है जिसे काकलक (Uvula) कहते हैं। यूवला के दोनों तरफ दो ग्रन्थि हैं जो गोल होती हैं और जिनका निचला भाग Arch के समान नीचे को लटका रहता है। ये दो लसिका ग्रन्थि (Lymph Glands) हैं जिन्हें टान्सिलस (Tonsils) कहते हैं। यह अक्सर देखा गया है कि इन्हीं टान्सिल्स के सूज जाने पर लोगों को खाँसी आया करती है।

जबान के पीछे का वह भाग जो कुछ फैला हुआ है और अन्ननली से मिल जाता है उसे ग्रसनी (Pharynx) कहते हैं। जब भोजन ग्रसनी (Pharynx) में पहुँचता है तो वह नीचे झुकता है और उसे दो नालियों के छिद्र मिलते हैं। एक छिद्र सामने की वायुनली का और एक छिद्र अन्ननली का होता है। जिह्वा से पीछे गिरने पर अन्न वायु-नली के छिद्र में पहले पहुँचता है और उसमें घुसना चाहता है; किन्तु कण्ठच्छद (Epiglottis) नामक एक चपटी मांस-

पेशी का बना हुआ पत्र उस वायुनली को ढंक कर अन्न को अपने ऊपर से सरका कर पिछले छिद्र में जो अन्ननली का मुख है जाने देता है। इसीलिए भोजन करते समय बोलना नहीं चाहिए, नहीं तो कण्ठच्छद वायुनली का मुख ध्वनि के साथ वायु निकलने से ठीक नहीं बन्द कर पायेगी और आशंका होगी कि अन्न या जल का कुछ भाग पहले पड़ने वाली वायुनली के मुख में चला जाये जिससे फेफड़े और डायाफ्राम जोर-जोर से सिकुड़ कर खाँसी पैदा करके वायु-नली साफ करने की चेष्टा करेंगे।

ग्रासनली

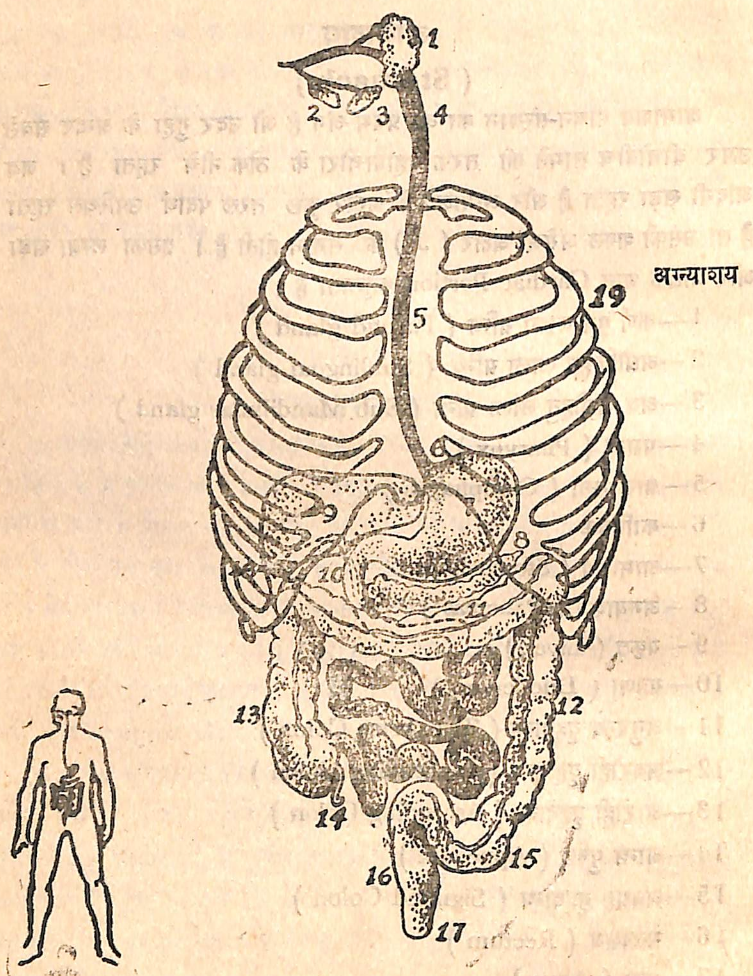
(Oesophagus)

यह मांशपेशियों तथा झिल्लियों की बनी हुई लगभग १० इञ्च लम्बी नली है। जिसका प्रारम्भिक भाग ग्रसनी (Pharynx) में लगा रहता है। यह नली ग्रसनी से आरम्भ होकर गले से होती हुई वक्षस्थल में प्रवेश करती है। यह नली ऊपर से नीचे तक कुछ चिपटी है। इसके पीछे का भाग रीढ़ के गर्दन वाले भाग अर्थात् ग्रैव कशेरुक (Cervical Vertebrae) के पिण्ड के सामने रहता है तथा इसके सामने का भाग स्वरयंत्र (Larynx) और वायु-नली के पीछे रहता है। इसके दोनों तरफ थायराइड ग्रन्थि (Thyroid Glands) और कामन केरोटिड धमनी (Commom Carodtid Artery) स्थित हैं। वक्षस्थल के अन्दर भी यह पीछे वक्षीय कशेरुक (Thoracic Vertebrae) के पिण्ड के सम्पर्क में रहता है और वक्ष के अन्दर महाप्राचीरा पेशी तक पहुँचता है। यहाँ जब यह महा-प्राचीरा छेद (Hiatus) के द्वारा होता हुआ उदरगुहा (Abdomen) के अन्दर प्रवेश करता है तब यह फूल कर आमाशय नामक मांस के थैले में परिवर्तित हो जाता है। वहाँ पर यह फूले हुए थैले के रूप में आमाशय से जुड़ा रहता है और वहीं समाप्त हो जाता है।

आमाशय
(Stomach)

आमाशय पाचन-संस्थान का वह प्रथम अंग है जो उदर गुहा के अन्दर सबसे ऊपर बीचोबीच सामने की तरफ महाप्राचीरा के ठीक नीचे रहता है। जब आदमी खड़ा रहता है और आमाशय के अन्दर कुछ तरल पदार्थ उपस्थित रहता है तो उसकी शक्ल अंग्रेजी अक्षर (J) के समान होती है। इसका लम्बा खड़ा और अधिक भाग Cardiac Portion कहलाता है।

1—कर्ण पूर्व लाला ग्रन्थि (Parotid gland)
2—अधोजिह्वा लाला ग्रन्थि (Sublingual gland)
3—अव अधोहनु लाला ग्रन्थि (Sub Mandibular gland)
4—ग्रसनी (Pharynx)
5—ग्रास नली (Oesophagus)
6—कार्डियक
7—आमाशय (Stomach)
8—अग्न्याशय (Pancreas)
9—यकृत (Liver)
10—ग्रहणा (Duodenum)
11—अनुप्रस्थ वृहदान्त्र (Transverse Colon)
12—अवरोही वृहदान्त्र (Descending Colon)
13—आरोही वृहदान्त्र (Ascending Colon)
14—आन्त्र पुच्छ (Appendix)
15—अवग्रह वृहदान्त्र (Sigmoid Colon)
16—मलाशय (Rectum)
17—गुदा (Anus)
18—पित्ताशय (Call Bladder)
19—पर्शुका (Rib)



चित्र सं० ४३—पाचन संस्थान के अवयव

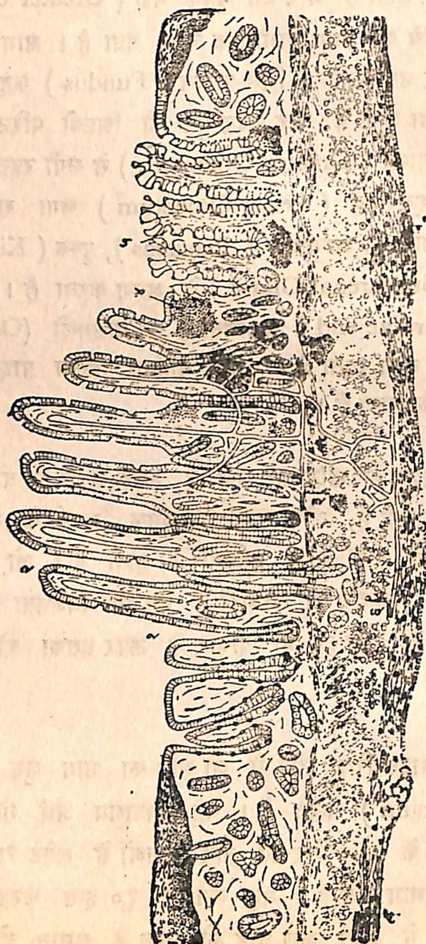
यह पूरे आमाशय का $\frac{2}{3}$ भाग होता है। (J) के नीचे का हिस्सा आमाशय के Pyloric end के द्वारा बनता है।

आमाशय के दो घुमाव होते हैं। एक ऊपर का नतोदर छोटा भाग जिसे लघुवक्र (Lesser Curvature) कहते हैं और दूसरा भाग बाएँ तथा नीचे का भाग होता है जो उन्नतोदर होता है और उसे वृहत् वक्र (Greater Curvature) हैं। वृहत् वक्र के नीचे का भाग नाभी तक चला गया है। आमाशय का सभी भाग ऊँचा, फूला और उठा रहता है जिसे फण्डस (Fundus) कहते हैं। इसका सामने का हिस्सा चौड़ा होता है और उदर गुहा की झिल्ली परिउदर्या (Peritonium) के महावपावह (Greater Omentum) से लगी रहती है। इसके पिछले भाग में लघुवपावह (Lesser Omentum) लगा रहता है। जो आमाशय के पिछले भाग को अग्न्याशय (Pancreas), वृक्क (Kidney) तथा अधिवृक्क ग्रन्थि (Suprarenal Gland) से अलग करता है। इसका बायाँ हिस्सा हृत्छोर (Cardiac end) कहलाता है जो ग्रासनली (Oesophagus) के निचले भाग से लगा रहता है। इसका दाहिना हिस्सा पाइलोरिक छोर (Pyloric end) कहलाता है।

अगर हम आमाशय को खोल कर रखें तो उसके अन्दर की दीवार झालर के समान मुड़ी हुई रहती है, और इसकी श्लैष्मिक झिल्ली के नीचे असंख्य आमाशय की ग्रन्थियाँ (Gastric glands) होती हैं। जो आमाशयिक रस उत्पन्न करती हैं। अन्दर की दीवारों में यह भी विशेषता होती है कि हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के होते हुए भी दीवार के ऊपर इसका कोई असर नहीं पड़ता।

आमाशय के पाइलोरिक छोर से जो आँत का भाग शुरू होता है उसे पक्वाशय (Deodenum) कहते हैं। यह पक्वाशय अर्ध गोलार्ध में मुड़ कर अग्न्याशय ग्रन्थि के गोल सिर को तीन दिशाओं से लपेटे रहता है। इस पक्वाशय के तीन भाग होते हैं। यह लगभग १० इञ्च लम्बा होता है। इसका आकार देखने में बहुत कुछ घोड़े की नाल के समान होता है। यह आमाशय के पाइलोरिक एण्ड से शुरू होता है और इसका पहला भाग ऊपर

दाहिनी तरफ पित्ताशय के गले तक जाता है और वहाँ से दूसरा भाग नीचे की तरफ बढ़ता है। इसका उन्नतोदर भाग दाहिनी तरफ होता है और नतोदर



चित्र सं० ४४—पाचन संस्थान की दीवाल की रचना

१. श्लैष्मिक कला २. रसांकुरिका ३. उपश्लैष्मिक स्तर, ४. पेशीमय स्तर ५. ७ स्नैहिक स्तर

भाग बायीं तरफ होता है। जिसके अन्दर अग्न्याशय का सिर स्थित रहता है।

पक्वाशय के नीचे का तथा अन्तिम भाग दाहिनी तरफ से बायीं तरफ को जाता है। पक्वाशय के अन्दर पित्तवाहिनी (Bile Duct) और (Pancreatic Duct) अग्न्याशय नली एक ही स्थान पर खुलते हैं। पित्तवाहिनी से Bile Juice तथा अग्नाशय नली से Pancreatic Juice एक ही छिद्र द्वारा पक्वाशय में गिरते हैं। पक्वाशय का अन्तिम भाग जेजूनम (Jajunum) से मिल जाता है। पक्वाशय का ऊपरी भाग पैरिटोनियम से ढँका रहता है।

पक्वाशय के बाद छोटी आँत के दो भाग होते हैं। जिन्हें क्रम से (१) Jejunum और (२) Ilium (इलियम) कहते हैं। इन दोनों की लम्बाई लगभग २३ फीट होती है। यह पक्वाशय के अन्तिम भाग से प्रारम्भ होती है और टेढ़े-मेढ़े होते हुए नीचे और दाहिनी तरफ को बड़ी आँतों के प्रारम्भिक भाग अन्धांत्र (Caecum) पर समाप्त होती है। ठीक इसी स्थान पर आन्त्रपुच्छ (Verniform Appendix) नामक एक लम्बी थैली जुटी रहती है जो भिन्न-भिन्न मनुष्यों में स्थान बदल-बदल कर लटकी रहती है। यह थैली पेरीटोनियम से लगी रहती है और इसके अन्दर बहुत-सी धमनियों और तन्त्रिकाओं का जाल बिछा रहता है।

बड़ी आंत
(Large Intestine)

बड़ी आंत उदर के दाहिने तथा निचले भाग से आरम्भ होती है। ठीक इसी स्थान पर छोटी आँतों का अन्तिम भाग Ilium समाप्त होता है। इसकी लम्बाई लगभग ५ से ६ फीट तक होती है। इसके चार भाग होते हैं। पहला आरोही बृहदान्त्र (Ascending Colon)--ये नीचे से आरम्भ होकर दाहिने वृक्क के पार्श्वतम के सम्पर्क में होता हुआ ऊपर को बढ़ता है और यकृत के नीचे घूमकर दाहिनी से बायीं तरफ को जाता है।

यह बड़ी आंतों का दूसरा भाग है। जिसे अनुप्रस्थ आन्त्र (Transverse Colon) कहते हैं। यह हिस्सा पित्ताशय के पास से आरम्भ होता है

और आमाशय के वृहतवक्र से होता हुआ बायीं तरफ की प्लीहा के नीचे के धरातल में पहुँचता है। आरोही वृहदान्त्र (Ascending Colon) और अनुप्रस्थआन्त्र (Transverse Colon) दोनों अनुप्रस्थ आन्त्र की झिल्ली से लगे रहते हैं। अग्न्याशय के नीचे का भाग परिउदर्या तथा ग्रहणी के सम्पर्क में रहता है।

बड़ी आँतों का तीसरा भाग अवरोही आन्त्र (Descending Colon) कहलाता है। यह प्लीहा (Spleen) के नीचे आरम्भ होता है। उदर के बायें किनारे से होता हुआ नीचे (Left Iliac-Fossa) तक पहुँचता है। यह हिस्सा श्रोणी आन्त्र (Pelvic Colon) भी बड़ी आँतों का अन्तिम भाग है जो अवरोही आन्त्र (Descending Colon) से आरम्भ होता है और मलद्वार के नीचे गुदा पर समाप्त होता है। ऊपर का हिस्सा Hypogastric Region में रहता है और घूमा हुआ रहता है। इसके सामने का भाग पुरुषों में मूत्राशय के ऊपरी धरातल पर रहता है और स्त्रियों में गर्भाशय के ऊपर रहता है।

पाचन-क्रिया
(Process of Digestion)

भोजन सबसे पहले मुख में पहुँचता है। वहाँ पर दाँतों द्वारा भोजन छोटे-छोटे टुकड़े में किया जाता है। इसके साथ-ही-साथ मुख से एक प्रकार का रस निकलता है जिसे लार कहते हैं, जो भोजन को अच्छी तरह एक में मिला देता है। यह लार भोजन को चिकना बना देता है कि वह मुख से गले के द्वारा आमाशय में आसानी से फिसल सके। इस लार के अन्दर कुछ रासायनिक पदार्थ भी होते हैं जो भोजन को पचाने के कार्य में आते हैं। इसके अन्दर म्यूसिन होता है। इसको क्रिया साग या छिलकों पर होती है। यह दोनों चीजों को पचा कर आमाशय में भेज देता है। इसके अलावा लार में एक दूसरा एन्जाइम (Enzyme) होता है जिसे Ptylin कहते हैं।

इसकी क्रिया कार्बोहाइड्रेट पर होती है। यह कार्बोहाइड्रेट को एक प्रकार के चीनी में बदल देता है जिसे डेक्स्ट्रोस (Dextrose) कहते हैं। यह डेक्स्ट्रोज फिर एक प्रकार की चीनी में बदल जाता है जिसे माल्टोस (Maltose) कहते हैं। अक्सर ऐसा देखा गया है कि मैदा या आटा मुख में रखकर देर तक चबाया जाय तो थोड़ी देर में वह मीठा होने लगेगा। इस मिठास का कारण यही है कि स्टोर्च चीनी में बदल जाता है।

आमाशय में पाचन-क्रिया—जिस समय भोजन आमाशय में पहुँचने को होता है उसी समय आमाशय की ग्रन्थियों से आमाशयिक रस (Castric Juice) निकलता है। गैस्ट्रिक जूस में एक प्रकार का तेजाब होता है जिसे (Hydrochloric Acid-Hcl) कहते हैं जो भोजन द्वारा आमाशय में पहुँचे हुए जीवाणुओं (Bacteria) का नाश करता है और इसकी उपस्थिति में कुछ तत्व क्रियाशील हो जाते हैं। यह स्वयं भी पाचन-क्रिया (Digestion) में भाग लेता है।

आमाशय-रस की क्रिया—गैस्ट्रिक जूस भोजन को गला कर लेई के रूप में बदल देता है जिसे चाइम (Chyme) कहते हैं। इस जूस से आमाशय के अन्दर का भोजन रासायनिक दृष्टि से सुपाच्य हो जाता है। आमाशय में एक प्रकार का एन्जाइम (Anzyme) होता है जिसे पेप्सीन (Pepsin) कहते हैं। इसकी मुख्य क्रिया प्रोटीन (Protein) पर होती है। यह प्रोटीन को एक प्रकार के रासायनिक योग में बदल देता है जिसे पेप्टोन (Peptone) कहते हैं। आमाशय के अन्दर भोजन गलकर बिलकुल लेई के समान हो जाता है। अब यह आमाशय के पाइलोरिक एण्ड (Pyloric end) में प्रवेश करता है। यहाँ से भोजन पक्वाशय (Duodenum) में प्रवेश करता है। इस स्थान पर भोजन का यह रूप हो जाता है—

Maltose + Peptone + Fat

पक्वाशय के अन्दर पाचन-क्रिया समझने के पहले यकृत तथा पित्त के रसों के कार्य का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।



यकृत

(Liver)

यह शरोर की सबसे बड़ी ग्रन्थि (Gland) है। यह कत्थई रंग का त्रिभुजाकार ग्लैंड है जो आमाशय के दाहिने तरफ ठीक महाप्राचीरा (Diaphragm) के नीचे स्थित होता है। इसके तीन धरातल होते हैं। ऊपरी धरातल, जो डायाफ्राम के ठीक नीचे होता है। दाहिने तरफ का बाहरी धरातल वक्षस्थल की दीवार (Chest Wall) के सम्पर्क में होता है और तीसरा धरातल नीचे की तरफ होता है और इसी निचले धरातल में पित्ताशय (Gall Bladder) स्थित है। दाहिने वृक्क (गुर्दा) का ऊपरी हिस्सा यकृत के नीचे स्थित है। यकृत से एक नली निकलती है जिसे पित्तनली (Bile Duct) कहते हैं। यह पक्वाशय में खुलती है। यकृत के अन्दर हिपैटिक सेलस (Hepatic Cells) होते हैं जो पित्त पैदा करते हैं और यह पित्त पित्तवाहिनी के द्वारा पक्वाशय में प्रवेश करता है। इसके अतिरिक्त यकृत में कुछ विशेष प्रकार के सेलस होते हैं जिसे कफर कोषा (Kupffer Cells) कहते हैं। यह चीनी के जारण में और इसके परिवहन में सहायता पहुँचाता है।

पाचन-संस्थान के कार्य

(Physiology of Digestion)

यकृत के कार्य :—(१) यकृत से एक स्राव पैदा होता है जिसे पित्त (Bile) कहते हैं। यह पित्त लीवर की निचली सतह से लटकी पित्ताशय (Gall Bladder) नामक थैली में जमा रहता है और भोजन पक्वाशय में आते ही पित्तवाहिनी द्वारा बहकर पक्वाशय में जाकर अन्न से मिल जाता है और तब इसके रासायनिक तत्व अन्न पर पाचन-क्रिया प्रारम्भ करते हैं। यह क्षारीय (Alkaline) स्राव है।

(२) यह रक्त के द्रव भाग (Plasma) का, फाइब्रिनोजेन Fibrinogen और प्रोथ्राम्बीन (Prothrombin) नामक रक्त को जमानेवाले प्रोटीन तत्वों का विश्लेषण करता है।

(३) यह रक्त के लाल कणों को बनाता व नष्ट भी करता है।

(४) विषों को निष्क्रिय करता है।

(५) भोजन के तीन प्रमुख भाग जैसे चर्बी, कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन इनमें से प्रत्येक Metabolism का प्रधान केन्द्र है।

(६) अपने अन्दर पोर्टल शिरा द्वारा आये रक्त में उपस्थित चीनी (Glucose) को अघुलनशील बना देता है। ताकि ग्लाइकोजन (Glycogen) न घुलने पर रक्त से पृथक हो लीवर में जमा रह जाय। जब रक्त में चीनी (Glucose) की आवश्यकता पड़ती है तो यह अपने अन्दर जमा अघुलनशील चीनी (Glycogen) को पुनः घुलनशील बना देता है ताकि वह पुनः रक्त में घुलकर शरीर में पहुँच जाय।

(७) विटामिन ए० डी० के० को एकत्रित करता है।

(८) धमनियों में रक्त को जमने से बचाने वाले पदार्थ हिपेरिन (Heperin) को बनाता है।

(९) सत का संचय स्थान है।

———

पित्त

(Bile)

यह गाढ़े हरे रंग का बदबूदार और स्वाद में तोता द्रव होता है, जिसका आपेक्षिक घनत्व बहुत ज्यादा होता है। इसका हरा रंग दो वस्तुओं के कारण होता है। जिसको बिलीरूबिन (Bilerubin) और बिलीवर्डीन (Bileverdin) कहते हैं। इसके अन्दर अग्रलिखित दो प्रकार के नमक होते हैं :—

(१) Torucolate of Soda

(२) Glycolate of Soda

इसके अन्दर इतनी बदबू होती है कि बहुत से विषैले कीटाणु मर जाते हैं। इसका मुख्य कार्य चर्बी को पचाना है। यह काम केवल पित्त का ही है।

———

पक्वाशय के अन्दर पाचन-क्रिया
(Digestion in Duodenum)

जिस समय भोजन आमाशय के बाद डियोडिनम में प्रवेश करता है उस समय भोजन को दो प्रकार के रस मिलते हैं। यानी यकृत से पित्त और पैंक्रियास से अग्न्याशय रस। यह भोजन को पचाकर घुलनशील वस्तु में परिणत कर देता है और अन्त में इसका शोषण तन्तु के द्वारा होता है।

अग्न्याशय रस में निम्नलिखित एन्जाइम होते हैं :—

(१) Trypsin

(२) Lypase

(३) Amylase

ट्रीपसिन की क्रिया प्रोटीन पर होती है और जैसा ऊपर लिखा जा चुका है कि आमाशय रस (Gastric Juice) प्रोटीन को Polypeptide में बदल देता है और फिर Amino Acids का निर्माण होता है।

एमाइलेज (Amylase) की क्रिया कार्बोहाइड्रेट पर होती है और यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि एमाइलेज की क्रिया आटा पर होती है। इसके द्वारा कार्बोहाइड्रेट माल्टोज में बदल जाता है। जब यह डियोडिनम में पहुँचता है तो इस पर एमाइलेज की क्रिया होती है। यहाँ पर Maltose Glucose में बदल कर प्रतिहारी शिरा के द्वारा यकृत में जाता है। लीवर के अन्दर की यकृत कोषाएँ (Hepatic Cells) इसे ग्लूकोज (Glucose) में बदल देती हैं। यह ग्लाइकोजेन (Glycogen) यकृत शिरा (Hepatic Vein) के द्वारा रक्त में प्रवेश करता है। इसका कुछ भाग

रक्त खुद शोषित कर लेता है और बाकी हर एक सेल्स ले लेते हैं। इससे शरीर को शक्ति मिलती है।

जैसा कि ऊपर लिखा है बाइल (Bile) की क्रिया चर्बी पर होती है और जिस समय चर्बी पक्वाशय में पहुँचती है वहाँ एक तत्व के सम्पर्क में आती है जिसे लाइपेज (Lypase) कहते हैं। यह भोजन को चर्बी से अलग कर देता और फिर इसके बाद पित्त (Bile) का कार्य शुरू होता है। पित्त चर्बी के दो रूपों में बदलता है।

(१) साबुन (Soap) और (२) Emulsion.

इमलशन एक लसदार पदार्थ होता है। पित्त के अन्दर जो सोडा होता है वह और चर्बी दोनों मिल कर साबुन बन जाते हैं। इसके शरीर के अन्दर तीन मुख्य गोदाम हैं। (१) गाल, (२) उदर, (३) चूतड़। जब मनुष्य बीमार पड़ता है या उपवास करता है उस समय वह संचय की हुई चर्बी गर्मी पहुँचाती है और चर्बी के गल जाने से मनुष्य दुबला पड़ जाता है।

चर्बी का दूसरा रूप इमल्शन (Emulsion) होता है और लसवाहिनी (Lymphatic Duct) के द्वारा शरीर के चारों ओर भ्रमण करता है। इसके द्वारा शरीर के तन्तु गर्मी पैदा करते हैं।

खाना पचने का काम अधिकतर आमाशय (Stomach) और पक्वाशय (डियोडिनम) में होता है। यहाँ से भोजन घुलनशील रस के रूप में सारे ऊतकों में जाता है और इन ऊतकों को शक्ति मिलती है। यह दो घण्टे में छोटी आँत से होता हुआ बड़ी आँत के प्रारम्भिक भाग में पहुँचता है। एक बात यहाँ पर समझा देना जरूरी है कि भोजन में कोई गति नहीं होती कि वह पूर्ण आँत को पार कर सके। यह गति आँतों की मांसपेशियों के द्वारा होती है। आतों की लम्बी मांसपेशियाँ क्रम से सिकुड़ती हैं तथा फैलती हैं जिसके द्वारा भोजन आगे की ओर बढ़ता है। इस क्रिया को पेरीस्टालटिक गतियाँ (Peristaltic movement) कहते हैं जो पहले समझाया जा चुका है।

इसी प्रकार आँतें सिकुड़ और फैलकर पेरीस्टालटिक गति से अपने अन्दर के भोजन को आगे बढ़ाती हैं।

पेरीस्टालटिक गति के अधिक होने से पेट में दर्द का अनुभव होता है। जिसका कारण ऐंठन (Spasm) है।

जब भोजन ४½ घण्टे के सफर के बाद बड़ी आँत में पहुँचता है तो बड़ी आँत भोजन के जल को सोख लेती है। २५% जल का भाग केवल अन्धान्त्र ही शोषित कर लेता है। व्यर्थ भाग गुदा से बाहर निकल जाता है।

जब बड़ी आँत में मल भाग अधिक देर तक रह जाता है तो बड़ी आँत पानी ज्यादे सोख लेती है और जब बड़ी आँत से मल शीघ्रता से आगे बढ़ता है तो आँत को जल सोखने का समय कम मिलता है। जिससे पतला दस्त होने लगता है तथा बड़ी आँत में मल देर तक रहने पर कब्जियत हो जाती है। अब मल मलाशय (Rectum) से होता हुआ गुदा के द्वारा बाहर निकल जाता है। मल ज्यों का त्यों बाहर निकल जाता है।

भोजन का शोषण
(Absorption of food)

ऊपर बताया जा चुका है कि पाचन-नली (Alimentary Canal) के दो मार्ग बाहर खुलते हैं। एक मुख से तथा दूसरा गुदा से। यदि हम मुख से भोजन करें, वह आँतों से गुजरता हुआ गुदा से निकल जाय तो स्पष्ट रूप से भोजन हमारे शरीर के मध्य से होता हुआ पुनः बाहर निकल गया और हमने भोजन खाया ही नहीं। अतः यह आवश्यक है कि जब भोजन हमारे शरीर के मध्य से गुजर रहा हो तो उससे हम पौष्टिक तत्व चुन कर अपने शरीर में रोक लें ताकि शरीर के टीशू इससे लाभ उठा सकें। यह कार्य होने पर ही हम कह सकेंगे कि हमने खाया है अन्यथा नहीं। जब भोजन हमारी आँतों में पहुँचता है तो मार्ग में इस भोजन से आवश्यक पौष्टिक तत्व जिन्हें हमें अपने शरीर में रोकना है उनको भोजन के व्यर्थ भाग से पृथक करने के

लिए ही आमाशय, लीवर, पैन्क्रियास आदि के रस उस पर अपना कार्य करते हैं और उन पौष्टिक आवश्यक भोजन के तत्वों को ऐसी शकल में परिवर्तित करते हैं जिस शकल में वह हमारे शरीर में उपस्थित रहते हैं और बिना ऐसी शकल में हुए हमारे टीशू उन तत्वों को भोजन से चूसकर ग्रहण भी नहीं कर सकते हैं। इन पौष्टिक तत्वों को जो आँतों से गुदा की ओर आगे बढ़ते चले जा रहे हैं आँतों से चूस कर अन्दर रक्त में खींचने का कार्य करने के लिए आँतों की दीवार पर भीतरी झिल्ली में कई रोयें की तरह की रचनाएँ जिन्हें वीली (Villi) कहते हैं, लटकती रहती हैं। जो भोजन के अन्दर डूबने पर आवश्यक पौष्टिक तत्वों को चूस लेती हैं और उन्हें चूस कर रक्त और लसिका में मिला लेती हैं।

भोजन करने का मुख्य अभिप्राय यह है कि वह शरीर के अन्दर पचे, पचने के बाद शोषित हो और अन्त में शरीर के प्रत्येक तन्तु में जाकर मिल जावे। इतना ही नहीं बल्कि तन्तु का एक भाग बन जावे। भोजन जैसे-जैसे पाचन-नली में आगे बढ़ता चलता है इसकी मात्रा धीरे-धीरे कम होती जाती है और अन्त में न पचा हुआ भोजन गुदा (Anus) के द्वारा बाहर निकल जाता है।

विटामिन, जल तथा नमक अपने असली रूप में शोषित होते हैं।

"[डाक्टर बरीज के अनुसार हम लोग लवण अपनी छोटी आँतों के द्वारा शोषित करते हैं और जल बड़ी आँतों के द्वारा]" भोजन का आरगैनिक भाग जैसे स्टार्च और प्रोटीन अन्त में ग्लूकोज तथा एमिनो एसिड में बदल जाता है।

भोजन का शोषण दो रास्तों के द्वारा होता है। पहला रक्त नलियों के द्वारा और दूसरा लसिका नलियों के द्वारा। प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा ४०% चर्बी रक्त-नलियों के द्वारा शोषित होते हैं। शेष चर्बी लसिका नलियों के द्वारा।

प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा की शोषण क्रिया :—प्रोटीन मांस-पेशियों के द्वारा शोषित होता है। यह मांसपेशियाँ अपनी आवश्यकता के अनुसार

प्रोटीन ले लेती हैं और शेष छोड़ देती हैं। बचा हुआ प्रोटीन रीनल धमनी के द्वारा वृक्क में आता है जहाँ यह पेशाब में परिणत हो जाता है और मूत्र-नली के द्वारा बाहर निकल जाता है।

जिस समय चर्बी के ऊपर पित्त की क्रिया होती है उस समय चर्बी दो रूपों में बदल जाती है। एक साबुन के रूप में और दूसरा इमलशन के रूप में। यह साबुन चर्म के निचले भाग में, गालों में, उदर की बाहरी दीवाल में तथा चूतड़ में एकत्रित होता है। उपवास तथा बीमारी के समय काम में आता है। यही कारण है कि बीमारी के समय चर्बी के गलने के कारण शरीर दुबले हो जाते हैं। इमलशन लसिका नलियों के द्वारा सारे शरीर में फैलता है और शरीर के अन्दर गर्मी पहुँचाता है।

कार्बोहाइड्रेट का अधिक भाग ग्लूकोज के रूप में रक्त के द्वारा शोषित हो जाता है और वहाँ से सारे शरीर में फैलता है तथा शरीर को शक्ति प्रदान करता है।

शेष जो भोजन बाकी बच जाता है वह छोटी आँतों से बड़ी आँतों में आता है। वहाँ बड़ी आँतें जल को ग्रहण करती हैं और मल सूखा हुआ बँधे रूप में बाहर निकल आता है। जब बड़ी आँतों में जल के शोषण की शक्ति बहुत ज्यादा बढ़ जाती है तो पाखाना बिलकुल सूख जाता है और कब्ज की शिकायत हो जाती है। जब जल की शोषण शक्ति घट जाती है तो लोगों को पतला दस्त होने लगता है।

———

पाँचवाँ अध्याय

चयापचय

मेटाबोलिज्म (Metabolism)

मेटाबोलिज्म का अभिप्राय शरीर के आय तथा व्यय का लेखा-जोखा (Balance Sheet) या चिट्ठा है। जिस प्रकार साल के अन्त में हर एक बैंक तथा दफ्तरों का (Balance Sheet) तैयार किया जाता है और उससे उस बैंक तथा संस्था की आर्थिक स्थिति का पूरा ज्ञान हो जाता है और उसी के अनुसार आगामी वर्ष के लिए आय-व्यय पत्रक (Budget) तैयार किया जाता है। उसी बजट के अनुसार साल भर तक कार्य होता है। ठीक इसी प्रकार शरीर के अन्दर भी आय तथा व्यय का चिट्ठा बनाना बहुत ही आवश्यक है क्योंकि उसी के आधार पर शरीर का आगामी निर्माण हो सकता है। यदि हम शरीर की स्थिति को पूरे तौर से न समझें तो हम लोगों को बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। केवल इतना ही नहीं बल्कि इसके न जानने से शरीर के अन्दर बहुत-से ऐसे रोग पैदा हो सकते हैं जिनका निवारण इन बातों पर आधारित रहता है। इस विषय पर लोगों का ध्यान बहुत कम जाता है और जिसकी वजह से बहुत-सी बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। जिस प्रकार एक बैलेन्स शीट में एक तरफ खर्च (Debit Side) होता है और दूसरी तरफ जमा (Credit side) होता है और अन्त में सन्तुलन (Balance) बचता है वह या तो Debit Balance या Credit Balance होता है। यदि (Credit Balance) हुआ तो इसका तात्पर्य यह है कि व्यय की अपेक्षा आय अधिक है और उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी है। इसके विपरीत अगर (Debit Balance) हुआ तो इसका अभिप्राय यह है कि आमदनी से अधिक खर्च था और उस संस्था को आर्थिक हानि पहुँची।

मानव-शरीर या किसी पशु-पक्षी का शरीर भी एक ऐसी संस्था है जिसके अन्दर आय और व्यय सदैव ही हुआ करते हैं। चयापचय के अन्तर्गत आय और व्यय दोनों सम्मिलित हैं। आय से मतलब आमदनी है जिसे चय (Anabolism) कहते हैं। शरीर की मुख्य आय निम्नलिखित हैं :—

(१) शुद्ध वायु, (२) शुद्ध जल, (३) भिन्न प्रकार के भोजन। इसी प्रकार शरीर के भिन्न प्रकार के व्यय भी हैं जैसे—अशुद्ध वायु का बाहर निकालना, (२) भाप का बाहर निकालना, (३) पसीने का बाहर निकालना, (४) मूत्र का बाहर निकालना, (५) मल का बाहर निकालना, (६) शरीर के प्रत्येक अंग के कार्य, (७) शरीर के परिश्रम।

इसके अनुसार एक स्वस्थ मनुष्य वह कहलाता है जिसकी आय और व्यय में अधिक अन्तर न हो। अगर इसमें अन्तर हो जाता है तो इसका तात्पर्य यह है कि उस व्यक्ति में स्वास्थ्य सम्बन्धी कुछ दोष हैं। इसके अन्दर दो भेद हैं। एक तो यह कि वह व्यक्ति गरीबी के कारण उचित रूप से भोजन न प्राप्त कर सकता हो, जिसका परिणाम यह होता है कि वह दिन पर दिन दुबला पतला और रोगी होता जाता है। और अक्सर यह देखा गया है कि शरीर के बहुत से रोग गरीबी के कारण पैदा होते हैं, जैसे—रक्तहीनता, सिर का दर्द, क्षय रोग। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो प्रोटीन या वसा या कार्बोहाइड्रेट के अधिक सेवन से अथवा इन वस्तुओं के कम मात्रा में शोषित होने के कारण रोगी हो जाते हैं जैसे कि वसा चयापचय के बढ़ जाने के कारण लोग बलगमी हो जाते हैं या फूल जाते हैं। इसी प्रकार प्रोटीन चयापचय की अधिकता के कारण वात रोग तथा गठिया का रोग पैदा होता है और कार्बोहाइड्रेट चयापचय की अधिकता के कारण (Diabetes) की बीमारी हो जाती है। इसलिये आधुनिक चिकित्सक इन रोगों में मरीज का आधारी चयापचय दर (Basal Metabolic rate) या B. M. R. का पता चलाते हैं। इसका पता लगाने के लिए एक बहुत सुन्दर उपाय है। भारतवर्ष में कलकत्ता और बम्बई में इसकी एक विशेष प्रयोगशाला है। एक छोटे कमरे के अन्दर

रोगी को २४ घण्टे रखा जाता है। उसका भोजन और जल पहले से तौला हुआ रहता है। एक वायुयन्त्र के द्वारा वह श्वास लेता है तथा श्वास निकालता है। इस यन्त्र के अन्दर दाब-मापक (Manometer) लगा रहता है जिससे श्वास ली हुई वायु और श्वास निकाली हुई वायु की मात्रा ठीक से मालूम की जा सकती है। रोगी जो मल तथा मूत्र त्याग करता है वह भी एक पात्र में एकत्रित किया जाता है और उसे भी तौल लिया जाता है। काम करने के लिए वहाँ पर एक बाइसिकिल स्टैण्ड पर खड़ी रहती है। वह व्यक्ति बाइसिकिल पर बैठकर पैर से पैडिल चलाता रहता है। उस बाइसिकिल में एक ऐसा यन्त्र लगा रहता है जिससे पता चल जाय कि बाइसिकिल चलाने वाले ने कितनी मेहनत की है। इसके बाद जो परीक्षक उस स्थान पर रहता है वह B. M. R. Chart तैयार कर लेता है।

बचपन में B. M. R. बढ़ता रहता है, जवानी में सन्तुलित रहता है और बुढ़ापे में घटता जाता है। ठण्ढे मुल्क के निवासियों का B. M. R. गर्म मुल्क के निवासियों के B. M. R. की अपेक्षा अधिक हो जाता है। पुराने ज्वर मे भी B. M. R. घट जाता है। प्रत्येक चिकित्सा संस्थान में इसका अध्ययन किया जाता है।

छठवाँ अध्याय

शरीर की गर्मी तथा तापमान

(Heat and Temperature)

जिस प्रकार एक जीवित प्राणी के लिए हृदय की गति तथा फेफड़े की गति आवश्यक है उसी प्रकार शरीर का तापमान भी अति आवश्यक है। जब तक आदमी जीवित रहता है उसका शरीर गर्म रहता है और मरने के बाद शरीर बिलकुल ठण्डा पड़ जाता है। तापमान के अनुसार जीव-जन्तु दो श्रेणियों में विभाजित किये गये हैं। पहली श्रेणी में तो वे जीव-जन्तु आते हैं जिनका तापमान अधिक होता है। इन्हें उष्ण रक्त वाले (Homothermic and hot blooded animals) कहते हैं। जैसे पक्षी इत्यादि तथा दूसरी श्रेणी में वे जीवजन्तु सम्मिलित हैं जिनका तापमान प्रायः कम हुआ करता है। इन्हें शीत रक्त वाले (Poikilothermic and cold blooded animals) कहते हैं।

जिस प्रकार एञ्जिन के अन्दर कोयले के जलने से जो गर्मी उत्पन्न होती है वह पानी को भाप में बदल देती है और उस भाप की शक्ति से इन्जन स्वयं भी आगे को बढ़ता है और पूरे डिब्बे को खींचकर एक तीव्र गति से आगे की ओर ले जाता है ठीक उसी प्रकार शरीर के अन्दर जो हम लोग कार्बोहाइड्रेट भोजन के द्वारा ग्रहण करते हैं, वह शरीर के तापमान को बनाये रखता है। इसके अलावे आमाशय के अन्दर भी गर्मी रहती है जो भोजन के पचने में सहायक होती है। यह गर्मी आमाशयिक रस (Gastric Juice) के द्वारा पैदा होती है। यकृत भी शरीर का एक गर्म अंग है। इसके अलावे मस्तिष्क के अन्दर तापमान संचालित करने का केन्द्र रहता है जिसे रेखीय पिण्ड (Corpus Striatum) कहते हैं। इन्हीं चार विषयों के ऊपर तापमान की उत्पत्ति निर्भर है।

शरीर के तापमान को समान रूप में बनाये रखने में त्वचा का बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य होता है। शरीर के अन्दर जब अधिक तापमान हो जाता है तो त्वचा के छेद खुल जाते हैं जिससे गर्मी बाहर निकल जाती है। जाड़े के दिनों में जब वायुमंडल का तापक्रम कम हो जाता है उस समय त्वचा के छेद बन्द हो जाते हैं ताकि शरीर की गर्मी बाहर न निकल पाये और बाहर की ठंडी हवा शरीर के अन्दर प्रवेश न कर सके। इसलिए सर्दी से बचने के लिए जाड़े के दिन लोग रूईदार या ऊनी कपड़े पहनते और रात को रूईदार रजाई भी ओढ़ते हैं। रूईदार और ऊनी कपड़ों के अन्दर हवा रहती है और हवा गर्मी और सर्दी का कुचालक है। इसी से ऊनी कपड़े वगैरह पहनने के बाद सर्दी नहीं लगती। जाड़े के दिनों में एक दूसरी बात यह भी देखी गई है कि सोते समय या बैठते समय हाथ-पैर को लोग सिकोड़े और बटोरे रहते हैं। इस अन्दर एक वैज्ञानिक रहस्य है। वह यह है कि शरीर के धरातल का क्षेत्र अधिक से अधिक कम हो जाय, ताकि शरीर की गर्मी बाहर न निकल पाये। जाड़े के दिनों में अधिकतर कोशिश यही रहती है कि शरीर के अन्दर गर्मी का संचार अधिक हो और गर्मी की क्षति कम हो। इसीलिए जाड़े के दिनों में गर्मी की अपेक्षा शरीर का तापक्रम ज्यादा होता है।

गर्मी के दिनों में इसका बिलकुल विपरीत प्रभाव होता है। गर्मी के कारण शरीर के छिद्र खुल जाते हैं और पसीना ज्यादा होता है जिससे शरीर की गर्मी अधिकतर बाहर निकल जाती है और गर्मी के दिनों में ऐसा देखा गया है कि लोग पतले और सफेद कपड़े पहनते हैं जो शरीर की गर्मी निकलने में सहायक होते हैं। इसके अलावे गर्मी में लोग अधिकतर सूती और सफेद कपड़े पहनते हैं। सफेद रंग के वस्त्र गर्मी को इतना अधिक शोषित नहीं करते, जितना कि काले कपड़े करते हैं। इसीलिए जाड़े के दिनों में काले कपड़े का लोग खास-तौर से इस्तेमाल करते हैं। कपड़े जितने ढीले रहते हैं उतना ही गर्मी के निकलने में सहायक होते हैं। गर्मी के दिनों में यह भी देखा गया है कि लोग नंगे बदन और हाथ-पाँव फैलाकर सोते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि शरीर का Surface area बढ़ जाय और शरीर की गर्मी निकल जाय। इसका सबसे सुन्दर प्रमाण कुत्तों का है। गर्मी के दिनों में कुत्ते ठंडी जमीन के ऊपर हाथ-पैर फैलाकर

पड़े रहते हैं और अपनी जबान निकाले रहते हैं तथा जल्दी-जल्दी हाँफा करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि शरीर की गर्मी त्वचा, जबान आदि के द्वारा निकलती जाती है। गर्मी के दिनों में पंखे के प्रयोग से निम्नलिखित लाभ होते हैं :—

पहला तो यह है कि इसके द्वारा शरीर को अधिक आक्सीजन प्राप्त होता है। दूसरी बात यह होती है कि पंखों के चलने से शरीर का पसीना भाप में बदल जाता है और जिससे २५६ केलारी गर्मी जो Latent heat of Evapo-uration कहलाता है, वह निकल जाती है जिससे पंखे के प्रयोग से लोगों को ठंडक मालूम होती है और आराम होता ह। गर्मी के दिनों में लोगों की खूराक भी कम हो जाती है जिससे शरीर के अन्दर गर्मी पैदा न हो सके। गर्मी के दिनों में ऊष्मा की उत्पत्ति (Heat Production) कम होती है और ताप क्षय (Heat Loss) अधिक होता है।

भोजन का भी प्रभाव पड़ता है। भोजन कर लेने के बाद शरीर का तापक्रम बढ़ जाता है। किसी अपराध के करने के बाद या डर जाने के बाद तापक्रम घट जाता है, लेकिन किसी उत्तेजना या गुस्से के समय तापक्रम बढ़ जाता है। जा लोग दिन को अधिक परिश्रम करते हैं और रात को आराम करते हैं उनका तापक्रम सुबह कम रहता है लेकिन सायंकाल में बढ़ जाता है। इसके अलावा जो लोग रात को काम करते हैं उनका तापक्रम सायंकाल कम रहता है और सुबह अधिक होता है। जैसे-जैसे आदमी बूढ़ा होता चलता है उसके शरीर का तापमान घटता जाता है।

ज्वर के समय शरीर के अन्दर गर्मी का संचार अधिक होने लगता है और शरीर की गर्मी बाहर नहीं निकलने पाती जिससे तापमान बढ़ जाता है जैसा कि मलेरिया ज्वर (Malaria Fever) में देखा गया है। मलेरिया ज्वर में जाड़ा बहुत मालूम पड़ता है और रोवाँ फूटता है। इसका कारण यह है कि त्वचा के छेद बिल्कुल बन्द हो जाते हैं और शरीर की गर्मी बाहर नहीं निकल पाती जिससे बुखार हो जाता है। बाद को जब त्वचा के छेद खुल जाते हैं और पसीना होने लगता है तो शरीर की गर्मी निकल जाती है और बुखार कम हो जाता है।

———

सातवाँ अध्याय

रक्त-संचरण तन्त्र

(Circulatory System)

इस तन्त्र के अन्तर्गत वह अङ्ग सम्मिलित हैं जो रक्त परिभ्रमण क्रिया में भाग लेते हैं। जैसे—हृदय (Heart), धमनी (Arteries), शिरा (Vein) तथा कैपीलरीज (Cappillaries)। इस युग में इसके प्रथम शोधकर्त्ता सर विलियम हार्वे थे। इन्होंने रक्त-संचरण-संस्थान की उपमा एक ऐसे रबड़ बाल से दी है जिसके दोनों तरफ नलियाँ लगी थीं। उन्होंने रबड़ की गेंद को हृदय माना और एक तरफ की नली को धमनी और दूसरी तरफ की नली को शिरा माना। रक्त हृदय से धमनी में जाता है, धमनी से फिर शिरा में और फिर वहाँ से वापस चला जाता है। संक्षेप में यही क्रिया सभी जीव-जन्तुओं में होती है। हृदय की बनावट में जानवरों में बहुत भेद होते हैं। जैसे-जैसे जानवरों में विकास होता गया वैसे-वैसे हृदय में भी विकास होता गया है।

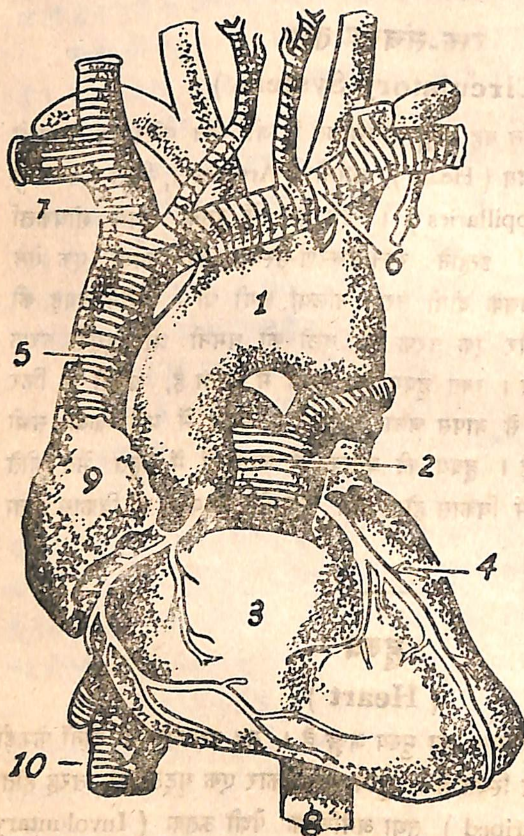
———

हृदय

(Heart)

यह रक्त-संचरण-संस्थान का मुख्य अङ्ग है। यह वक्षस्थल में दोनों फेफड़ों के बीच कुछ बायीं ओर स्थित है। हृदय का आकार एक मुट्ठी की तरह होता है। यह धारीदार (Striped) तथा अनैच्छिक पेशी ऊतक (Involuntary Muscles) का बना होता है। हृदय जिस स्थान पर स्थित है उसे मध्य गुहा (Mediastinum) कहते हैं। हृदय एक झिल्ली के आवरण से लिपटा हुआ रहता है। जिसे पेरीकार्डियम या परिहृद (Paricardium) कहते हैं। इसके

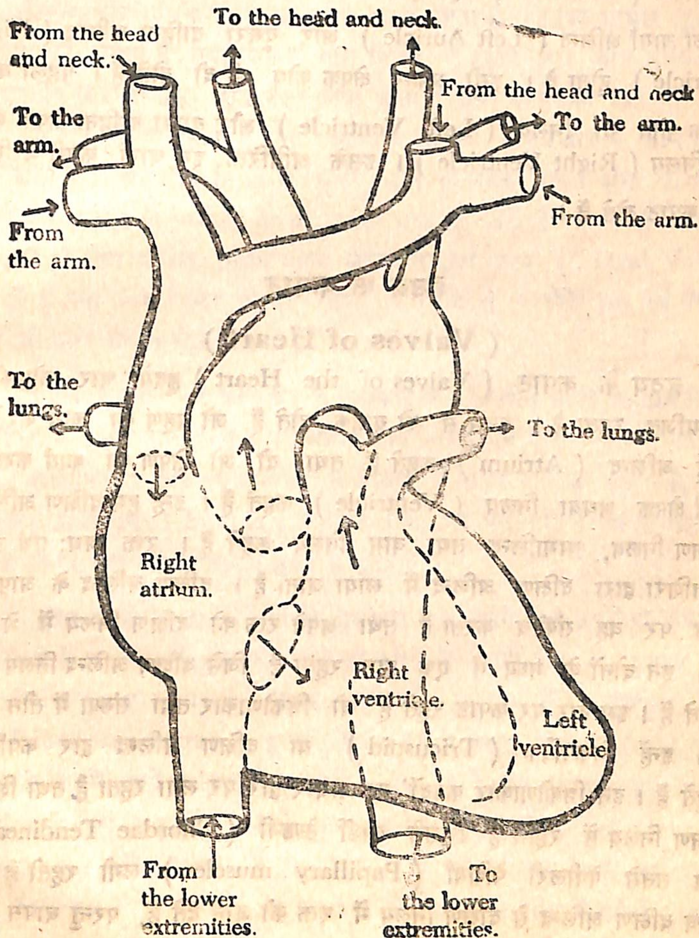
अन्दर की दीवारें तथा कपाट एक प्रकार के बने होते हैं। जिसे अन्तर्हृद (Endocardium) कहते हैं।



चित्र सं० ४५—हृदय की बाह्य रचना

मनुष्य का हृदय दो दीवारों द्वारा चार भाग में विभाजित है। एक दीवार इसे दाहिने और बायें भागों में बाँटती है, दूसरी दीवार इसे ऊपरी

और निचले भागों में बाँटती है। इन्हीं भागों को कोष या चेम्बर्स (Chambers) कहते हैं। ऊपर के दोनों कोषों को ग्राह कोष या आलन्द या आरिकिल



चित्र सं० ४६ – हृदय की आन्तरिक एवं बाह्य रचना

(Auricle) कहते हैं और नीचे के दोनों कोषों को क्षेपक कोष या निलय या वेन्ट्रीकिल (Ventricle) कहते हैं। ऊपर के आरिकिल के दो भाग होते हैं। पहला बायाँ अलिन्द (Left Auricle) और दूसरा दाहिना अलिन्द (Right Auricle) होता है। इसी प्रकार क्षेपक कोष भी दो होते हैं। पहला बायाँ क्षेपक कोष या निलय (Left Ventricle) और दूसरा दाहिना क्षेपक कोष या निलय (Right Ventricle)। इसके अतिरिक्त इन चारों कोषों में छिद्रों पर कपाट होते हैं।

हृदय के कपाट
(Valves of Heart)

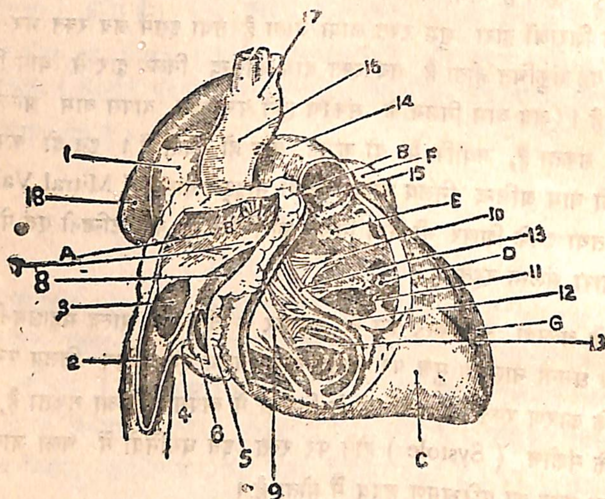
हृदय के कपाट (Valves of the Heart) हृदय चार कोष्ठकों में विभाजित रहता है। इनमें से दो ग्राहक होते हैं जो ग्रहण का कार्य करते हैं इन्हें अलिन्द (Atrium) कहते हैं तथा दो जो क्षेपण का कार्य करते हैं उन्हें क्षेपक अथवा निलय (Ventricle) कहते हैं। इन्हें हम दक्षिण अलिन्द, दक्षिण निलय, वामालिन्द तथा वाम निलय कहते हैं। रक्त अधः एवं ऊर्ध्व महाशिरा द्वारा दक्षिण अलिन्द में लाया जाता है। दक्षिण अलिन्द के आपूरित होने पर वह संकोच करता है तथा अपने रक्त को दक्षिण निलय में भेजता है। इन दोनों के मध्य में एक द्वार रहता है जिसे दक्षिण अलिन्द निलय द्वार कहते हैं। इस द्वार पर कपाट रहते हैं जो त्रिकोणाकार तथा संख्या में तीन होते हैं। इन्हें त्रिकपर्दिक (Tricuspid) या दक्षिण अलिन्द द्वार कपर्दिका कहते हैं। इन त्रिकोणाकार कपर्दों का आधार द्वार पर लगा रहता है तथा शिखर दक्षिण निलय में रहता है जिससे कार्डी टेण्डनी (Chordae Tendineae) तथा उनसे पेपीलरी पेशियाँ (Papillary muscles) लगी रहती है। ये वाल्व दक्षिण अलिन्द से दक्षिण निलय में रक्त को जाने देते हैं, परन्तु वापस नहीं आने देते हैं। जब दक्षिण निलय रक्त से भर जाता है, उसमें रक्तदाब बढ़ता है तथा वह संकुचित (Systole) स्थिति में आता है तो ये कपाट बन्द हो जाते हैं

और दक्षिण अलिन्द नियम से रक्त को वापस दक्षिण अलिन्द में नहीं आने देता है। इसी प्रकार वाम अलिन्द निलय द्वार (Left atrio Ventricular Opening) पर त्रिकोणाकार दो कर्पादिका का बना वाल्व रहता है जिसका आधार द्वार के वलय पर रहता है तथा शिखर वाम निलय में रहता है। वाम अलिन्द में फुफ्फुसीय शिराओं द्वारा शुद्ध रक्त लाया जाता है तथा इसमें जब रक्त भर जाता है और यह संकुचित होता है तब रक्त वाम अलिन्द निलय द्वार से वाम निलय में जाता है। अब वाम निलय के संकोच होने पर रक्त वापस वाम अलिन्द में नहीं जा सकता है, क्योंकि ये दो कपाट बन्द हो जाते हैं। इन दो कर्पादिका कपाटों को वाम अलिन्द निलय वाल्व अथवा माइट्रल वाल्व (Mitral Valve) कहते हैं तथा इनके शिखर भी वाम निलय की भित्ति से कार्डीटेन्डिनी एवं पेपेलरी पेशियों द्वारा संलग्न रहते हैं।

इसके अलावा चन्द्राकार कप के आकार के तीन-तीन वाल्व महाधमनी एवं फुफ्फुसीय धमनी नाल के मुख पर अर्थात् वाम निलय एवं दक्षिण निलय पर रहते हैं। इसके कारण रक्त इन धमनियों से निलयों में वापस नहीं आ सकता है, परन्तु निलयों के संकोच (Systole) होने पर रक्त इन धमनियों में चला जाता है। इस प्रकार रक्त का परिभ्रमण हृदय में होता है।

हृदय के अन्दर छः नलियों का समावेश है। इनमें तीन धमनियाँ तथा तीन शिरायें हैं। धमनियाँ हृदय से रक्त को बाहर ले जाती हैं। यह फुफ्फुस धमनी (Pulmonary Artery) तथा महाधमनी Aorta हैं। फुफ्फुसी धमनी (Pulmonary Artery) हृदय (Heart) से अशुद्ध खून साफ करने के लिए फेफड़े में ले जाती है तथा महाधमनी (Aorta) शुद्ध रक्त को सारे शरीर में बाँटने के लिए ले जाती है। इसी प्रकार ऊर्ध्व महाशिरा (Superior Venacava) सिर, गले और शरीर के ऊपरी भाग से गन्दा रक्त तथा अधः महाशिरा (Inferior Venacava) शरीर के निचले भागों से जिसमें आँतों द्वारा चूसा गया आहार सभी यकृत (Liver) से होता हुआ सम्मिलित होता है, हृदय के अन्दर दाहिने अलिन्द में ले जाती है और फुफ्फुसी शिरा (Pulmonary Veins)

फेफड़े से शुद्ध रक्त हृदय के बायें अलिन्द में ले जाती है। स्वयं हृदय को शुद्ध रक्त Coronary Artery के द्वारा मिलता है। जब तक यह हृद्धमनी (Coronary Artery) काम करती है, मनुष्य जीवित रहता है।



चित्र संख्या ४७

A. दक्षिणालिन्द गुहा (Cavity of right Atrium)

B. अलिन्द शीर्षक या कर्णाकार भाग (Auricula)

B. कंकतिका मांसपेशी (Musculi Pectinati)

C. दक्षिण निलय (Right Ventricle)

D. दक्षिण निलय की गुहा (Cavity of right Ventricle)

E. फुफ्फुसाभिगा धमनी उद्गम समीपस्थ स्थान (Conus Arteriosus)

F. वामालिन्दा शीर्षक का शीर्ष (Apex of left Auricule)

G. वाम निलय (Left Ventricle)

1. ऊर्ध्व महाशिरा (Superior Venacava)

2. अधः महाशिरा (Inferior Venacava)

3. अण्डाकार खात (Fossa Ovalis)

4. अधः महाशिरा के कपाट (Valve of the Inferior Venacava)

5. हृद् शिरानाल का छिद्र (Opening of Coronary Sinus)

6. हृद् शिरानाल के कपाट (Coronary Valve)

7. क्षुद्र हार्दिकी शिराओं के छिद्र (Orifices of Venae cordic Minimae)

8. अलिन्द निलयान्तरीय छिद्र का प्रारम्भ (Commencement of Auriculo-Ventricular Opening) ।

9. त्रिकपर्दी कपाट (Tricuspid Valve)

10. मध्य कपाट (Medial Valve)

11. निलयस्थ मांससूत्र (Trabocular Carneae)

12. एक मांसांकुरिका (One of the Musculi Papillares)

13. सूत्रकण्डरिका (Chordae Tendinae)

14. फुफ्फुसाभिगा धमनी (Pulmonary Artery)

15. अर्द्धेन्दु कपाट (Semilunar Valves)

16. आरोही महाधमनी (Ascending Ao'ta)

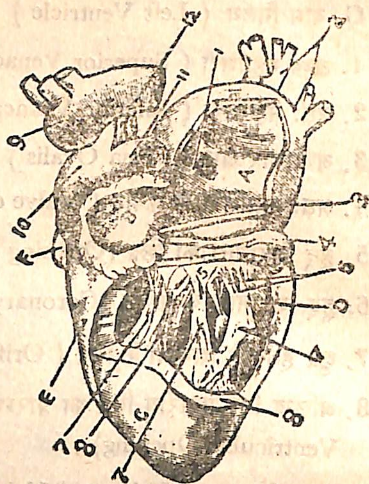
17. महाधमनी का तोरण भाग (Arch of Aorta)

18. महाधमनी का अवरोही भाग (Descending Aotra)

A. वामालिन्द की गुहा, (Cavity of the left Atrium)

B. अलिन्द-शीर्षक की गुहा, इसमें कंकतिका पेशीसूत्र प्रदर्शित हैं। (Cavity of auricula in which are seen the Musculae Pectinati)

C. वाम निलय (Left Ventricle)



D. वामनिलय की गुहा (Cavity of the left Ventricle)

E. दक्षिण निलय (Right Ventricle)

F. दक्षिणालिन्द शीर्षक का शीर्ष (Apex of right Auricula)

1. दक्षिण दोनों फुफ्फुस शिराओं के खुलने के छिद्र (Opening of the two right Pulmonary Veins)
2. वाम फुफ्फुस शिरायें (Left Pulmonary Veins)

चित्र सं० ४८

3. अलिन्द निलयान्तरीय छिद्र (Auriculo-Ventricular Opening)
4. हृद् शिरानाल (Coronary Sinus)
5. कपर्दी कपाट (Mitral Valve)
6. सूत्रकण्डरिका (Chordae Tendineae)
7. मांसांकुरिका (Musculi Papillaris)
8. निलयस्थ मांससूत्र (Trabeculae Carneae)
9. महाधमनी तोरणी भाग (Aortic Arch)
10. फुफ्फुस धमनी (Pulmonary Artery)
11. वाम फुफ्फुस धमनी (Left Pulmonary Artery)
12. धमनी सेतु (Ligamentum Arteriosum)

———

धमनियाँ
(Arteries)

यह रक्त की वह नलियाँ हैं जो मांसपेशियों की बनी हैं। यह हृदय से आरम्भ होती हैं और केशिकाओं में समाप्त होती हैं। यह धमनियाँ लम्बी मांसपेशियों की हैं। इनका संचालन अनैच्छिक मांसपेशी के द्वारा होता है जो आवश्यकतानुसार फैलती तथा सिकुड़ती हैं। इनके संकुचन से रक्त परिभ्रमण में आसानी होती है। फुफ्फुसी धमनी तथा वृक्क धमनी को छोड़कर बाकी सब शुद्ध रक्त का वहन करती हैं।

शिरायें
(Veins)

यह पतली नलियाँ होती हैं। इनकी दीवारें झिल्ली की बनी हैं तथा दीवालों में जगह-जगह प्यालियों जैसे चन्द्राकार कपाट बने रहते हैं। इनकी सहायता से रक्त उछल कर नीचे से ऊपर की ओर जाता है। यह रक्त-नलियाँ जब ऊतकों में पहुँचती हैं तब बहुत महीन हो जाती हैं तथा इनकी दीवारें पतली पड़ जाती हैं। फुफ्फुसी शिरा तथा वृक्क शिरा को छोड़कर बाकी सब में अशुद्ध रक्त बहता है।

रक्त
(Blood)

जिस प्रकार किसी बड़े नगर में प्रमुख तरकारी बाजार से तरकारी लेकर लोग उसे सिर पर लादे हुए गली-गली, घर-घर पहुँचाते (बेचते) हैं; उसी तरह रक्त हृदय से आवश्यक तत्व अपने साथ लेकर टिशू, टीशूसेल या सेल तक पहुँचाता है। यही नहीं वरन् रक्त आवश्यक तत्व टीशू और सेल तक पहुँचा कर उनसे अनावश्यक वस्तुएँ शरीर के बाहर निकालने का वादा करते हुए ले लेता है. जैसे मेहतर हर गली और घर का फूड़ा अपनी गाड़ी पर लेकर नगर के बाहर फेंक आते हैं। रक्त से हर टीशू और सेल का कूड़ा जैसे—

कार्बन-डाईआक्साइड फेफड़े द्वारा; जल और अन्य पदार्थ गुर्दों (Kidney) से मूत्र रूप में, पसीने और आंसू आदि की शक्ल में शरीर के बाहर कर देता है। रक्त को आवश्यक पौष्टिक वस्तुएं देने के लिए हृदय को लीवर, फेफड़ों का मुंह ताकते रहना पड़ता है।

रक्त शरीर के अन्दर एक लाल द्रव है जिससे हम सभी परिचित हैं। यह रक्त नलियों के अन्दर सदैव ही भ्रमण किया करता है। इसका सम्पर्क हृदय, गुर्दे, पाचन-नली तथा फेफड़े से है जिनके द्वारा यह क्रम से पौष्टिक पदार्थ तथा आक्सीजन ग्रहण करता है और शरीर के तत्वों को देता है।

रक्त लाल रंग की तरल वस्तु होती है जिसके दो मुख्य भाग होते हैं।

(१) हल्के पीले रंग का द्रव जिसे प्लाज्मा (Plasma) कहते हैं।

(२) रक्त कणिका (Blood Corpuscles) :—इनमें अधिक संख्या लाल कणिकाओं की होती है। इन्हीं लाल कणिकाओं में हीमोग्लोबिन (Heamoglobin) नामक तत्व होता है जिसके कारण रक्त का रंग लाल होता है।

(१) प्लाज्मा (Plasma) :—यह हल्के पीले रंग की क्षार तरल वस्तु होती है और इसका आपेक्षिक घनत्व १०४१ से १०६७ तक होता है। १०० सी० सी० प्लाज्मा में निम्नलिखित वस्तुएं उपस्थित रहती हैं।

(क) जल		९१
(ख) प्रोटीन	— —	६·५ ग्राम
(ग) फाइब्रीनोजिन	— —	०·३
(घ) एल्फा ग्लोब्युलिन (α-Globulin)	— —	०·४६
(च) बीटा ग्लोब्युलिन (β-Globulin)	— —	०·८६
(छ) गामा ग्लोब्युलिन (γ-Globulin)	— —	०·७५
(ज) एलब्युमिन (Albumin)	— —	४·००
(झ) रस	— —	१·४
(ट) लवण	— —	०·६

प्लाज्मा के प्रोटीन तीन प्रकार के होते हैं। (१) एलब्युमिन्स (Albumins), (२) ग्लोब्युलिन्स (Globulins) तथा (३) फाइब्रीनोजिन (Fibrinogen)।

प्लाज्मा के कार्य :—इसके निम्नलिखित कार्य होते हैं :—

(१) इसके द्वारा रक्त की कणिका नाश होने से बचती हैं और इधर-उधर बहाकर ले जायी जा सकती हैं।

(२) प्लाज्मा का फाइब्रीनोजिन रक्तस्राव के समय रक्त को जमा देता है जिससे रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

(३) यह रक्त को हानिकारक प्रतिक्रियाओं से बचाता है।

(४) विशेषतः एल्फा ग्लोब्युलिन जो सहायक वस्तुओं को उत्पन्न करके रक्त को बाहरी जीवाणुओं से बचाते हैं। संक्रामक रोग उत्पन्न होने पर इनकी संख्या बढ़ जाती है।

(५) प्रदाह और रक्तस्राव के समय यह प्लाज्मा एक स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं। जहाँ पर ये सुरक्षित रहते हैं वहाँ इनकी संख्या हमेशा बढ़ा करती है।

२. रुधिर कोशाएँ :—यह तीन प्रकार की होती हैं :—

(क) लाल रुधिर कोशाएँ (Red Blood Corpuscles)

(ख) श्वेत रुधिर कोशाएँ (White Blood Corpuscles)

(ग) रुधिर प्लेटलेट्स (Blood Platelets)

(क) लाल रुधिर कोशाएँ—मनुष्य के लाल रक्त-कण गोले तथा बीच में मोटे, चारों तरफ किनारे पतले सेल होते हैं। इसका व्यास $\frac{१}{३०००}$ इन्च होता है और इसकी मोटाई $\frac{१}{८}$ इंच होती है। प्रत्येक रक्त-कण के बाहरी भाग में ंगहीन आवरण होता है जिसके अन्दर एक तरल पदार्थ होता है। जिसे हीमोग्लोबीन (Haemoglobin–Haem = लोहा, Globin = एक प्रोटीन कहते हैं। ये कोशाएँ लचीली होती हैं और अपने रूप को आवश्यकता के अनुसार बदला करती हैं।

साधारणतः इसकी संख्या मनुष्यों में ५,०००,००० तथा औरतों में ४,५००,००० प्रति घन मिलिमीटर होती हैं। इसमें प्रायः परिवर्तन हुआ करता है जो बहुत कुछ मानसिक दशा पर निर्भर करता है। जो लोग प्रसन्नचित्त तथा सम्पन्न होते हैं उनके अन्दर लाल कणों की संख्या साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अधिक होती है। इसके विपरीत जो लोग अस्वस्थ, दुःखी होते हैं उनके अन्दर कणों की संख्या बहुत ज्यादा घट जाती है।

रक्त में हीमोग्लोबिन प्रत्येक १०० सी० सी० में १५ ग्राम की मात्रा में रहता है और १ ग्राम हीमोग्लोबिन १·३४ सी० सी० आक्सीजन को पूरी तरह तृप्त होने पर ग्रहण करता है। इस प्रकार १०० सी० सी० रक्त के लिए २० सी० सी० आक्सीजन लेना आवश्यक होगा। जिस रक्त के अन्दर हीमोग्लोबिन १४% होती है और जो १८·५ सी० सी० आक्सीजन अपने साथ ले जा सकता है, वह रक्त हीमोग्लोबिन से परिपूर्ण समझा जाता है और वह हीमोग्लोबिन शत-प्रतिशत कहा जाता है।

(ख) श्वेत रुधिर कोशाएँ :—यह कोशाएँ प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) की बनी होती हैं और यह ज्यादातर गोल होती हैं। लेकिन कार्य पड़ने पर इसके आकार में सदैव परिवर्तन हुआ करता है। प्रातःकाल सोकर उठने के पहले इसकी संख्या ६००० प्रति घन मि० मी० होती है। इनकी संख्या काम करते समय, भोजन के बाद तथा एड्रीनैलीन (Adrenaline) के इन्जेक्शन के बाद और गर्भावस्था में बढ़ जाती है। संक्रामक रोग के आक्रमण के समय इसकी संख्या अधिक से अधिक बढ़ जाती है। न्यूमोनियाँ होने पर इनकी संख्या ६००० से अधिक हो जाती है। इन्फ्लुएन्जा में इनकी संख्या कम हो जाती है। इनकी संख्या के बढ़ने की दशा को श्वेतकोशिका बहुलता (Leucocytosis) और इनके घटने की दशा को श्वेतकोशिका अल्पता (Leucopenia) कहते हैं। इसमें एक विशेषता यह भी होती है कि संक्रामक रोगों के आक्रमण के समय ये केशिकाओं की दीवार से पार निकल कर विषैले कीटाणुओं से लड़ने के लिए बाहर भी चले जाते हैं। जब कि लाल रक्त-कण नलियों तथा केशिकाओं में ही रहते हैं।

ये कोशिकाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं।

(१) लिम्फोसाइट (Lymphocytes)—यह लाल रक्त-कण से थोड़े ही बड़े होते हैं। यह २२ से ४०% तक श्वेत रुधिर कोशाओं में होते हैं। इनका न्युक्लियस बहुत बड़ा होता है। क्षय रोग में इनकी संख्या बहुत ज्यादा बढ़ जाती है जिस दशा को लसिका कोशिका बहुलता (Lymphocytosis) कहते हैं—

(२) मोनोसाइट (Monocytes)—इनका न्युक्लियस बहुत छोटा होता है। लेकिन इनका व्यास अधिक होता है। लगभग १२ से २७ म्यू तक यह ५ से १०% तक श्वेत कण में उपस्थित रहते हैं। मलेरिया में इनकी संख्या बढ़ जाती है। जिस दशा को Monocytosis कहते हैं।

(३) परिवर्तनशील श्वेत-कण (Transitional Leucocytes)—यह करीब २% होते हैं। इनकी उपस्थिति का कुछ ठिकाना नहीं रहता।

(४) पोलीमार्फ (Polymorph) :—इनका व्यास ९ से १२ म्यू होता है और श्वेत-कणों का प्रधान अङ्ग है। इनकी उपस्थिति ५५ से ७०% होती है। इनमें न्यूक्लियाई बहुत से होते हैं और इनके भिन्न-भिन्न आकार भी होते हैं। इनकी संख्या संक्रामक रोगों में बढ़ जाती है।

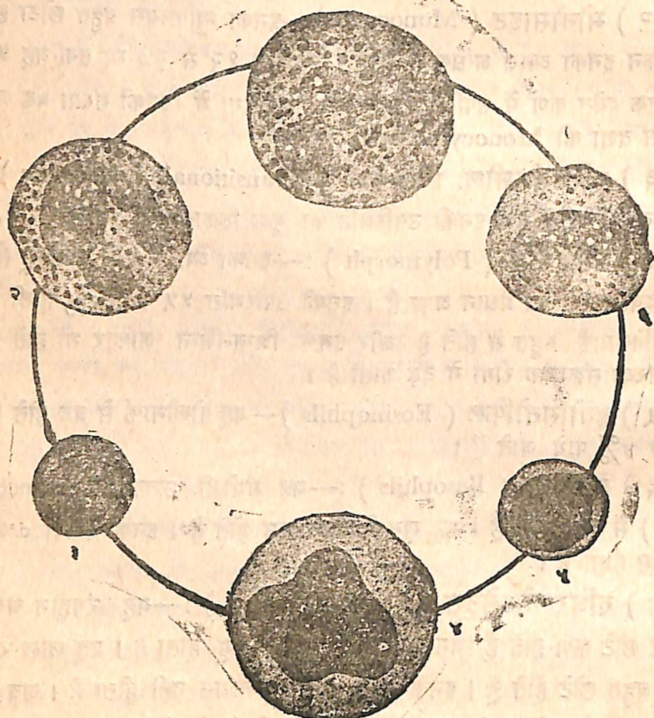
(५) इयोसिनोफिल (Eosinophils)—यह पोलीमार्फ से बड़े होते हैं। यह २ से ४% पाये जाते हैं।

(६) बेसोफिल (Basophils) :—यह संयोजी ऊतक (Connective Tissue) में पाये जाते हैं। यह खून में बहुत कम होते हैं। इनकी संख्या ०·५% से भी कम होती है।

(ग) रुधिर प्लेटलेट्स (Blood Patelets)) :—यह रंगहीन चक्की के समान छोटे कण होते हैं जिनका आकार २ से ३ म्यू होता है। यह लाल रक्त-कणों से बहुत छोटे होते हैं। इनके अन्दर कोई न्युक्लियस नहीं होता है। जब यह एक मनुष्य के रक्त से दूसरे मनुष्य के रक्त में जाते हैं तो थोड़े दिन तक जीवित रहते हैं फिर फट जाते हैं। इनकी औसत संख्या प्रति घन सेन्टीमीटर ३,०००,०० है। इनका मुख्य कार्य रक्त को जमाना होता है।

रक्त का स्कन्दन अथवा आंतचन
(Coagulation of Blood)

रक्त में विशेष दो गुण होते हैं। प्रथम रक्त रक्तनलियों में सदैव द्रव के रूप में रहता है, लेकिन बाहर निकलने पर जम जाता है। जीवन के लिए



चित्र संख्या ४९

१—अम्लरंगेच्छु, २—बहुकेन्द्री, ३—परिवर्त्तनी, ४—वृहत एककेन्द्री
५—लघु एककेन्द्री, ६—भस्मरंगेच्छु

दो बातों का होना आवश्यक है। रक्त, द्रव के रूप में रहकर ही नलियों के अन्दर भ्रमण कर सकता है। लेकिन जम जाने पर भ्रमण की क्रिया समाप्त हो जाती है।

रक्त रक्त की नलियों में, चाहे धमनी अथवा शिरा में बहता है। इसके बाहर यह नहीं निकल सकता। चोट-चपेट लगने पर स्वयं या किसी अन्य रोग की अवस्था में जब रक्त-नलियों की दीवार फट जाती है तो उनमें से रक्त बाहर की तरफ बहना आरम्भ करता है। यदि इसकी रोक-थाम का प्रबन्ध न हो तो रक्त का अन्तिम बिन्दु जब तक बाहर नहीं निकल जायगा तब तक रक्त नली से बाहर निकलता रहेगा। अतः इसी उद्देश्य से रक्त में एक गुण होता है जिसे रक्त का जमना अथवा स्कन्दन (Coagulation of Blood) कहा जाता है। लीवर में एक प्रोथ्राम्बिन नामक तत्व बनता है जिसका निर्माण आँतों से विटामिन 'के' के शोषण पर निर्भर करता है। रक्त जमने की क्रिया इसी प्रोथ्राम्बिन नामक तत्व से ही प्रारम्भ होती है।

जिस स्थान पर रक्त नली की दीवार भंग होती है, यहाँ के टीशू द्वारा और उस स्थान पर पहुँचे हुए प्लाज्मा एवं प्लाविकाकोषों (प्लेटलेटों) से एक तत्व जिसे थ्रोम्ब्रोप्लास्टिन (Thromboplastin) कहते हैं, पैदा होता है एवं साथ-ही-साथ वहाँ रक्त में फाइब्रीनोजेन (Fibrinogen) नामक तत्व उपस्थित हो जाता है। थ्रोम्बोप्लास्टिन नामक तत्व को प्रोथ्राम्बिन पर क्रिया करके उसे थ्राम्बिन (Thrombin) नामक तत्व में बदल देना चाहिए, लेकिन कैल्शियम नामक वस्तु की अनुपस्थिति में वह यह कार्य नहीं कर पाता। जैसे ही कैल्शियम की उपस्थिति का ज्ञान थ्राम्बोप्लास्टिन तत्व को हो जाता है वह प्रोथ्राम्बिन को थ्राम्बिन में बदल डालता है। ऊपर बतलाय गया है कि रक्त बहने के स्थान के आस-पास फाइब्रीनोजेन नामक तत्व भी रक्त में उत्पन्न हो जाता है। ज्योंही थ्राम्बिन, फाइब्रीनीजेन नामक तत्व से मिलता है त्योंही उसे फाइब्रिन (Fibrin) तत्व के रूप में बदल देता है। यही फाइब्रिन नामक तत्व (जाली की तरह पतले जाल जिसमें प्लैटीलेट और रक्त-कण फँसकर थक्का

ऐसा बना देते हैं) से ही खून जमता है और चोट खाई हुई नली में खून बहाने वाले स्थान को बन्द कर देता है ।

रक्त निम्नलिखित विधियों से जल्दी जमाया जा सकता है ।

(१) रक्त की गति रोककर स्थिर रखना ।

(२) शरीर के तापक्रम से ५% अधिक उष्ण जल का प्रयोग ।

(३) रक्त का सम्पर्क यदि ऊतकों के रस से हो तो रक्त जम जाता है ।

(४) रक्त का जल्दी-जल्दी हिलाना ।

(५) थ्राम्बिन (Thrombin) भी रक्त जमाने में सहायक होता है । यदि प्रवाहित रक्त में थ्राम्बिन मिला दिया जावे तो इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

(६) एड्रीनेलिन (Adrenaline) रक्त के जमने में अप्रत्यक्ष तौर से बहुत सहायता देता है । जिस स्थान पर रक्त-स्राव हो रहा है यदि उस स्थान पर एड्रीनेलीन पहुँचाया जाय तो उस स्थान की केशिकाओं को सिकोड़ कर रक्तस्राव फौरन बन्द कर देता है ।

(७) रक्त का सम्बन्ध खुरदरे तल से होने पर ।

(८) रक्त स्कन्दनकारी द्रव्यों का प्रयोग करने पर ।

रुधिर वाहिनियाँ

(Blood Vessels)

मनुष्य के शरीर में तीन प्रकार की रुधिर वाहिनियाँ (Blood Vessels) होती हैं :—

(१) धमनियाँ (Arteries)

(२) शिरायें (Veins)

(३) केशिकायें (Capillaries), धमनी केशिकायें, शिरा केशिकायें ।

(१) धमनियाँ—उन सभी वाहिनियों को जो रुधिर को हृदय से दूर ले जाती हैं, धमनियाँ कहते हैं। वेण्ट्रिकल की मोटी दीवारों के सिकुड़ने से धमनियों में बहने वाले रुधिर पर अधिक दबाव होता है जिससे उनकी दीवारें मोटी, मजबूत तथा लचीली होती हैं। दबाव के कारण इनका खून तेजी से और झटके के साथ बहता है। पलमोनरी धमनियों के अलावा अन्य सभी में शुद्ध खून बहता है। मोटी दीवारों के कारण खून न होने पर भी ये पिचकती नहीं।

(२) शिराएँ—वे सभी वाहिनियाँ जो शरीर के विभिन्न अंगों से खून इकट्ठा करके हृदय की ओर ले जाती हैं शिरायें या वेन्स कहलाती हैं। चूंकि इनमें बहने वाले खून पर दबाव नहीं होता इसलिए इनमें खून बहुत धीरे-धीरे बहता है। दबाव न होने के कारण इनकी दीवारें धमनियों की अपेक्षा पतली होती हैं।

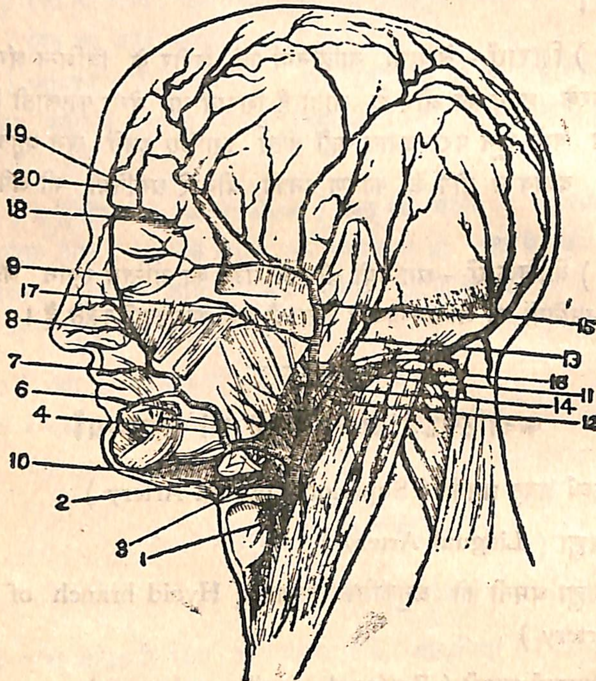
(३) केशिकाएँ—धमनियों और शिराओं का अन्तिम स्थान जहाँ पर इन दोनों की धमनियों का आदान-प्रदान होता है उसे केशिकाएँ कहते हैं।

———

करोटिचक्र और चेहरे की धमनियाँ

1. ऊर्ध्व अवटु धमनी (Superior Thyroid Artery)
2. जिह्वा (Lingual Artery)
3. जिह्वा धमनी को अनुकंठिका शाखा (Hyoid branch of Lingual Artery)
4. बहिऊर्ध्व धमनी (External Maxillary Artery)
5. अधरोष्ठिका धमनी (Inferior Lobial Artery)
6. ऊर्ध्व ओष्ठ धमनी और नासापटल की धमनी (Superior Lobial Artery and Artery to Septum)

7. नासा पार्श्विका धमनी (Lateral Nasal Artery)
8. नासामूलिका धमनी (Angular Artery)
9. अधः चिबुक धमनी (Submental Artery)
10. पश्च कपाल धमनी (Occipital Artery)
11. पश्च कपाल धमनी की उरः कर्णमूलिका शाखा (Sternocleidomastoid branch of occipital Artery)



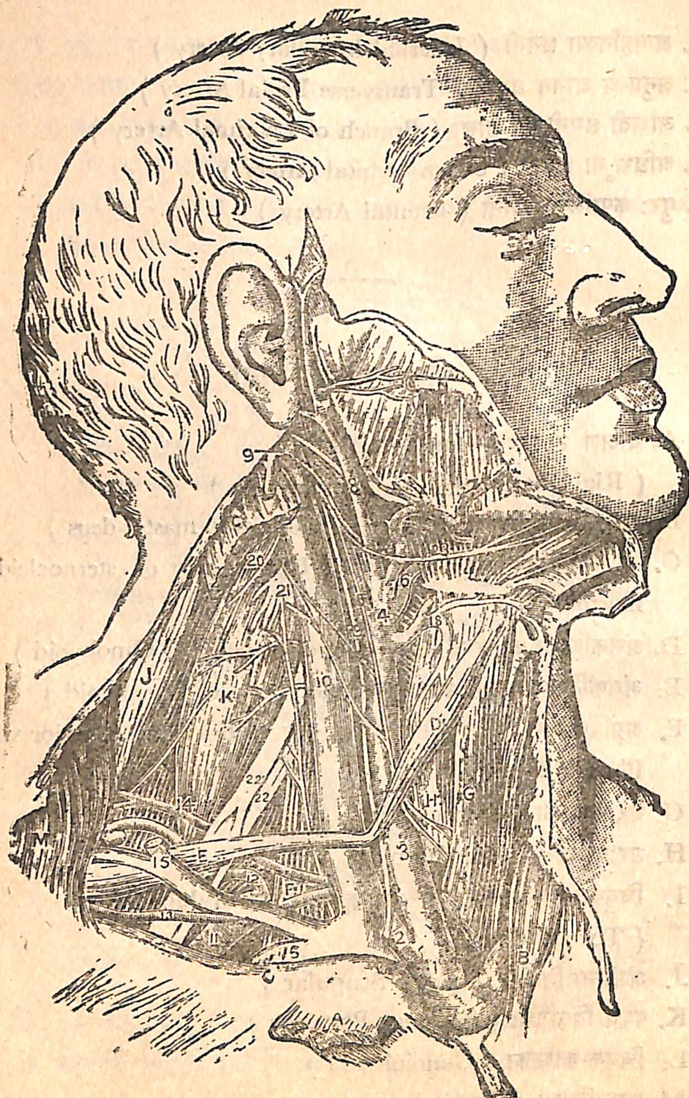
चित्र सं० ५०

12. पश्च कर्ण धमनी (Posterior Auricular Artery)
13. आरोही ग्रसनी धमनी (Ascending Pharyngeal Artery)
14. ऊर्ध्व शंखा धमनी (Superior Temporal Artery)

15. अन्तर्हानव्या धमनी (Internal Maxillary Artery)
16. अनुप्रस्थ आनन धमनी (Transverse Facial Artery)
17. आश्रवी धमनी की शाखा (Branch of Lacrimal Artery)
18. अधिभ्रुवा धमनी (Supra Orbital Artery)
19. पुरः कपालिका धमनी (Frontal Artery)

ग्रीवा की धमनियां

A. दक्षिण उरःकर्णमूल पेशी (कटी हुई)
(Right Sternocleido-mastoideus cut)
B. वाम उरःकर्णमूल पेशी (Left Sterno-cleido-mastoi-deus)
C. उरःकर्णमूलका का ऊपरी भाग (Upper part of sternocleido-mastoideus)
D. अंसकण्ठिका का ऊर्ध्व उदर (Superior belly of Omohyoid)
E. अंसकंठिका का अधःउदर (Inferior belly of Omohyoid)
F. अग्रविषयिका प्रश्वसनी तन्त्रिका के साथ (Scalenus Anterior with Phrenic Nerve)
G. उरःकण्ठिका (Sternohyoid)
H. उरःवटुका (Sternothyroid)
I. चिबुकतल कण्ठिका (नीचे को हटी हुई) (Mylohyoid)
(Turned down)
J. अंसोन्नमनिका (Levator Scapular)
K. पश्च विषयिका (Scalenus Posterior)
L. चिबुक-कण्ठिका (Genoiohyoid)
M. समलम्बिका (Trapezius)



चित्र सं० ५१

N. कर्णमूलप्रणाली (Parotid duct)

O. जत्रुकास्थि (Clavicle)

1. अनामी धमनी (Innominate Artery)

2. दक्षिण अधोजत्रुक धमनी (Right Subclavian Artery)

3. दक्षिणी महामातृका धमनी (Right Common Carotid Artery)

4. बहिर्मातृका धमनी (External Carotid Artery)

5. अन्तर्मातृका धमनी (Internal Carotid Artery)

6. जिह्वा धमनी (Lingual Artery)

7. बहिःऊर्ध्वहनु धमनी (External Maxillary Artery)

8. बहिर्मातृका ऊपरी ओर जाकर (Continuation of External Carotid Artery)

9. पश्चकपाल धमनी (Occipital Artery)

10. अन्तःगल धमनी (Internal Jugular Vein)

11. अधोजत्रुक धमनी (तृतीय भाग) (Subclavian Artery Third part)

12. अनुप्रस्थ ग्रीवा धमनी की अवरोही शाखा (Descending branch of Transverse Cervical Artery)

13. अनुप्रस्थ अंसफलक धमनी (Transverse Scapular Artery)

14. अंसफलक धमनी (Transverse Cervical Artery)

15. अनुप्रस्थ अंसफलक शिरा (Transverse Scapular Vein)

16. अधोजत्रुक शिरा (Subclavian Vein)

17. उत्तर अवटुक वेगस तन्त्रिका धमनी (Superior Thyroid Artery)

18. सहायक तन्त्रिका (Vagus Nerve)

19. सहायक तन्त्रिका (Accessory Nerve)

20. ग्रीवानुगा तन्त्रिका जाल (कटी हुई) (Cervical plexus, Cut)
21. कक्षानुगा तन्त्रिका जाल (Brachial Plexus)
22. अधोजिह्वा तन्त्रिका जिह्वाकंठिका पेशी पर (Hypoglossal Nerve on Hyoglossus Muscle)

रक्त परिसंचरण
(Circulation of Blood)

रक्त हमेशा रक्त-नलियों में रहता है और शरीर के बाहर तब तक नहीं निकलता जब तक कि कोई रक्त-नली कट न जावे। रक्त के अन्दर भी पौष्टिक पदार्थ होते हैं। उन्हें तन्तु शोषण क्रिया से ही ग्रहण करते हैं। तन्तुओं के अन्दर रक्त नहीं रहता क्योंकि रक्त से भरी नलियाँ होती हैं।

रक्त का संचालन दो घेरे में होता है। एक छोटा सा हृदय, पलमोनरी धमनी, फेफड़ा और पलमोनरी सिरा से मिल कर बना है। दूसरा बड़ा घेरा महाधमनी (Aorta) तथा शरीर भर के केशिकाओं और ऊतकों से मिल कर बना है।

छोटे घेरे से रक्त परिसंचरण
(Circulation of Blood through Pulmonary Circuit)

समस्त शरीर का अशुद्ध रक्त ऊर्ध्व तथा अधःमहाशिरा के द्वारा हृदय के दाहिने अलिन्द में प्रवेश करता है और दाहिना आलिन्द धीरे-धीरे फैलना शुरू करता है। यह उस समय तक फैलता है जब तक कि यह अशुद्ध रक्त से पूरा भर नहीं जाता। जब दाहिना अलिन्द अशुद्ध रक्त से पूर्ण रूप से भर जाता है तब यह सिकुड़ना शुरू करता है जिसका परिणाम यह होता है कि अलिन्द के अन्दर का दबाव बढ़ जाता है, साथ ही साथ महाशिरा का मुख बन्द हो जाता है और त्रिकपर्दिका कपाट (Tricuspid Valve) खुल जाता है और रक्त दाहिने क्षेपक कोष में प्रवेश करता है। अब क्षेपक कोष धीरे-धीरे

फैलना शुरू करता है और उस समय तक फैलता रहता है जब तक कि वह रक्त से भर नहीं जाता। अब दाहिना क्षेपक कोष सिकुड़ना शुरू करता है तथा द्विकपर्दिका कपाट बन्द हो जाता है तथा फुफ्फुस धमनी कपाट (Pulmonary Valve) खुल जाता है। अब रक्त के दाहिने क्षेपक कोष से

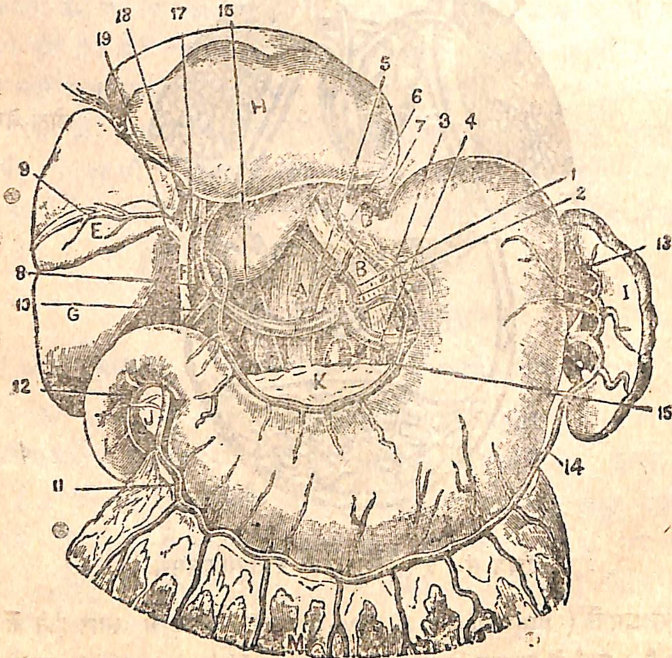


चित्र सं० ५२—शरीर में रक्त-परिभ्रमण

फुफ्फुस धमनी (Pulmonary Artery) के द्वारा फेफड़े में साफ होने के लिये जाता है। वहाँ से फुपफुस शिरा (Pulmonary Vein) द्वारा रक्त शुद्ध अवस्था में बायें अलिन्द में आ गिरता है।

कुक्षि धमनी और उसकी शाखायें
(The Coelic Artery and its branches)

A. महाप्राचीरा का दक्षिण मूल (Right Crus of Diaphragm)
B. महाप्राचीरा का वाम मूल (Left Crus of Diaphragm)
C. यकृत की रज्जु-स्नायु (Round Ligament of Liver)
D. ग्रास नली (Oesophagus)
E, पित्ताशय (Gall Bladder)
F. पित्त नली (Bile duct)
G. यकृत का दक्षिण पिण्ड (Right lobe of Liver)
H. यकृत का वाम पिण्ड (Left lobe of liver)



चित्र सं० ५३

I. प्लीहा (Spleen)

J. अग्न्याशय शिर (Head of Pancreas)

K. अग्न्याशय गात्र (Body of Pancreas)

L. ग्रहणी (Duodenum)

M. दीर्घ वपा (Great Omentum)

1. औदरीय महाधमनी (Abdominal Aorta)
2. कुक्षि धमनी (Coeliac Artery)
3. जठर धमनी वामा (Left Gastric Artery)
4. प्लैहिकी धमनी (Splenic Artery)
5. याकृती धमनी (Hepatic Artery)
6. दक्षिण अधः मध्यच्छद धमनी (Right Inferior Phrenic Artery)
7. वाम अधः मध्यच्छ धमनी (Left Inferior Phrenic Artery)
८. दक्षिण जठर धमनी (Right Gastric Artery)
9. पित्ताशय धमनी (Cystic Artery)
10. जठर ग्रहणी धमनी (Gastro Duodenal Artery)
11. दक्षिण जठर वपा धमनी (Gastro-Epiploica Dextra)
12. ऊर्ध्व अग्न्याशय ग्रहणी (Pancreatico Duodenalis Superior)
13. प्लीहा धमनी की लघु जाठरी शाखा (Short Gastric branch of Splenic Artery)
14. लघु जठर वपा धमनी (Gastro-Epiploica Sinistra)
15. उत्तरान्त्रिकी धमनी (Superior Mesenteric Artery)
16. अधरा महाशिरा (Inferior Venacava)
17. प्रतिहारिणी महाशिरा (Portal Vein)
18. साधारण यकृत-प्रणाली (Common Hepatic Duct)
19. पित्ताशय प्रणाली (Cystic Duct)

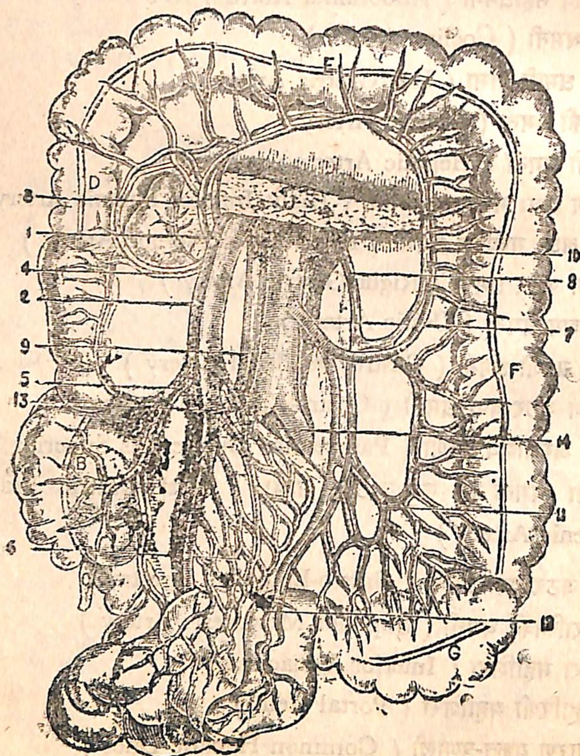
ऊर्ध्व आन्त्र योजिनी तथा अधः आन्त्र योजिनी धमनी
(Diagram of the superior and inferior mesenteric arteries)

A. क्षुद्रान्त्र (Small Intestines)

B. उण्डुक अन्धान्त्र (Caecum)

C. आन्त्रपुच्छ (Verniform Process)

D. आरोहिवृहदन्त्र (Ascending Colon)



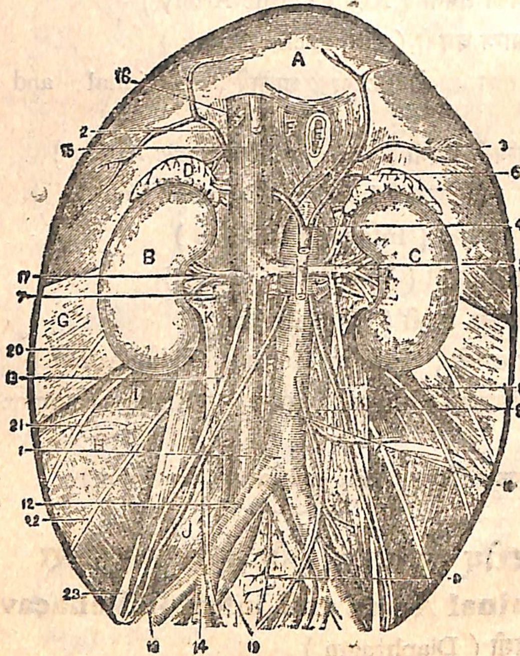
चित्र सं० ५४

E. अनुप्रस्थ वृहदन्त्र (Transverse Colon)
F. अवरोहिवृदन्त्र (Descending Colon)
G. वृहदन्त्र कुण्डलिका (Sigmoid Colon)
H. मलाशय (Rectum)
I. ग्रहणी (Duodenum)
J. अग्न्याशय (Pancreas)
1. ऊर्ध्व आन्त्र योजिनी धमनी (Superior Mesenteric Artery)
2. ऊर्ध्व आन्त्र योजिनी शिरा (Superior Mesenteric Vein)
3. मध्यमा वृहदन्त्रिका धमनी (Middle Coelic Artery)
4. दक्षिण वृहदन्त्रिका धमनी (Right Coelic Artery)
5. शेषान्त्र-वृहद आन्त्र धमनी (Ilio coelic Artery)
6. मध्यान्त्रिका तथा शेषान्त्रिका शाखायें (Jejunal and ileal branches)
7. अधः आन्त्र योजिनी धमनी (Inferior Mesenteric Artery)
8. अधः आन्त्र योजिनी शिरा (Inferior Mesenteric Vein)
9. अधरा महाशिरा धमनी (Inferior Venacava)
10. वाम वृहदन्त्रिका धमनी (Left Coelic Artery)
11. बृहदन्त्र कुण्डलिका धमनी (Sigmoid Artery)
12. ऊर्ध्वमलाशय धमनी (Superior Haemorrhoidal Artery)
13. दक्षिण श्रोणिफलक साधारणी धमनी (Right common Iliac Artery)
14. वाम श्रोणिफलक शिरा (Left common Iliac Vein)

औदरीय महाधमनी और अधरा महाशिरा
(Abdominal Aorta and Inferior Venacava)

A. महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm)
B. दक्षिण वृक्क (Right Kidney)

C. वाम वृक्क (Left Kidney)
D. अधिवृक्क ग्रन्थि (Suprarenal Gland)
E. ग्रासनली (Oesophagus)
F. दक्षिण मूल (Right Crus)
G. उदरच्छदा चरमा (Transversus Abdominis)
H. श्रोणी-फलकिका (Iliacus)
I. कटिचतुरस्रा (Quadratus Lumborum)
J. कटिलम्बिनी दीर्घा (Psoas Major)
K. गवीनी (Ureter)

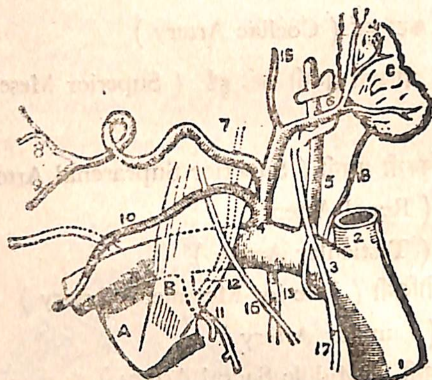


चित्र सं० ५५

1. औदरीय महाधमनी (Abdominal Aorta)
2. दक्षिण अधः प्राचीरिका धमनी (Right Inferior Phrenic Artery)
3. वाम अधः प्राचीरिका धमनी (Left Inferior Phrenic Artery)
4. कुक्षि धमनी कटी हुई (Coeliac Artery)
5. ऊर्ध्व आन्त्र योजिनी धमनी कटी हुई (Superior Mesenteric Artery cut)
6. ऊर्ध्व अधिवृक्किनी धमनी (Superior Suprarenal Artery)
7. वृक्क धमनी (Renal Artery)
8. वृषण धमनी (Testicular Artery)
9. अधः आन्त्र योजिनी (Inferior Mesenteric Artery)
10. कटि धमनी (Lumbar Artery)
11. त्रिकमध्या धमनी (Middle Sacral Artery)
12. दक्षिण श्रोणि फलक साधारणी धमनी (Right Common Iliac Artery)
13. श्रोणि फलक धमनी (External Iliac Artery)
14. अधरामहाशिरा (Inferior Venacava)
15. वृक्क शिरा (Renal Vein)
16. वृषण शिरा (Testicular Vein)
17. श्रोणि फलक साधारणी शिरा (Common Iliac Vein)
18. श्रोणि फलक अधोजठर तन्त्रिका (Iliohypogastric Nerve)
19. वंक्षणोपस्थिका नाड़ी (Ilio Inguinal Nerve)
20. पार्श्व औवीं त्वाची तन्त्रिका (Lateral Femoral Cutaneous Nerve)
21. औवीं तन्त्रिका (Femoral Nerve)

अधोजत्रुक धमनी और उसकी शाखायें

(The Subclavian Artery and it's branches)



चित्र सं० ५६

A. प्रथम पशुंका (First Rib)

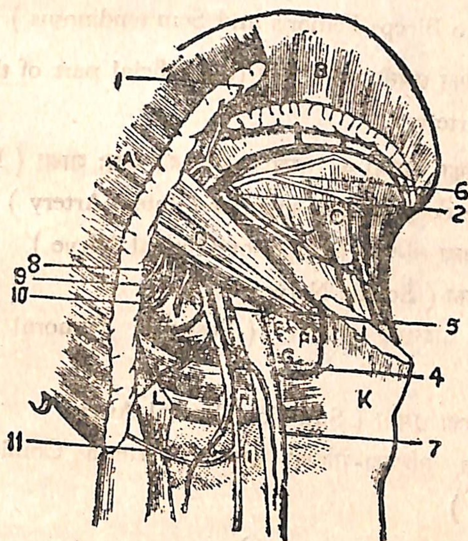
B. अग्र विषमिका (Scalenus Anterior)

C. अवटु-ग्रन्थि (Thyroid body)

1. अनामिका धमनी (Innominate Artery)
2. दक्षिण साधारण केरोटिड धमनी (Right Common Carotid Artery)
3. दक्षिण अधोजत्रुक धमनी (Right Subclavian Artery)
4. अवटुग्रैव धमनी काण्ड (Thyrec-cervical Trunk)
5. कशेरुका धमनी (Vertebral Artery)
6. अधः अवटु धमनी (Inferior Thyroid Artery)
7. अनुप्रस्थ ग्रैव धमनी (Transverse Cervical Artery)
8. इसकी आरोही शाखा (It's Ascending Branch)
9. इसकी अवरोही शाखा (It's Descending Branch)

10. अनुप्रस्थ अंसफलक धमनी (Transverse Scapular Artery)
11. ऊर्ध्व पर्शुकान्तरिक धमनी (Superior Intercostal Artery)
12. गम्भीर ग्रैव धमनी (Arteria Profunda Cervicis)
13. अन्तःस्तन धमनी (Internal Mammary Artery)
14. आरोही ग्रैविक धमनी (Ascending Cirvical Artery)
15. मध्यच्छद तन्त्रिका (Phrenic Nerve)
16. वेगस तन्त्रिका (Vagus Nerve)
17. दक्षिण परावर्तिनी तन्त्रिका (Right Recurrent Nerve)

नितम्ब-प्रान्त की रचना
(Structure of the Gluteal Region)



चित्र सं० ५७

A. वृहत नितम्बिका (कटी हुई) (Glutaeus Maximus Cut.)
B. मध्व नितम्बिका (कटी हुई) (Glutaeus Medius)

C. लघु नितम्बिका (Glutaeus Minimus)

D. तुम्बिका (Piriformis)

E. यमला ऊर्ध्व (Gemellus Superior)

F. आभ्यन्तर गेवाक्षिका (Obturator Internus)

G यमला ऊर्ध्व (Gemellus Inferior)

H. उरु चतुरस्त्रिका (Quadratus Femoris)

I. वृहत् अभिवर्तनी (Abductor Magnus)

J. मध्य नितम्बिका का निवेश (Insertion of Glutaeus Medius)

K. ट्रोकन्टर (Greater Trochanter)

L. आसन-गण्डक (Ischial Tuberosity)

M. द्विशिरस्का औवीं और कण्डरा कलिपका की संयुक्त कण्डरा (Tendon common to Biceps Femoris and Semitendinosus)

1. ऊर्ध्व-नितम्बिका धमनी उत्तान भाग (Superficial part of the superior Gluteal Artery)

2. ऊर्ध्व-नितम्बिका धमनी के गम्भीर भाग की अधः शाखा (Lower branch of the deep part of superior Gluteal Artery)

3. ऊर्ध्व-नितम्बिका तन्त्रिका (Superior Gluteal Nerve)

4. गृध्रसी तन्त्रिका (Sciatic Nerve)

5. औवींत्वाची पश्चिमा तन्त्रिका (Posterior Femoral Cutaneous Nerve)

6. ऊर्ध्व-नितम्बिका धमनी (Superior Gluteal Artery)

7. आसनराभिगा तन्त्रिका-पोषिणी धमनी (Arteria Comitans Nervi Ischiadici)

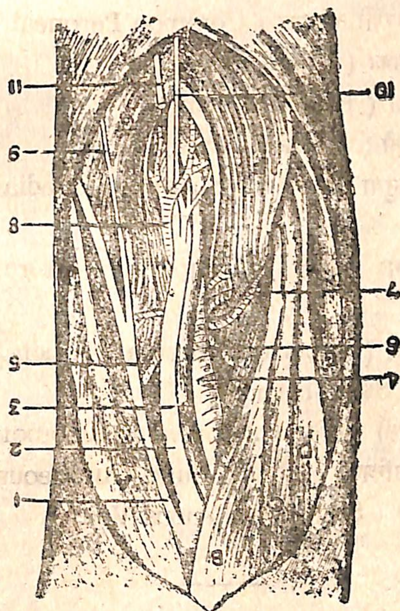
8. गुह्य धममी (Pudendal Nerve)

9. अन्तः गुह्य धमनी (Internal Pudendal Artery)

10. आभ्यन्तर गवाक्षिका की तन्त्रिका (Nerve to Obturator Internus)

11. औवींत्वाची-पश्चिमा तन्त्रिका की दीर्घ मूलाधरिका शाखा (Long Perineal branch of Posterior Femoral Cutaneous Nerve)

जानु-पृष्ठखात का विच्छेदन
(Dissection of the Popliteal Fossa)



चित्र सं० ५८

A. द्विशिरस्का-औवीं (Biceps Femoris)

B. कण्डरा-कल्पिका (Semitendinosus)

C. कला कल्पिका (Semimembranosus)

D. तनुपेशी (Gracilis)

E. दीर्घातमा (Sartorius)

F. उपरिस्थ-पिण्डिका का अन्तःशिरा (Medial head of Gastrocnemius)

G. उपरिस्थ-पिण्डिका का पार्श्विक शिरा (Lateral head of Gastrocnemius)

H. अनुपिण्डिका (Plantaris)

1. पुरोजंघिका साधारणी तन्त्रिका (Common Peroneal Nerve)
2. अंतःजंघिका तन्त्रिका (Tibial Nerve)
3. जानुपृष्ठिका शिरा (Popliteal vein)
4. जानुपृष्ठिका धमनी (Poplital Artery)
5. ऊर्ध्व आन्तरजानुगा धमनी (Superior Medial Genicular Artery)
6. ऊर्ध्व-पार्श्वगाजानुगा धमनी (Superior lateral Genicular Artery)
7. ऊर्ध्व-मांसगा शाखा (Superior Muscular branch)
8. पार्श्विकी शाखा (Sural branch)
9. पुरोजंघिका-संयोजनी तन्त्रिका (Peroneal Anastomotic Nerve)
10. अन्तःपार्श्विकी तन्त्रिका (Medial Sural Cutaneous Nerve)
11. अधःशाखा शिरा (Small Saphenous Vein)

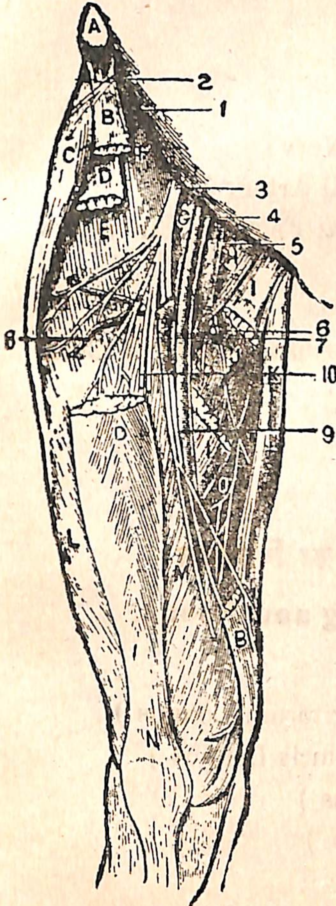
———

उरु के पूर्व-प्रान्त का गम्भीर विच्छेदन

(Deep Dissection of the front of the Thigh)

A. पूर्वोर्ध्वकंटक (Anterior Superior Iliac Spine)

B. दीर्घातमा (Sartorius)
C. उरु प्रावरणी तानिकापेशी (Tensor Fascia Lata Muscle)
D. सम और्विका पेशी (Ractus Femoris)



चत्र सं० ५९

E. मध्य बृहदिका पेशी (Vastus Inter medius)

F. श्रोणि फलकिका (Iliacus)

G. बृहत कटि लम्बिका पेशी (Psoas Major)

H. कंकताभिका पेशी (Pectineus)

I. दीर्घाभिवर्तनी पेशी (Abductor Longus)

J. लघु अभिवर्तनी (Abductor Brevis)

K. तनु पेशी (Gracilis)

L. पाश्वं बृहदिका-बाह्या (Vastus Lateralis)

M. अभिमध्य बृहदिका (Vastus Medialis)

N. उरू चतुरस्त्रिका पेशी की कण्डरा (Tendon of Quadriceps Femoris)

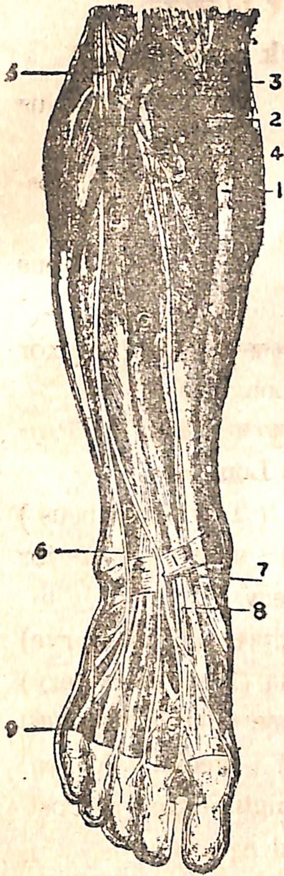
O. बृहत अभिवर्तनी (Abductor Magnus)

1. वंक्षणिका स्नायु (Inguinal Ligament)
2. पार्श्वंगा त्वगीया-औवीं-तन्त्रिका (Lateral Femoral Cutaneous Nerve)
3. औवीं-तन्त्रिका (Femoral Nerve)
4. औवीं-धमनी (Femoral Artery)
5. औवीं-शिरा (Femoral Vein)
6. श्रोणि-गवाक्षिणी तन्त्रिका (Obturator Nerve)
7. गंभीर उरु धमनी (Profunda Femoral Artery)
8. पार्श्वी परिवेष्टक उरू धमनी (Lateral Femoral Circumflex Artery)
9. अध: शाखा तन्त्रिका (Saphenous Nerve)
10. मध्यवर्ती औवीं त्वक् तन्त्रिकाएं (Intermediate Femoral Cutaneous Nerve)

जंघा तथा पाद के पूर्वपृष्ठ का विच्छेदन

(Dissection of the Leg and Foot)

A. पूर्वजंघिका पेशी (Tibialis Anterior)
B. दीर्घ पादांगुली प्रसारिणी (Extensor Digitorum Longus)
C. दीर्घपादाङ्गली प्रसारिणी (Extensor Hallucis Longus)
D. पादविर्तिका तृतीया (Peronaeus Tertius)
E. पादविर्तिका दीर्घा (Peronaeus Longus)
F. पादविर्तिका लघु (Peronaeus Brevis)
G. लघु पादाङ्गलि प्रसारिणी (Extensor Digitorum Brevis)
H. जंघापिण्डिका की पेशियाँ (Muscles of the Calf)



चित्र सं० ६०

I. गुल्फ का स्वस्तिक स्नायु (Cruciate Crural Ligament)

1. अन्तर्जङ्घास्थि पूर्वधारा (Shin)
2. अन्तर्जङ्घिका धमनी (Anterior Tibial Artery)
3. अन्तर्जङ्घिका आवर्तक धमनी (Anterior Tibial Raccurent Artery)
4. बहिर्जंघिका तन्त्रिका (Deep Peroneal Nerve)
5. उपरिस्थ बहिर्जंघिका तन्त्रिका (Superficial Peroneal Nerve)
6. मध्यस्थ पाद पृष्ठिका त्वाची तन्त्रिका (Intermediate Dorsal Cutaneous Nerve)
7. अभिमध्य पाद-पृष्ठिका त्वाची तन्त्रिका (Medial Dorsal Cutaneous Nerve)
8. पाद पृष्ठिका धमनी (Dorsalis Pedis Artery)
9. पार्श्व पाद-पृष्ठिका त्वाची तन्त्रिका (Lateral Dorsal Cutaneous Nerve)

———

जंघा पश्चिम प्रान्त का गम्भीर विच्छेदन
(Deep Dissection of the back of the Leg)



चित्र सं० ६१

A. पादविवर्तिनी दीर्घा (Peronaeus Longus)

B. पश्च जंघिका पेशी (Tibialis Posterior)

C. पादविवर्तिनी लघु (Peronaeus Brevis)

D. पादांगुष्ठ आकुञ्चनी दीर्घा (Flexor Hallucis Longus)

E. पादांगुलि आकुञ्चनी दीर्घा (Flexor Digitorum Longus)

F. पार्ष्णि कण्डरा (Tendo-calcaneus)

1. पश्च जंघिका धमनी (Posterior Tibial Artery)

2. पश्च-जंघिका तन्त्रिका (Tibial Nerve)

3. बहिर्जंघिका धमनी (Peroneal Artery)

4. पश्चजंघिका धमनी की मध्य पार्ष्णिगा शाखा (उच्च उदय) (Medial calcaneal branch (High origin) of Posterior Tibial Artery)

5. पश्चिम-जंघिका धमनी की योजनी शाखा (Communicating Branch of Posterior Tibial Artery)

6. पश्च जंघिका की कण्डरा (Tendon of Tibialis Posterior)

7. पादांगुलि-आकुञ्चनी दीर्घा की कण्डरा (Tendon of Flexor Digitorum Longus)

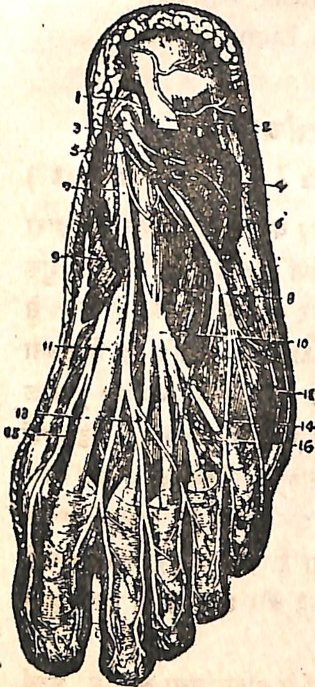
8. पश्च-जंघिका धमनी का अन्तिम भाग (Termination of Posterior Tibial Artery)

9. पश्च-जंघिका तन्त्रिका का अन्तिम भाग (Termination of Posterior Tibial Nerve)

10. पादांगुष्ठ आकुञ्चनी दीर्घा की कण्डरा (Tendon of Flexor Hallucis Longus)

पादतल का गम्भीर विच्छेदन

(Deep Dissection of the Sole of the Foot)



चित्र सं० ६२

1. अन्तर्गुल्फिका स्नायु (Lacinate Ligament)
2. लघु पादाङ्गुलिआकुञ्चनी कटी हुई (Flexor Digitorum Brevis cut)
3. पादतलीया पाश्वं तन्त्रिका (Lateral Plantar Nerve)
4. पादतलीया-पाश्वं धमनी (Lateral Plantar Artery)
5. पादतलीया अभिमध्य तन्त्रिका (Medial Plantar Nerve)
6. कनिष्ठ अपवर्तनी (Abductor Digiti Quinti)
7. पादतल अभिमध्य धमनी (Medial Plantar Artery)
8. पादतल-चतुरस्रा (Quadratus Plantae)

9. पादाअंगुष्ठअभिवर्तनी (Abductor Hallucis)
10. पादांगुलिआकुञ्चनी दीर्घा (Flexor Digitorum Longus)
11. पदांगुष्ठआकुञ्चनी दीर्घा (Flexor Hallucis Longus)
12. लघु कनिष्ठाआकुञ्चनी ह्रस्वा (Flexor Digiti Minimi Brevis)
13. पादतलीया अभिमध्य तन्त्रिका की अंगुलिगा साधारणी शाखा (Common Digital Branch of Medial Plantar Nerve)
14. पादतलीया पार्श्व तन्त्रिका की अंगुलिगा साधारणी शाखा (Common Digital Branch of lateral Plantar Nerve)
15. पादांगुष्ठसंकोचनी ह्रस्वा (Flexor Hallucis Brevis)
16. अनुकण्डरिकाओं में से एक (One of the Lumbricales)

बड़े घेरे से रक्त का परिसंचरण
(Circulation of Blood through Larger Circuit)

जब फेफड़े के अन्दर रक्त साफ हो जाता है तब वह फौफ्फुसी शिरा के द्वारा होता हुआ बायें अलिन्द में प्रवेश करता है। बायाँ अलिन्द फिर फैलना शुरू करता है जब तक कि यह पूर्ण रूप से रक्त से भर न जाय। जब यह रक्त से पूर्ण रूप से भर जाता है, इसके अन्दर दबाव बढ़ जाता है, क्योंकि यह सिकुड़ना शुरू करता है। इसके सिकुड़ने से द्विकपर्दी कपाट (Mitral Va ve) खुल जाता है और इस कपाट के द्वारा रक्त बायें क्षेपक कोष में आता है। द्विकपर्दी कपाट रक्त को क्षेपक कोष से बायें अलिन्द में जाने से रोकता है। जब बायाँ क्षेपक कोष रक्त से भर जाता है तब यह सिकुड़ना शुरू करता है, द्विकपर्दी कपाट बन्द हो जाता है और महाधमनी कपाट खुल जाता है और अब रक्त महाधमनी में आकर उसके द्वारा सारे शरीर में भ्रमण करता है और धमनियों से होता हुआ केशिकाओं को जाता है।

अब यह रक्त सारे शरीर से घूमकर शिराओं से होता हुआ अन्त में ऊर्ध्व महाशिरा (Superior Venacava) तथा अधरा महाशिरा (Inferior

Venacava) से होकर दाहिने अलिन्द में आता है। इस तरह से इसका चक्र चलता रहता है।

— — —

हृदय की गति
(Movement of Heart)

हृदय का फैलना तथा सिकुड़ना एक क्रम से होता है और नियमित रूप से होता है। सबसे पहले अनुशिथिलन की लहर (Wave of Diastole) अलिन्द से प्रारम्भ होती है और रक्त भरने के समय एक साथ फैलना आरम्भ करती है। जब आरिकिल में प्रसार समाप्त हो जाता है तो प्रसार की लहर क्षेपक कोष में पहुँचती है। दोनों क्षेपक कोष साथ-साथ फैलना आरम्भ करते हैं। ठीक इसी समय अलिन्द (Auricle) के अन्दर संकोचन की लहर (Wave of Systol) शुरू होती है और अलिन्द फैलते हैं तो निलय सिकुड़ते हैं।

हृदय की गति की क्रिया दो भागों में विभाजित की जा सकती है। पहली अवस्था वह है जब कि अलिन्द फैलते रहते हैं और निलय सिकुड़ते रहते हैं और दूसरी अवस्था वह होती है जब कि अलिन्द सिकुड़ते रहते हैं और निलय फैलते रहते हैं।

एक साधारण मनुष्य के हृदय की धड़कन एक मिनट में लगभग ७२ बार होती है यानी एक धड़कन में $\frac{१}{७२}$ मिनट लगते हैं। इनके अतिरिक्त हृदय की फैलने और सिकुड़ने की क्रिया सम्मिलित है। एक बात और है कि प्रसार की क्रिया में अधिक समय लगता है और संकोचन में कम।

अब एक बात यह भी विचार करने योग्य है कि जिस समय से हृदय का काम आरम्भ होता है और मरते समय तक हृदय की धड़कन बनी रहती है। तब यह सवाल उठता है कि कोई भी अंग इतने समय तक बिना आराम किये बराबर काम करेगा तो उसकी क्या हालत होगी। इसका जवाब यह है कि जितने

जितने समय में एक हृद् स्पन्दन (Heart beat) होता है उस समय में कम-से-कम तीन काम होते हैं। हृदय का प्रसार, हृदय का संकोचन तथा हृदय का रुकना या आराम और फिर वही क्रिया दुबारा शुरू हो जाती है। जिस समय हृदय रुका रहता है उस थोड़े समय में वह पूर्ण विश्राम कर लेता है। उसे कोई उत्तेजना चौंका नहीं सकती। इसे विश्रान्ति काल (Period of Relaxation) कहते हैं।

हृदय की ध्वनि
(Sound of Heart)

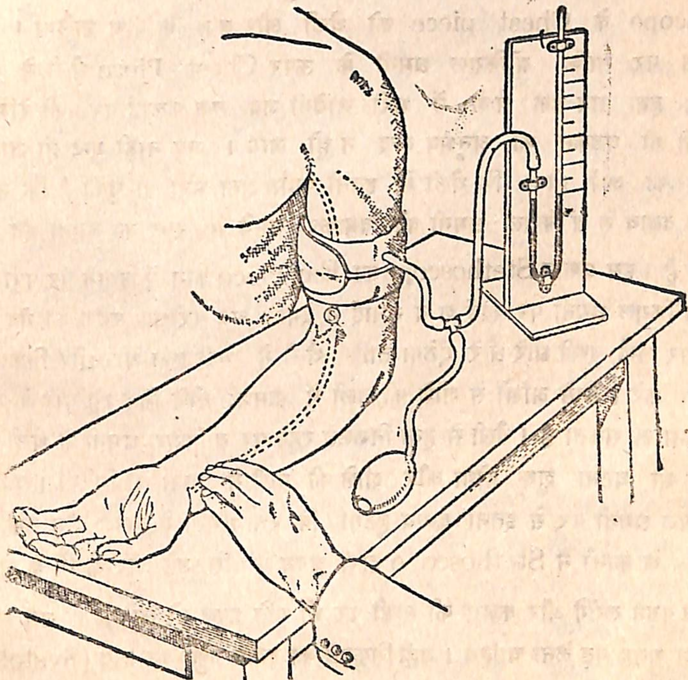
जिस समय हम स्टेथोस्कोप (Stethoscope) हृदय के कपाट के पास लगाते हैं, हम लोगों को स्पष्ट रूप से दो प्रकार की ध्वनि सुनाई पड़ती है। एक ध्वनि तो लम्बी तथा धीमी रहती है जिसे लप कहते हैं और दूसरी ध्वनि बहुत तेज और छोटी सुनाई पड़ती है जिसे Dup कहते हैं। यह दोनों ध्वनियाँ Valves के निकट ही सुनाई पड़ती हैं। चूँकि Auricles पीछे पड़ जाते हैं और Ventricle सामने पड़ते हैं इसलिये Ventricles के Valves की ध्वनि अधिकतर सुनायी पड़ती है।

जिस समय Auricles फैल चुकते हैं और Ventricles सिकुड़ना आरम्भ करते हैं उस समय Lupp की ध्वनि सुनायी पड़ती है और जब Auricles सिकुड़ चुकते हैं तब Ventricles सिकुड़ना आरम्भ करते हैं। उस समय Dup की ध्वनि सुनाई पड़ती है। यह दोनों ध्वनियाँ क्रम से एक दूसरे के बाद निरन्तर सुनाई पड़ती हैं। जैसे—Lupp-Dup बीमारी के समय इनकी आवाज में फर्क आ जाता है।

रक्त का दाब

(Blood Pressure)

जिस ससम हृदय आकुञ्चन करता है उस समय रक्त पर दबाव पड़ता है, जिसकी वजह से उसके अन्दर गति पैदा होती है और रक्त आगे की ओर धमनी में बढ़ता जाता है। उसके बाद धमनियाँ बहुत तेजी से आकुञ्चन करती हैं और रक्त को आगे बढ़ने को प्रेरित करती हैं।



चित्र सं० ६३—रक्तदाब मापक यन्त्र

रक्त का दबाव एक यंत्र द्वारा नापा जाता है, जिसे रक्तदाबमापी (Suphygmomanometer) कहते हैं। इसके तीन भाग होते हैं। एक लम्बा बन्द थैला, एक रबड़ की गेंद तथा U के आकार की पारा भरी हुई शीशे की नली। जिस आदमी का रक्तदाब लेना होता है उसके बाँह में लम्बा थैला कस कर बाँध देते हैं। फिर परीक्षक रबड़ की गेंद दबा-दबा कर बाँह के चारों तरफ लपेटी हुई थैली में हवा चढ़ाता जाता है। ज्यों-ज्यों यह थैली फूलती जायगी रोगी बाँह पर थैली के कसने का अनुभव करता जायगा। इसके बाद परीक्षक जो कलाई पर नाड़ी का अनुभव भी कर रहा है, अपने Stethoscope के Chest piece को थैली और बांह के बीच डालेगा। ऐसे स्थान पर ताकि ब्रेकियल धमनी के ऊपर Chest Piece थैली से दबा रहे। हवा तब तक थैली में भरी जायेगी जब तक कलाई पर की रेडियल धमनी की धड़कन का अनुभव बन्द न हो जाय। जब नाड़ी बन्द हो जायगी तो इसका अर्थ होगा कि थैली में इतनी पर्याप्त हवा भरी जा चुकी है कि उसने अपने दबाव से ब्रेकियल धमनी को दबाकर उसमें से रक्त का बहना बंद कर दिया है। इस प्रकार Stethoscope का Ear Piece कान में लगाने पर परीक्षक को ब्रेकियल धमनी पर कोई शब्द सुनाई न देगा। अब परीक्षक रबड़ की गेंद की जड़ पर लगी घुण्डी धीरे-धीरे ऐंठेगा ताकि थैली में भरी हवा धीरे-धीरे निकलना प्रारम्भ करे। जिसे आँखों से शीशे की नली में क्रमशः नीचे गिर रहे पारे के तल से जाना जा सकता है। थैली से हवा निकलते रहने पर ब्रेकियल धमनी से थैली का दबाव भी घटना शुरू होगा और शीशे की नली में पारा भी गिरेगा। ज्योंही ब्रेकियल धमनी पर से इतना दबाव हटेगा कि रक्त धमनी से होकर दौड़ सके तो परीक्षक के कानों में Stethoscope द्वारा हृदय के सिकुड़ने और फैलने के शब्द सुनायी पड़ने लगेंगे और कलाई की नाड़ी पर भी गति प्रकट हो जायगी। उस क्षण पारे का सतह पढ़ लेना चाहिये। यही सिकुड़ने का दबाव प्रकुञ्चन दाब (Systolic Pressure) होगा। वायु धीरे-धीरे निकालते रहना चाहिये ताकि पारा नली में उसी तरह धीरे-धीरे गिरता जाय। पारे की सतह पर भी हृदय के आकुञ्चन

और प्रसारण का प्रभाव दिखायी देगा। शब्द धीरे-धीरे तेज और स्पष्ट होते जायँगे और अन्त में लुप्त होने लगेंगे। इसका अर्थ यह होगा कि अब थैली में इतनी भी हवा नहीं है कि वह फूली रह कर ब्रेकियल धमनी से सटी रहे और धमनी के स्पन्दन थैली की दीवार से उसमें भरी हवा के द्वारा पारे से सम्बन्ध रख सकें। जैसे ही शब्द सुनाई पड़ना बन्द हो, पारे का स्तर पुनः पढ़ लेना चाहिये और इसे हृदय द्वारा फैलने पर रक्त का दबाव समझना चाहिये। अनुशिथिलन (Diastolic Pressure) अवस्था के अनुसार स्वस्थ प्रकुञ्चन चाप (Systolic Pressure) और अनुशिथिलन चाप (Diastolic Pressure) में अन्तर पाया जाता है। प्रकुञ्चन चाप और अनुशिथिलन चाप के बीच का अन्तर नाड़ी चाप (Pulse Pressure) कहलाता है। रक्त-चाप में प्रकुञ्चन चाप एवं अनुशिथिलन चाप दोनों को बतलाना होगा। रक्त-चाप चाहे जितना हो नाड़ी चाप में अन्तर न आना चाहिए। नाड़ी चाप के बढ़ने पर रोग का अनुमान लगाया जाता है। मान लीजिये एक स्वस्थ मनुष्य का रक्त-चाप है १२०/८०। १२० प्रकुञ्चन चाप और ८० अनुशिथिलन चाप, अतः नाड़ी चाप ४० हुआ। यदि रक्त-चाप उसी व्यक्ति में १८०/१४० हो गया तो यह रोग अतिरक्तदाब (Hypertension) कहलायेगा। एक औसत आदमी में रक्त-चाप 90 + आयु होता है। जैसे एक ४० वर्ष के मनुष्य का रक्तचाप १३० होगा।

रक्तचाप क्या है ?

रक्त-चाप वह दबाव है जो रक्त द्वारा धमनी की दीवार पर पड़ता है। यदि धमनी काट दी जाय तो रक्त एक बराबर धार से गिरना शुरू होगा। होना क्या चाहिये कि जब हृदय सिकुड़े तो रक्त-धारा तेजी से निकले और जब हृदय फैले तो रक्त-धारा धीमी पड़ जाये—किन्तु ऐसा नहीं होता क्यों? क्योंकि धमनी की दीवार कड़ी न होकर रबर की तरह लचकदार होती है। धमनी में हृदय के आकुञ्चन का धक्का पाकर रक्त दौड़ता है और जब हृदय फैलकर स्वयं अपने को

रक्त से भरने लगता है तो रक्त पर हृदय का धक्का समाप्त हो जाता है। अब रक्त पर हृदय की जगह धमनी जो हृदय के धक्के से गुब्बारे की तरह लचकदार होने से फूल गयी थी, अब हृदय का धक्का समाप्त होने पर स्वयं सिकुड़कर पहली अवस्था में आने लगती है जिससे हृदय के धक्के के समाप्त होने पर धमनी के सिकोड़ का स्वयं धक्का लगने लगता है और इससे पहले कि धमनी अपनी पूर्वावस्था में आकर अपना धक्का बन्द कर दे, हृदय पुनः सिकुड़कर धक्का लगाने का कार्य सँभाल लेता है। इस प्रकार हृदय और धमनियाँ बारी-बारी से रक्त को ढकेलती रहती हैं ताकि रक्त समान गति से आगे बढ़ता रहे। यही रक्त पर धमनी द्वारा पड़ने वाले दबाव को रक्त-चाप कहते हैं और इसमें हृदय द्वारा भी पड़ने वाला आकुञ्चन और अनुशिथिलन चाप सम्मिलित हैं।

———

आठवाँ अध्याय

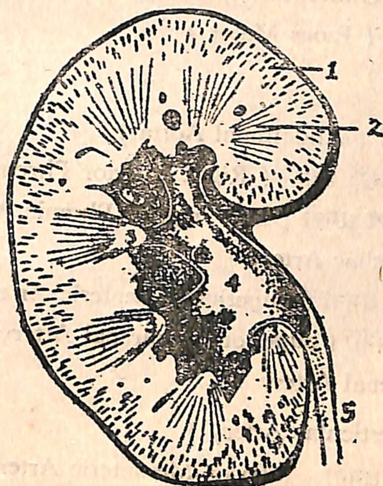
मूत्रवह तन्त्र

(Urinary System)

शरीर के वे अंग जो मूत्र के बनाने तथा शरीर से बाहर निकालने में भाग लेते हैं वे सब मूत्रवह तन्त्र में सम्मिलित हैं। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित अंग आते हैं :—

(१) वृक्क (Kidney)

(२) गवीनी (Ureter)



चित्र सं० ६४

(३) मूत्राशय (Urinary, Bladder)

(४) मूत्रमार्ग Urethra)

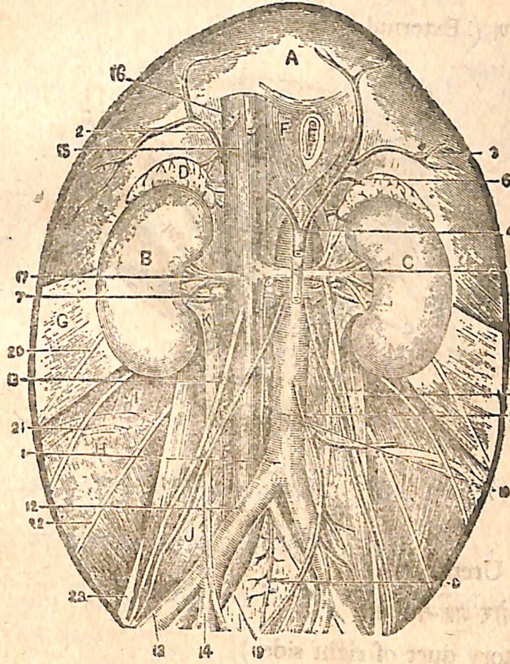
———

उदर में स्थित वृक्क के आस-पास के अवयव

A. महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm)
B. दक्षिण वृक्क (Right Kidney)
C. वाम वृक्क (Left Kidney)
D. अधिवृक्क ग्रन्थि (Suprarenal Gland)
E. ग्रास नली (Oesophagus)
F. दक्षिण मूल (Right Crus)
G. अनुप्रस्थ उरिका (Transversus Abdominis)
H. श्रोणि फलकिका (Iliacus)
I. कटिचतुरस्रिका (Quadratus Lumborum)
J. वृहत् कटिलम्बिका (Psoas Major)
K. गवीनी (Ureter)

1. औदरीय महाधमनी (Abdominal Aorta)
2. दक्षिण अधः मध्यच्छद धमनी (Right Inferior Phrenic Artery)
3. वाम अधः मध्यच्छद धमनी (Left Inferior Phrenic Artery)
4. कुक्षि धमनी (Coeliac Artery)
5. ऊर्ध्व आंत्र योजनी धमनी (Superior Mesenteric Artery cut)
6. ऊर्ध्व अधिवृक्क धमनी (Superior Suprarenal Artery)
7. वृक्क धमनी (Renal Artery)
8. वृषण धमनी (Testicular Artery)
9. अधः आन्त्रयोजनी धमनी (Inferior Mesenteric Artery)
10. कटि धमनी (Lumbar Artery)
11. त्रिकमध्या धमनी (Middle Sacral Artery)
12. दक्षिण श्रोणिफलक साधारणी धमनी (Right Commnn Iliac ArtertA)

13. श्रोणिफलक बाह्य धमनी (External Iliac Artery)
14. अधरामहासिरा (rnferior Venacava)
17. वृक्क सिरा (Renal Vein)
18. वृषणफलक सिरा (Testicular Vein)
19. श्रोणि साधारणी सिरा (Common Iliac Vein)



चित्र सं० ६५

20. श्रोणिफलक अधिजठर तन्त्रिका (Iliohypogastric Nerve)
21. श्रोणिफलक वंक्षण तंत्रिका (Ilio-Inguinal Nerve)
22. पाश्र्वऔर्वी त्वाची तन्त्रिका (Lateral Femoral Cutaneous Nerve)
23. और्वी तन्त्रिका (Femoral Nerve)

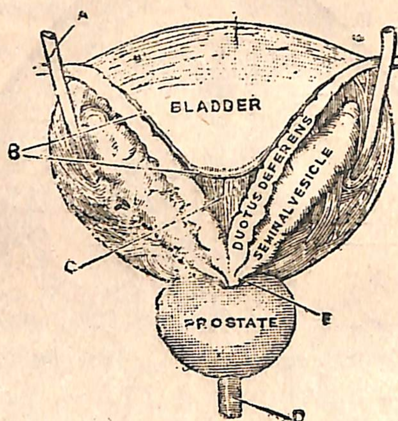
———

शुक्राशय तथा शुक्र-प्रणालियाँ

A. वाम गवीनी (Left Ureter)

B. परिउदर्य्या के परावर्तित होने की रेखा
(Line of reflection of Peritoneum)

C. बाह्य त्रिकोण (External Trigone)



चित्र सं० ६६

D. मूत्र-मार्ग (Urethra)

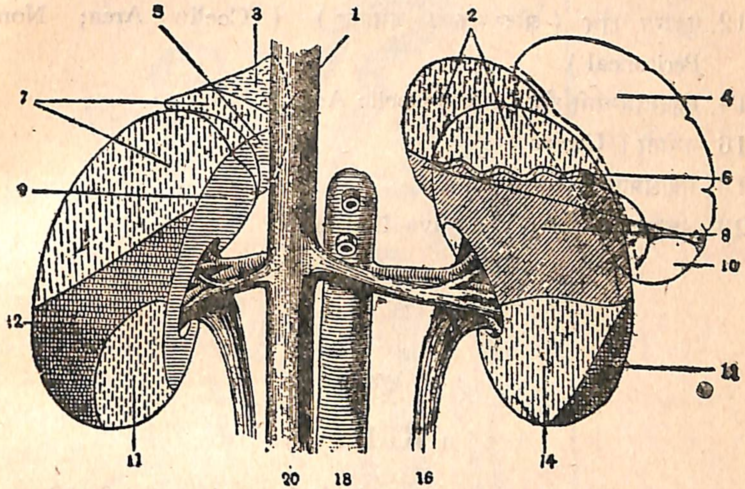
E. दक्षिण की ओर शुक्र-वाहिनी
(Ejaculatory duct of right side)

———

वृक्क, अधिवृक्क ग्रन्थि और प्लीहा का सम्बन्ध प्रदर्शक चित्र
(Diagram Dshowing relation of kidneys, suprarenal glands and spleen)

1. महाशिरा क्षेत्र (Caval Area)

2. आमाशय क्षेत्र औदर्य्या कला (Gastric area Peritoneal)



चित्र सं० ६७

3. यकृत-क्षेत्र (औदर्य्याकलाहीन) Hepatic Area (Non-Peritoneal)

4. प्लीहा का आमाशय स्पर्शज (Gastric Area of Spleen)

5. ग्रहणी स्पर्शज चिह्न (औदर्य्याकला अनावृत) Duodenal Area (Non-Peritoneal)

6. प्लीहा धमनी (Splenic Artery)

7. यकृत क्षेत्र (औदर्य्या कलावृत) Hepatic Area (Peritoneal)

8. अग्न्याशय क्षेत्र (उदर्य्याकला-अनावृत) (Pancreatic Area; Non-Peritoneal)

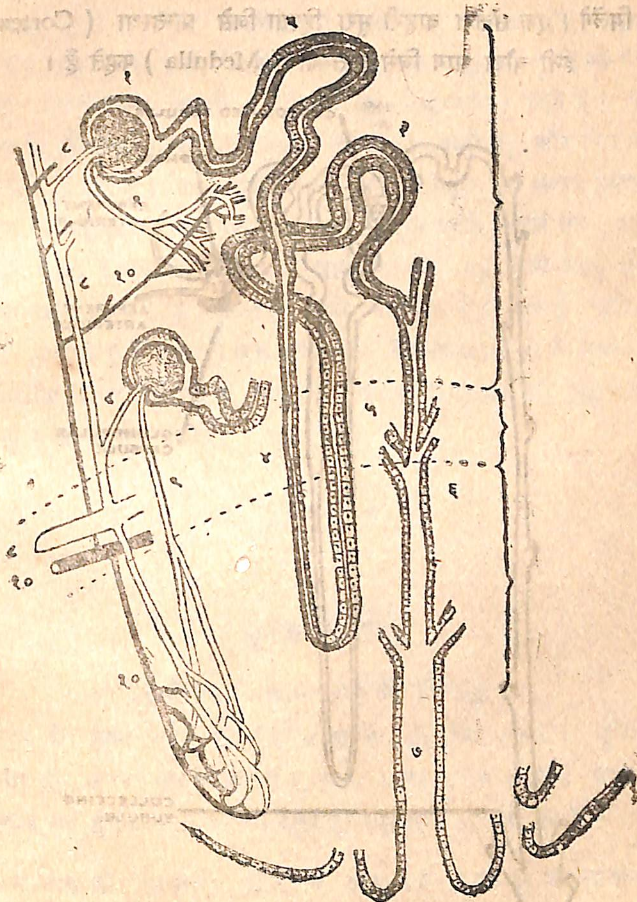
9. ग्रहणी क्षेत्र या स्पर्शज चिह्न (Duodenal Area; Non-Peritoneal)

10. प्लीहा का वृहदन्त स्पर्शज चिह्न (Coelic Area of Spleen)
11. वृहदन्त्र-बन्धनी क्षेत्र (Meso-Coelic Area)
12. वृहदन्त क्षेत्र (औदर्य्याकला अनावृत) (Coelic Area; Non-Peritoneal)
14. वृहदन्त्रबन्धनी क्षेत्र (Meso-Coelic Area)
16. गवीनी (Ureter)
18. महाधमनी (Aorta)
20. अधरा महाशिरा (Venacava Inferior)

वृक्क
(Kidney)

यह दो अण्डकार कत्थई रंग का अंग है जो उदर के अन्दर रीढ़ की हड्डी की दोनों तरफ १२ वें वक्षीय (Thoracic) तथा ४ थे कटि कशेरुक (Lumbar Vertebra) के बीच स्थित हैं। इसकी लम्बाई करीब ५½ Cm. चौड़ाई २½ Cm. तथा मोटाई २ Cm. होती है। दोनों गुर्दे बहुत महीन पारदर्शक झिल्ली से ढंके हुए हैं। गुर्दे के ऊपरी भाग पर अधिवृक्क (Suprarenal) ग्रन्थियाँ स्थित हैं। प्रत्येक वृक्क (Kidney) का बाहरी हिस्सा उन्नत (Convex) तथा भीतरी हिस्सा कुछ भीतर अवनत (Concave) रहता है। इस धँसे हुए भाग के बीच के छिद्र को हाईलम (Hilum) कहते हैं। इसी स्थान से रीनल या वृक्क की धमनी गुर्दे के अन्दर प्रवेश करती है। रीनल शिरा गवीनी गुर्दे से बाहर निकलती है। रीनल शिरा खून इकट्ठा करके अधः महाशिरा (Inferior Venacava) में पहुँचाती है। प्रत्येक गवीनी (Ureter) जो करीब १० इन्च लम्बी होती है, कुछ दूर पीछे जाने के बाद एक बड़े थैले में खुलती है जिसे मूत्राशय

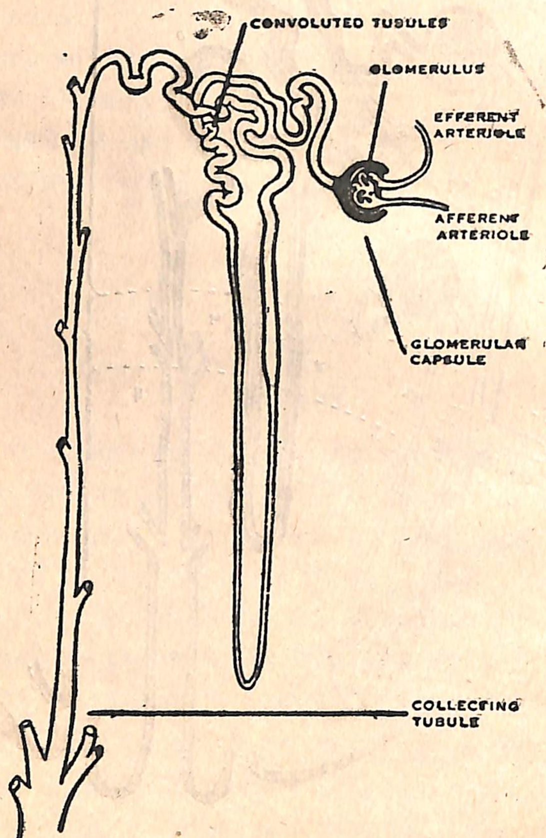
(Urinary Bladder) कहते हैं। इस थैले में मूत्र इकट्ठा होता है।



चित्र सं० ६८—वृक्क की सूक्ष्म रचना

१–मूत्रोत्सिका	२–प्रथम कुण्डलिका भाग	३–द्वितीय कुण्डलिका भाग
४–अवरोही भाग	५–आरोही भाग	६–सहायक नलिकायें
७–महानलिकायें	८–धमनी	९–शिरा (बहिर्मुखी) १०–सिर

गुर्दे के बीचो-बीच ऊपर से नीचे काट कर देखा जाय तो इसके भीतर दो भाग मिलेंगे। एक सँकरा बाहरी भूरा हिस्सा जिसे प्रान्तस्था (Cortex) तथा दूसर ... ऊनी चौड़ा भाग जिसे अन्तस्था (Medulla) कहते हैं।



चित्र सं० ६९ वृक्क का सूक्ष्म निर्माण

प्रत्येक वृक्क के अन्दर डेढ़ लाख के लगभग महीन-महीन नलिकायें (Tubules) होती हैं। जिनका आकार प्रत्येक स्थान में एक-दूसरे से

भिन्न होता है। प्रत्येक नलिका प्रान्तस्था से आरम्भ होती है। इनका प्रारम्भिक भाग फैला होता है, जिसे बाउमेन्स की झिल्ली (Bowman's Capsule) कहते हैं। यह चारों तरफ से केशिकाओं के एक समूह के गुच्छे को घेरे रहते हैं, जिसे मैलपीजियन झिल्ली (Malpigian Capsule) कहते हैं। बाउमेन्स कैप्स्यूल से आरम्भ होकर यह नलियाँ सँकरी हो जाती हैं, और फिर बाद को टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती हैं। आगे जाकर यह नलिकायें मेडुला के अन्दर प्रवेश करती हैं। अन्त में यह दल की दल नलिकायें मूत्र इकट्ठा करने वाली संग्रह नलिकाओं (Collecting Tubules) में खुल जाती हैं और यह सभी संग्रह नलिकाएं वृक्क के उस चौड़े भाग में खुलती हैं जिसे गोणिका (Pelvis) कहते हैं और जहाँ से गवीनी (Ureter) शुरू होती है। Bowman's की Membrane से Collecting Tubules तक के भाग को वृक्काणु (Nephraon) कहते हैं। यही वृक्काणु वृक्क की एक इकाई (Unit) है।

———

वृक्क के कार्य

(Functions of Kidney)

वृक्क के मुख्य कार्य दो हैं। प्रथम तो यह कि शरीर से दूषित पदार्थ निकलना और उसको मूत्र के रूप में शरीर से बाहर त्याग करना। इसका दूसरा मुख्य कार्य यह है कि यह हृदय का बहुत हा महत्वपूर्ण सहायक अंग है।

हम लोग जो Protein भोजन के साथ ग्रहण करते हैं, वह आमाशय तथा पक्वाशय मे पड़ता है और उसके बाद शरीर के प्रत्येक तन्तु उसे अपनी आवश्यकता के अनुसार शोषित कर लेते हैं। जो शेष प्रोटीन का भाग बच जाता है वह शरीर के लिये हानिकारक होता है। इसी वस्तु को वृक्क ले लेता है और उसको : के रूप में बदल कर बाहर निकाल देता है। यदि वृक्क के अन्दर किसी प्रकार

का दोष पैदा हो जाता है तो ऐसी अवस्था में वृक्क के कार्य में रुकावट पड़ जाती है जिसका फल यह होता है कि—

(१) (A) रक्त के अन्दर अम्ल और क्षार के अनुपात में अन्तर हो जाता है। यदि अम्ल की मात्रा अधिक हो गयी तो अम्लमयता (Acidosis) की अवस्था आ जाती है और यदि क्षार की मात्रा अधिक हो जाती है तो क्षार-मयता (Alkalosis) की अवस्था आ जाती है। जैसा कि Uraemia के रोग में देखा जाता है।

(B) जब यह हानिकारक वस्तुयें रक्त के द्वारा मांसपेशियों तथा जोड़ों पर इकट्ठा होती हैं तो वात-रोग तथा गठिया (Gout) का रोग पैदा होने लगता है।

चर्म भी इसका बहुत कुछ सहायक होता है। स्वेद का होना वृक्क को बहुत कुछ मदद देता है। क्योंकि वास्तव में पसीना पानी मिला हुआ पेशाब है। वृक्क के बीमार होने पर चर्म इसकी सहायता के लिए अग्रसर रहता है।

(२) वृक्क एक बहुत ही लचीला अंग है। जिस समय रक्त का दबाव अधिक बढ़ जाता है, गुर्दा सिकुड़ जाता है और मूत्र की मात्रा कम हो जाती है तथा इसके विपरीत जिस समय तक रक्त का दबाव घट जाता है, गुर्दा फैल जाता है और मूत्र की मात्रा अधिक हो जाती है।

(i) शरीर में जितने भी द्रव भाग हैं उनमें प्रधान प्लाविका (Plasma) है; वृक्क उस पर नियन्त्रण (Control) करता है।

(ii) रक्त में प्लाविका (Plasma), ग्लूकोज (Glucose) और यूरिया (Urea) नामक तत्वों के घनत्व पर नियन्त्रण रखना।

(iii) Power of Hydrogen Ions Ph. 7·4 का बनाये रखना।

(iv) रक्त में क्षारीय और अम्लीय पदार्थ रहते हैं। ये दो वर्गों में बाँटे जा सकते हैं।

(A) उड़नशील Volatile—जैसे–Co^2 यह फेफड़े के द्वारा बाहर निकाल दी जाती है।

(B) Nonvolatile–यह वृक्क द्वारा बाहर निकाला जाता है। जैसे—NH^2 को अम्लीय करके NH^4 बनाकर निकाल देता है।

(v) रक्त के अन्दर उपस्थित अवांछनीय तत्वों को निकाल बाहर करती है। अवांछनीय तत्व वे हैं जिनमें Nitrogens, Sulphur उपस्थित हैं। इसके अलावा विषैली औषधियाँ भी बाहर निकाली जाती हैं।

———

मूत्राशय

(Urinary, Bladder)

यह झिल्ली तथा मांसपेशियों की बनी थैली होती है जिसके पीछे दोनों तरफ गवीनियाँ (Ureters) खुलती हैं जो वृक्क से मूत्र ले आती हैं और सामने की ओर एक तीसरी नली होती है जिसे यूरेथ्रा (Urethra) मूत्रमार्ग कहते हैं।

जब यह पेशाब से भर जाता है तब मनुष्य को पेशाब मालूम पड़ता है। मूत्राशय का निचला भाग मूत्रमार्ग (Urethra) कहलाता है। जब मूत्राशय पेशाब से भर जाता है तब मूत्राशय की नर्व (Nerve) के द्वारा मनुष्य को पेशाब करने की आवश्यकता मालूम पड़ने लगती है और मूत्राशय में संकोचन होता है तथा पेशाब एक दबाव के साथ झोंके से मूत्रमार्ग से बाहर निकलता है। यह मूत्रमार्ग पुरुषों में शिश्न (Penis–पेनिस) से होता हुआ अन्त में ग्लान्स (Glans) मार्ग पर खुलता है। यह अंग स्त्रियों में वेजाइना (Vagina) के सबसे सामने वाले भाग भग-शिश्न (Clitoris) के पास में खुलता है।

मूत्र

(Urine)

एक साधारण मनुष्य २४ घण्टे के अन्दर ५० औंस या लगभग १½ सेर वजन का पेशाब निकालता है। इसकी मात्रा बहुत कुछ भोजन तथा ऋतु के ऊपर निर्भर करती है।

यह हल्के पीले रंग का होता है। इसकी क्रिया अधिकतर नाममात्र अम्लीय होती है। इसका आपेक्षिक घनत्व १०१५ से १०२५ तक साधारण अवस्था में होता है।

एक आदमी जो साधारण भोजन में करीब १०० ग्राम प्रोटीन २४ घण्टे के अन्दर लेता है उसके मूत्र में निम्नलिखित तत्व होते हैं। लेकिन इनमें अक्सर परिवर्तन हुआ करता है।

	ग्राम		मात्रा
पूरे मूत्र की मात्रा सी. सी.	१५००·००	सल्फ्यूरिक एसिड	२·०
पानी सी. सी.	१४४०·००	अमोनिया	०·६५
ठोस	७०·००	क्रियेटिनीन	०·९
यूरिया	३५·००	क्लोरीन	११·०
यूरिक एसिड	० ७५	पोटैशियम	२·५
ट्यूरिक एसिड	०·७	सोडियम	५·५
सोडियम क्लोराइड	१६·५	कैल्शियम	०·२६
फासफोरिक एसिड	३·५	मैग्नीशियम	०·२१

नवाँ अध्याय

प्रजनन तन्त्र

(Reproductive System Or Generative System)

इसके अन्तर्गत वे अंग सम्मिलित हैं जो सन्तान-उत्पादन में भाग लेते हैं। यह अंग स्त्रियों तथा पुरुषों में भिन्न-भिन्न हैं। इसका वर्णन अलग-अलग किया गया है। इसके कुछ अंग श्रोणि गुहा (Pelvic Cavity) के अन्दर होते हैं। इन्हें अन्तर्जननांग (Internal Genital Organs) कहते हैं और जो अंग श्रोणि गुहा (Pelvic Cavity) के बाहर स्थित हैं उन्हें बाह्य जननांग (External Genital Organs) कहते हैं। प्रजनन के कुछ अंग तो आरम्भ से ही विकसित होते हैं उन्हें प्राथमिक लिंग चिह्न (Primary Sexual Characters) कहते । जैसे—पुरुषों में पुरस्थ ग्रन्थि (Prostate), स्त्रियों में गर्भाशय। इसके अतिरिक्त कुछ अंग ऐसे भी हैं जो बाद को तरुण अवस्था में विकसित होते हैं। इन्हें द्वैतेयिक लिंग-चिह्न (Secondary Sexual Characters) कहते हैं। जैसे—पुरुषों में मूँछ-दाढ़ी तथा स्त्रियों में स्तन और लज्जा।

पैदा होने पर प्रजनन-संस्थान के अंग (Rudimentary Form) अविकसित रूप में रहते हैं। लेकिन जैसे-जैसे अवस्था बढ़ती जाती है उसी के साथ-साथ इन अंगों में विकास होता तथा तरुण अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते यह अंग पूर्ण रूप से विकसित हो जाते हैं। यह अवस्था औरतों में १४ वर्ष की उम्र से तथा मर्दों में १८ वर्ष की उम्र से आरम्भ होती है। प्रजनन संस्थान के अंग एक नियमित समय (लगभग ३० वर्ष तक) पूर्ण रूप से काम करते हैं और फिर जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है वैसे-वैसे इन अंगों की शक्ति क्षीण होने

लगती है तथा अंग भी दुर्बल होने लगते हैं। स्त्रियों में बच्चा पैदा करने की शक्ति माहवरी शुरू होने से लेकर माहवारी बन्द होने तक रहती है। बुढ़ापे में माहवारी बन्द होने को Menopause कहते हैं।

पुरुष के प्रजनन अंग (Male Sexual Organs)—पुरुष के प्रजनन तन्त्र में निम्नलिखित अंग होते हैं :—

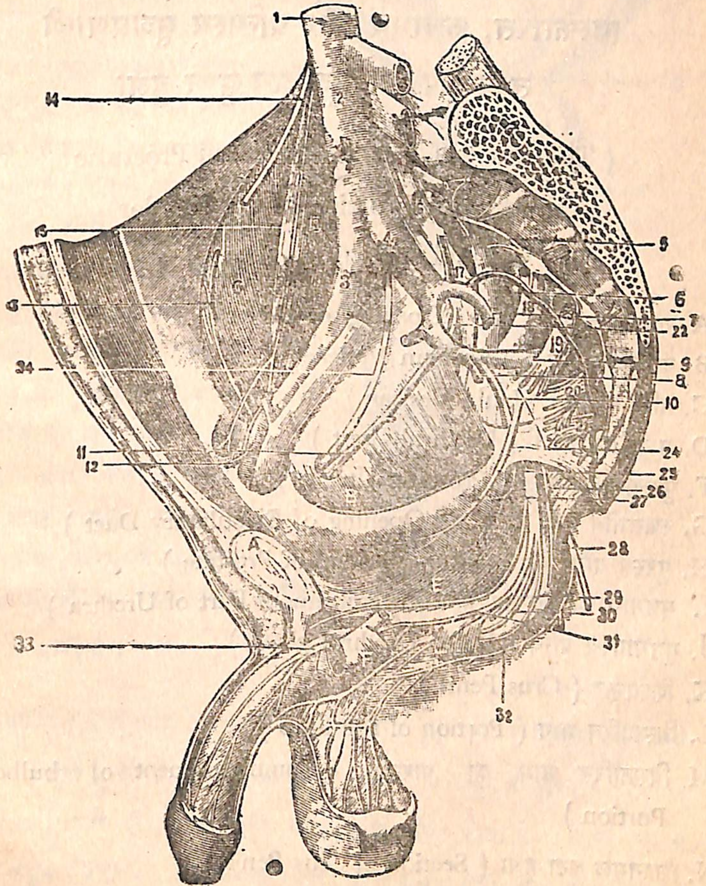
(१) Scrotum
(२) Testicle
(३) Spermatic Cord
(४) Vasdeference
(५) Prostate
(६) Penis

गर्भाशय (Uterus)

पुरुष श्रोणि-गुहा का दक्षिण आभ्यन्तरित भाग, अधिश्रोणिका के अवयव

A. जघन संधानक (Symphysis pubis)
B. श्रोणि-गवाक्षिणी बहिःस्था (Obturator Externus)
C. श्रोणिफलकिका (Iliacus)
D. कटिलम्बिका (Psoas)
E. गुद उन्नमनिका (Levator Ani.)
F. मूत्रमार्ग विस्फारित भाग (Bulb of Urethra)
I. औदरीय महाधमनी (Abdominal Aorta)

2. श्रोणि साधारणी धमनी (Common Iliac Artery)
3. श्रोणि बाह्या धमनी (External Iliac artery)
4. अधो जठर धमनी (Hypogastric Artery)



चित्र सं० ७०

5. श्रोणिफलक कटि धमनी (Ilio-lumbar Artery)

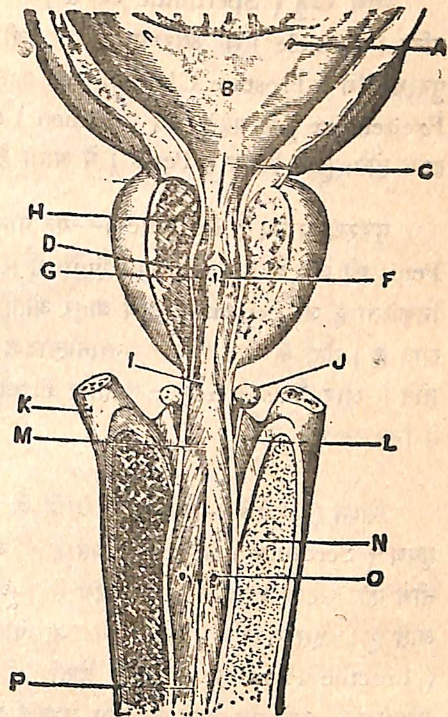
6. त्रिकपार्श्विका धमनी (Lateral Sacral Artery)

विस्फारित, कलामय और ग्रन्थिस्थ मूत्रप्रणाली तथा ऊपर से मूत्राशय खुला हुआ

(The Bulbeus, Membranous and Prostatic urethra and Portion of the bladder laid open from above)

A. गवोनी खुलने के छिद्र (Opening of Ureter)
B. वास्ति-त्रिकोण (Trigonum Vesicae)
C. वस्ति उत्सेद (Uvula Vesicae)
D. मूत्रप्रेसक धारा (Urethral Crest)
F. पुरस्थ-ग्रन्थि खात (Prostatic Utricle)
G. स्खलनीय नली का छिद्र (Opening of Ejaculatory Duct)
H. पुरस्थ ग्रन्थि का कटा भाग (Section of Prostate)
I. मूत्रमार्ग का कलामय भाग (Membranous Part of Urethra)
J. मूत्रमार्गस्थ ग्रन्थि (Bulbo Urethral gland)
K. शिश्नमूल (Crus Penis)
L. विस्फारित भाग (Portion of the bulb)
M. विस्फारित भाग का प्रारम्भ (Commencement of bulbous Portion)
N. शिश्नमूल कटा हुआ (Section of Crus Penis)
O. मूत्रमार्ग का खुलने का छिद्र (Opening of Duct of Bulbo Urethral Gland)

P. मूत्रमार्ग का शैश्निक भाग (Cavernous Portion of Urethra)



चित्र सं० ७१

वृषण (Scrotum) मूलाधार यह एक मांस की थैली है जो जाँघ के बीच (Perenium) से लटकी है। इसके अन्दर जो वृषण ग्रन्थि (Testicles) होते हैं। जब बच्चा गर्भ के अन्दर रहता है उस समय वह थैली अलग नहीं रहती है। बच्चे के पैदा होने के कुछ काल पूर्व यह थैली नीचे की ओर लटक जाती है तथा वृषण ग्रन्थि (Testicles) ऊपर से इसके अन्दर आ जाती है। फाइलेरिया में यह मांस की थैली की दीवार मोटी होकर काफी बढ़ जाती है।

अंडग्रंथि (Testicle)—यह दो पुरुष यौन ग्रन्थियाँ (Male Sexual Glands) होते हैं जो Scrotum के अन्दर स्थित हैं। इन्हीं में शुक्राणु (Spermatozoa) बनते हैं। यह दोहरे आवरण से ढंका रहता है। जिन्हें क्रम से अंडधर कंचुक (Tunica Vaginalis) और श्वेत कंचुक (Tunica Albuginia) कहते हैं। इसी में एक तरल पदार्थ रहता है जिसकी मात्रा बढ़ जाने पर जल वृषण (Hydrocele) का रोग हो जाता है।

वृषण रज्जु (Spermatic Cord) :—यह एक लम्बी नली है जो अण्ड-ग्रन्थि (Testicle) से आरम्भ होती है और श्रोणि (Pelvis) से होती हुई पुरस्थ ग्रंथि (Prostate Gland) तक आती है। यौन उत्तेजना (Sexual Excitement) के पहले वीर्य (Semen) शुक्र थैली (Seminal Vesicle) द्वारा होता हुआ शिश्न (Penis) में आता है।

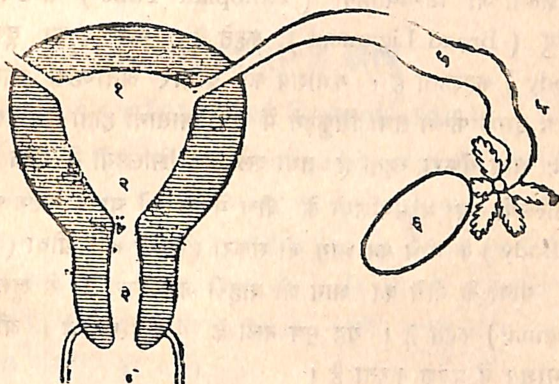
पुरस्थ ग्रन्थि (Prostate)—यह पान के आकार की एक ग्रन्थि है जो Penis की जड़ के पास Pericardium में स्थित है। इसके अन्दर से एक स्राव निकलता है जो Semen के साथ बाहर आता है। वीर्य का तरल भाग इसी का स्राव है। वीर्य के कीड़े जिनमें सन्तानोत्पादक शक्ति होती है। Testes में पैदा होते हैं और Vasdeferonce के द्वारा Prostate के स्राव में मिलकर तब शरीर से निकलते हैं।

शिश्न (Penis)—यह एक बेलन के आकार का लम्बा अंग है। जो वृषण (Scrotum) के सामने स्थित है। यह भगास्थि (Pubic Bone) से नीचे को लटका रहता है। इस अंग से मूत्र तथा वीर्य आवश्यकतानुसार बाहर आते हैं। इस नली में दोनों तरफ मांसपेशियाँ होती हैं और यह उच्छ्रायी (Erectile Tissue) से बना होता है। काम उत्तेजना के समय इसकी मांसपेशियाँ कड़ी पड़ जाती हैं तथा लम्बाई भी बढ़ जाती है। वीर्यपात के बाद फिर यह ढीला पड़ जाता है। इसका अन्तिम भाग शिश्नमुण्ड (Glands Penis) कहलाता है। जिसके ऊपर का चर्म चोंगे की तरह होता है यानी ऊपर पतला और नीचे चौड़ा होता है। यह भी चमड़े से ढँका रहता है। इस चमड़े को जिसे हम ऊपर भी उठा सकते हैं मुण्डच्छद (Prepuce) कहते हैं यही मुसलमानी में काट दिया जाता है।

स्त्री-जननाङ्ग

(Female Genital Organs)

इसके दो भाग होते हैं। पहला वह जननेन्द्रिय जो श्रोणिगुहा (Pelvic Cavity) के अन्दर होती है :—जैसे गर्भाशय, (Uterus), बीजवाहिनी (Fallopian Tube), बीजग्रन्थि (Ovary) तथा दूसरी वह जो बाहर रहती है; जैसे मूत्रमार्ग (Urethra) और योनि (Vagina)।



चित्र सं० ७२ स्त्री प्रजनन अंग

१—गर्भाशय शरीर

२—गर्भाशय ग्रीवा

३—गर्भाशय मुख

४—योनि

५—बोजवाहिनी

६—बीज कोष

गर्भाशय—(Uterus)—यह अनैच्छिक मांसपेशियों (Involuntary muscle) का बना होता है। जो मूत्राशय (Urinary Bladder) और मलाशय (Rectum) के बीच में होता है।

गर्भाशय के तीन भाग होते हैं। ऊपरी भाग जो बुघ्न (Fundus) कहलाता है तथा सामने की ओर मूत्राशय (Urinary Bladder) से ढँका रहता है। इसके दायें तथा बायें दोनों तरफ एक नली खुलती है जिसे डिम्बवाहिनी (Fallopian Tube) कहते हैं। इस Tube पर परिउदर्य्या (Peritoneum) की एक तह नीचे और पीछे से चढ़ कर लगी रहती है। और दूसरी तरफ आगे सामने की ओर लटक जाती है। यह परिउदर्य्या (Peritoneum) की दोहरी तहों वाली झिल्ली जो डिम्बवाहिनी (Fallopian Tube) से टँगी रहती है इसे प्रत्युस्नायु (Broad Ligament) कहते हैं। गर्भाशय का दूसरा भाग शरीर (Body) कहलाता है। गर्भाशय की दीवार अनैच्छिक मांसपेशी की बनी है। अतः इसके फैलने तथा सिकुड़ने में बड़ी आसानी होती है। साधारणतः इसका भीतरी भाग सँकरा रहता है तथा श्लैष्मिक झिल्लियों से ढँका रहता है। श्लैष्मिक झिल्लियों तथा मांसपेशियों के बीच में शिरायें चारों तरफ फैली रहती हैं। पिण्ड (Body) के नीचे का भाग जो सँकरा होता है और ग्रीवा (Cervix) कहलाता है। ग्रीवा के नीचे का भाग जो बाहरी जननेन्द्रिय में से खुलती है उसे ग्रीवा (Vagina) कहते हैं। यह मूत्र नली के पीछे स्थित है। और इसी के द्वारा वीर्य गर्भाशय में प्रवेश करता है।

डिम्बग्रन्थि (Ovary) :—जिस प्रकार मर्दों में दो अण्ड ग्रन्थियाँ (Testicle) होती हैं, उसी प्रकार औरतों में दो डिम्बग्रन्थि होती हैं। यह श्रोणि (Pelvic Cavity) के नीचे की ओर बाहरी तरफ यानी इसका सम्बन्ध बीजवाहिनी (Fallopian Tube) के दूसरे छोटे भाग से है। यह भी प्रत्युस्नायु (Broad Ligament) से घिरी रहती है।

वृषणग्रन्थि (Testicle) के समान डिम्बग्रन्थि (Ovary) बचपन में बिल्कुल कार्य-हीन रहता है। बाद में धीरे-धीरे अण्डग्रन्थि (Testicle) और डिम्बग्रन्थि (Ovary) में विकास होना आरम्भ होता है। इसके कोषाओं (Cells) में विभाजन होता है तथा इसके कुछ कोषाएँ कमजोर होकर मर जाते हैं तथा जो मजबूत होते हैं वह धीरे-धीरे बढ़ना शुरू करते हैं और साथ-

ही-साथ पकने भी लगते हैं। जो पकना शुरू करते हैं वे डिम्ब के बीच से ऊपरी सतह पर आने लगते हैं। औरतों में करीब १४ वर्ष की उम्र तक कुछ कोषाएँ (Cells) पक कर डिम्ब के नीचे के हिस्से से अपने भाग में आ जाते हैं। यह वह समय होता है जब औरतें तरुण अवस्था में प्रवेश करती हैं, साथ-ही-साथ इसका स्थान उभड़ कर गोल हो जाता है। सेक्स का ज्ञान प्रकट हो जाता है।

आन्तरिक स्राव

(Internal Secretions)

वृषण-ग्रन्थि (Testies) :—सन्तान की उत्पत्ति के अतिरिक्त इसका एक मुख्य कार्य यह भी है कि इसके अन्दर से एक प्रकार का स्राव निकलता है जो सीधे रक्त में मिल जाता है। यह स्राव पुरुषों के अन्दर एक विशेष शक्ति तथा तेज प्रदान करता है। इसका प्रमाण यह है कि स्राव के अभाव के कारण मनुष्य पुरुषत्वहीन हो जाता है। तात्पर्य यह कि उसके अन्दर निम्नलिखित चीजों में कुछ-न-कुछ परिवर्तन हो जाता है।

(१) साधारण मनुष्य कम उम्र में बुड्ढा मालूम होता है। बाल वगैरह बहुत जल्द पक जाते हैं और उसके अन्दर थकावट व कमजोरी बहुत जल्दी मालूम होने लगती है।

(२) अगर इस स्राव का अभाव १५ या १६ वर्ष की उम्र में हो जाय तो उस उम्र में वह बजाय जवान होने के लड़का ही बना रहता है।

(३) मनुष्य की जननेन्द्रियों का विकास पूर्णरूप से नहीं हो पाता।

(४) कभी-कभी यह वृषण कोष (Scrotum) में उतरते ही नहीं तथा उदरगुहा में ही रह जाते हैं।

जानवरों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगते हैं। यदि एक मुरगे को बधिया कर दिया जावे तो उसके शरीर पर के रोयें झड़ कर गिरने लगते हैं

और उसके सिर पर की कलँगी गिर जाती है और बाद में यह मुर्गे कुछ मोटे हो जाते हैं। इसी प्रकार का परिवर्तन बधिया किये गये बकरों में भी देखा गया है। इन बकरों के सींग में काफी परिवर्तन होने लगता है। सीगें कमजोर हो जाती हैं और यह बकरे के चर्बी से काफी मोटे हो जाते हैं। इसी मोटे मुर्गे का गोस्त बहुत चर्बीदार होता है।

यदि इन बधिया किये हुए जानवरों के अन्दर मेल टेस्टीकल (Male-Testicle) काट कर कलम (Graft) कर दिया जाये तो इनके शरीर में पुरानी जागृति आ जाती हैं। उनके रोयें फिर निकल आते हैं। मुर्गे की कलँगी फिर निकल आती है तथा वे फिर असली हालत में आ जाते हैं।

पुरुष में इस पर क्रिया करने पर उनके अन्दर हिंजड़ापन आ जाता है। उनके पैर की हड्डियाँ बहुत ज्यादा बड़ी हो जाती हैं।

डिम्ब ग्रन्थि (Ovary) :—जिस प्रकार के वृषण से एक अन्दरूनी स्राव निकलता है जो सीधे रक्त से मिल जाता है ठीक उसी प्रकार स्त्रियों के डिम्ब के अन्दर से भी एक स्राव निकलता है जिसे ओवेरियन हारमोन (Ovarian Hormone) कहते हैं। इस स्राव का स्त्रियों के स्वास्थ्य पर बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। उनके अन्दर सुन्दरता के तेज तथा एक प्रकार की कान्ति इसी द्वारा उत्पन्न होती है। इसके अभाव से स्त्री के शरीर के अन्दर बहुत से परिवर्तन होने लगते हैं। यदि किसी रोग के कारण डिम्ब काट कर निकाल दिया जावे तो इसका परिणाम यह होता है कि :—

(१) उनका मासिक स्राव बन्द हो जाता है।
(२) उनके स्तन छोटे होने तथा सूखने लगते हैं।
(३) उनकी पाचन क्रिया में गड़बड़ी उत्पन्न होने लगती है।

जिन स्त्रियों को मासिक स्राव के समय रक्त बहुत ज्यादा जाता है उनको कभी-कभी मेल टेस्टीकुलर हारमोन (Male Testicular Hormone) के इन्जेक्शन से बहुत लाभ होता है। रक्तस्राव ठीक हो जाता है। यदि

कोई चिकित्सक इसका प्रयोग अधिक समय तक करे तो इसका परिणाम यह होता है कि :—

(१) औरत को मूँछ निकलनी शुरू हो जाती है।
(२) उनकी आवाज पुरुषों की तरह हो जाती है।
(३) उनका स्तन छोटा पड़ने लगता है।
(४) उनके अन्दर से लज्जा हट जाती है।

———

मासिक स्राव
(Menstruation)

मासिक स्राव का आरम्भ होना इस बात को साबित करता है कि औरत तरुण अवस्था को पहुँच गयी है तथा सन्तान उत्पत्ति के योग्य हो गयी है। यह अवस्था १४ वर्ष की आयु से लेकर ४० या ४५ वर्ष की आयु तक रहती है और फिर यह मासिक-स्राव धीरे-धीरे बन्द होने लगता है। गर्म देशों की औरतों में यह जल्द शुरू होता है तथा ठण्डे देशों की औरतों में यह देर से आरम्भ होता है और देर से समाप्त होता है।

मासिक-स्राव तथा प्रजनन क्रिया-विज्ञान
(*Physiology of Menstruation and Reproduction*)

जिस समय अण्डा पक जाता है और पक कर ऊपर की तरफ आता है उस समय ग्रैफियन पुटी (Graffian Follicle) फट जाता है और उसमें से एक डिम्ब (Ovum) निकलता है। (Graffian Tube) से गुजरता हुआ Uterus में आता है, यानी मासिक रजःस्राव (Menstruation) के लगभग छठवें दिन रजकीट गर्भाशय के अन्दर खाली जगह में आकर गर्भाशय की भित्ति अन्तर्कला (Endometrium) पर लगी रहती है और यहां वह पुरुष के शुक्रकीटों की प्रतीक्षा करती है।

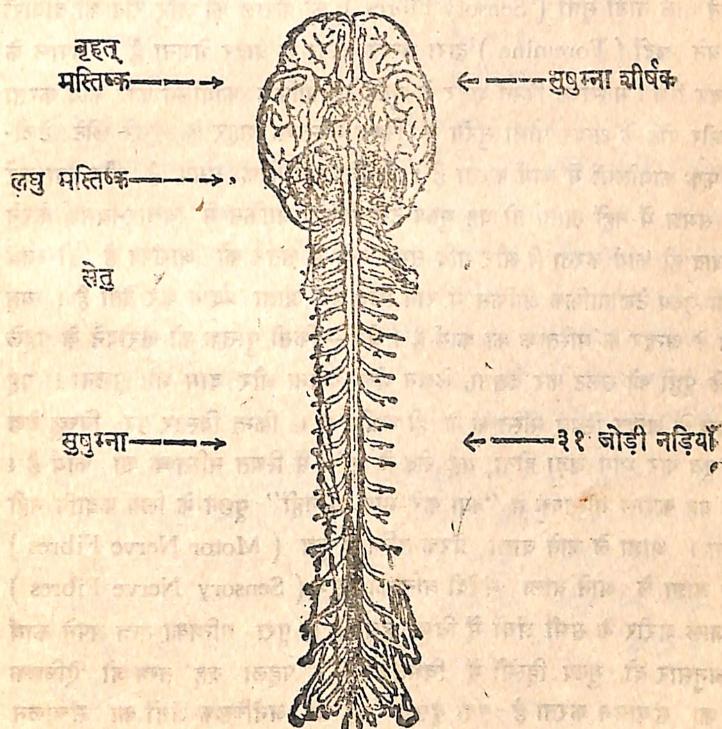
(१) यदि पुरुष के शुक्रकीट योनि द्वारा रेंग कर गर्भाशय के मुख से होते हुए गर्भाशय के अन्दर खाली जगह में पहुँच जाते हैं तो उनमें से किसी एक भाग्यशाली शुक्राणु से डिम्ब का मिलाप हो जाता है और शुक्राणु अपनी पूँछ बाहर त्याग कौडिम्ब में प्रविष्ट कर जाता है इस क्रिया को अवसेचन (Fertilization) कहते हैं। अब शुक्राणु से युक्त डिम्ब गर्भाशय की भीतरी झिल्ली को किसी एक स्थान पर खोदकर जमकर बैठ जाता है और वहीं पर बच्चे का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है।

(१) जब तक डिम्ब शुक्राणु की प्रतीक्षा में रहता है तब तक गर्भाशय की भीतरी झिल्ली उसके लिए बच्चे के निर्माण के हेतु अपनी तैयारी अलग प्रारम्भ करती है। वह मोटी होने लगती है और काफी रक्त नलियाँ नई बनकर उसमें दौड़ने लगती हैं। अपनी पूरी तैयारी के बाद गर्भाशय की भीतरी झिल्ली रजकीट को शुक्राणु से भेंट की प्रतीक्षा निश्चित काल तक देखती है। यदि भेंट हो गई तो झिल्ली डिम्ब और शुक्राणु को अन्दर स्थित कर लेती है यदि नहीं हुई तो गर्भाशय की भीतरी झिल्ली डिम्ब के लिए निराश होकर भंग हो जाती है और मासिक स्राव के रूप में गर्भाशय से बाहर झड़ने लगती है। यह स्राव तीन दिन तक रहता है और इसके बाद समाप्त हो जाता है। इसके साथ-साथ कमर का दर्द भी कम हो जाता है और औरतों की तबीयत केवल ठीक ही नहीं हो जाती बल्कि उनमें एक शक्ति आ जाती है। इसके साथ-ही-साथ ग्रीवा (Cervix) का छेद चौड़ा हो जाता है और गर्भाशय की दीवारें कुछ खुरदरी रहती हैं। इसका एक महत्वपूर्ण रहस्य यह है कि जिस समय पुरुष से सहवास होता है वीर्य गर्भाशय ग्रीवा से होता हुआ गर्भाशय में आसानी से पहुँच जाता है और तब गर्भ होने की सम्भावना रहती है।

दसवाँ अध्याय

तन्त्रिका (तन्त्र)

(Nervous System)



मस्तिष्क सुषुम्ना नाड़ी-तन्त्र

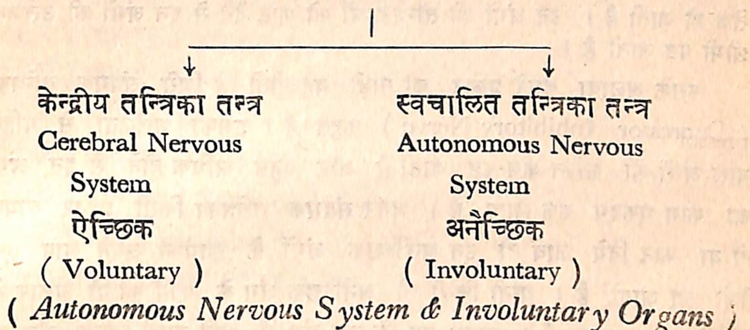
चित्र सं० ७३

इसके अन्तर्गत वे अंग सम्मिलित हैं जो अनुभव, विचार तथा गति संचालन में भाग लेते हैं। यह शरीर का प्रधान अंग माना गया है। इसी की वृद्धि के कारण मनुष्य सभी जीव-जन्तुओं में श्रेष्ठ माना गया है। यह मस्तिष्क सुषुम्ना (Brain Spinal Cord) तथा तन्त्रिकाओं (Nerves) से मिल कर बना है। मस्तिष्क, कपाल (Cranium) और रीढ़ के बीच की सुरंग में स्थिर रहता है तथा आज्ञा देने के नाड़ी सूत्रों (Motor Fibres) बाहर से अनुभव लाने वाले नाड़ी सूत्रों (Sensory Fibres) को कपाल की और रीढ़ की दीवारों में बने छद्रों (Foremina) द्वारा अन्दर लाना या बाहर भेजना है। कपाल के अन्दर स्थित मस्तिष्क किसी शहर के मुख्य टेलीग्राफिक कार्यालय का कार्य करता है और रीढ़ के अन्दर पोली सुरंग में स्थित मस्तिष्क शहर के दूसरे छोटे टेली-ग्राफिक कार्यालयों में कार्य करता है। अर्थात् यदि काफी समय है और क्या करें यह समझ में नहीं आता तो वह मुख्य टेलीग्राफिक आफिस में विचार-विमर्श करने के बाद ही कार्य करता है और यदि समय नहीं है खतरे की आशंका है तो स्वयं बिना मुख्य टेलीग्राफिक आफिस में राय लिये ही आज्ञा प्रदान कर देता है। यह रीढ़ के अन्दर के मस्तिष्क का कार्य है। जैसे—किसी पुस्तक को खरीदने के पहले उसके पृष्ठों को उलट कर देखना, लेखन शैली देखना और दाम भी पूछना। यह कपाल के अन्दर स्थित मस्तिष्क के ही अधीन है। किन्तु बिस्तर पर बिच्छू देख कर कूद कर भाग खड़ा होना, यह रीढ़ के सुरंग में स्थित मस्तिष्क का कार्य है। वहाँ यह कपाल मस्तिष्क से "क्या करे भागे या नहीं" पूछने के लिये कदापि नहीं रुकता। आज्ञा ले जाने वाला प्रेरक तन्त्रिका सूत्र (Motor Nerve Fibres) और आज्ञा ले आने वाला संवेदी तन्त्रिका सूत्र (Sensory Nerve Fibres) का जाल शरीर के सभी अंगों में बिछा हुआ है। पूरा तन्त्रिका तन्त्र अपने कार्य के अनुसार दो मुख्य हिस्सों में विभाजित है। पहला वह तन्त्र जो ऐच्छिक अंगों का संचालन करता है तथा दूसरा वह जो अनैच्छिक अंगों का संचालन करता है।

———

तन्त्रिका तन्त्र

Nervous System



(Autonomous Nervous System & Involuntary Organs)

शरीर के वह अंग जो अनैच्छिक मांसपेशी (Involuntary Muscle Fibres) के बने हैं उनका संचालन स्वतन्त्रतापूर्वक होता है जिसका हम लोगों को ज्ञान तक भी नहीं होता। इस प्रकार के अंग अनैच्छिक अंग (Involuntary Organ) कहलाते हैं; जैसे हृदय, आँतें, गर्भाशय। स्वचालित तन्त्रिका तन्त्र (Autonomous Nervous System) इन्हीं अंगों का संचालन करते हैं तथा इनके ऊपर शासन करते हैं। उपमा के लिए एक बाइसिकिल को लीजिये।

बाइसिकिल को जब तेज चलाना होता है तो हम लोग पैडिल को जोर से चलाते हैं और जब बाइसिकिल को रोकना होता है तब ब्रेक लगाते हैं और बाइसिकिल रुक जाती है। दूसरी बात यह है कि अगर पैडिल खराब हो जावे तो साइकिल के चलने में रुकावट होगी साथ-साथ अगर ब्रेक ढीला रहे तो साइकिल का रुकना कठिन हो जावेगा और किसी से टक्कर होने का डर रहेगा।

ठीक इसी प्रकार मनुष्य के शरीर में अनैच्छिक अंगों (Involuntary Organs) का संचालन होता है। अनैच्छिक अंग को संचालित करने के लिए मनुष्य के अन्दर दो प्रकार की तन्त्रिकाएँ (Nerves) होती हैं। एक वह जो

इन अंगों की क्रिया को तेज करती है उसे त्वरक तन्त्रिका (Accelerator Nerve) कहते हैं। इस तन्त्रिका की उत्तेजना के कारण इन अंगों की क्रिया तेज हो जाती है। उन अंगों की तन्त्रिकाओं को काट देने से इन अंगों की उत्तेजना धीमी पड़ जाती है।

इसके अलावा दूसरे प्रकार की नाड़ी वह होती है जिसे संदमक तन्त्रिका (Depressor Inhibitory Nerve) कहते हैं। इसकी उत्तेजना से पहिले वाले अंगों की शक्ति कम पड़ जाती है और बहुत अधिक होने से इन अंगों का काम एकदम रुक जाता है। अगर संदमक तन्त्रिका किसी प्रकार घायल हो या काट दिये जावें तो इन अनैच्छिक अंगों के कार्य में अपने आप एक तेजी आ जाती है। यानी किसी भी अनैच्छिक अंग के कार्य को दो प्रकार से तेज किया जा सकता है। पहला यह कि उस अंग में जाने वाली त्वरक तन्त्रिका (Accelerator Nerve) को उत्तेजित किया जावे और दूसरा यह कि संदमक तन्त्रिका (Depressor Nerve) को काट दिया जावे। उसी प्रकार अनैच्छिक अंग के कार्य को दो प्रकार से धीमा किया जा सकता है। पहला यह कि सदमक तन्त्रिका (Inhibitor Nerve) को उत्तेजित किया जावे और दूसरा यह कि त्वरक तन्त्रिका (Accelerator Nerve) को काट दिया जावे।

इसका प्रयोग शल्य कर्म (Surgical Operation) में किया जाता है। यह सबको भली भाँति मालूम है कि बड़े शल्यकर्म (Major Operation) में क्लोरोफार्म (Chloroform) का प्रयोग इसलिए किया जाता है कि मरीज को आपरेशन के समय बिल्कुल तकलीफ न हो। लेकिन क्लोरोफार्म के अधिक उपयोग से वेगस तन्त्रिका (Vagus Nerve) की उत्तेजना बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप हृदय की गति टेबुल पर समाप्त हो जाती है और रोगी का देहान्त हो जाता है। इस चीज को बचाने के लिए अब क्लोरोफार्म देने के पहिले एट्रोपीन (Atropine) का इन्जेक्शन दिया जाता है। (Atropine) एट्रोपीन (Vagus Nerve Ending) वेगस तन्त्रिका का अन्तर्भाग का घात (Paralyse) कर देता है और हृदय पर उत्ते-

जना को धारा पहुँचाने में रुकावट पैदा कर देता है। अनैच्छिक अंगों की सूची निम्नलिखित है :—

(1) लाला ग्रन्थि (Salivary Glands)
(2) स्वरयन्त्र (Larynx)
(3) फुफ्फुस या फेफड़े (Lungs)
(4) हृदय (Heart)
(5) धमनियाँ (Arteries)
(6) आमाशय (Stomach)
(7) आँतें (Intestines)
(8) वृक्क या गुर्दे (Kidney)
(9) गर्भाशय (Uterus)
(10) अग्न्याशय (Pancreas)
(11) यकृत (Liver)
(12) त्वचा (Skin)

———

त्वरक तन्त्रिकाएँ
(**Accelerator Nerves**)
अनुकम्पी तन्त्रिकाएँ
(Sympathetic Nerves)

ये वह तन्त्रिकाएँ हैं जो अनैच्छिक अंग की क्रिया को तेज करती हैं। यह सुषुम्ना काण्ड (Spinal Cord) से आरम्भ होती हैं तथा संख्या में ३२ होती हैं और मेरु-दण्ड (Vertebral Column) से निकल कर गण्डिक (Ganglia) पर समाप्त होती हैं। इन्हें गण्डिका पूर्व सूत्र (Preganglionlic Fibres) कहते हैं। गण्डिका से सिर्फ नर्वं आरम्भ होती है और वहाँ हरएक अंगों को जाती है

और उन्हें साधारणतया तेज करती है। उसे अनुकम्पी तन्त्रिकाएँ (Sympathetic Nerve) कहते हैं।

———

संदमक तन्त्रिकाएँ

परानुकम्पी तन्त्रिकाएँ

(Para sympathetic Nerves)

यह दसवीं (Cerebral Nerve) (Vagus) है जो Medulla Oblongata के चौथी Ventricle से आरम्भ होती है जिससे एक-एक शाखा एक-एक अनैच्छिक अंग को जाती है। इसकी उत्तेजना से Involuntary Organ का काम धीमा पड़ जाता है।

— ——

केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र

(Central Nervous System)

इसके अन्तर्गत दो अंग सम्मिलित हैं।

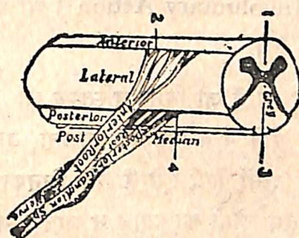
(१) सुषुम्ना काण्ड (Spinal Cord)

(२) मस्तिष्क (Brain)

सुषुम्नाकाण्ड (Spinal Cord) :—सुषुम्नाकाण्ड स्नायुमण्डल का वह भाग है जो कशेरुक नली के अन्दर स्थित है। (Medulla Oblongata) इसका शीर्ष भाग सुषुम्नाशीर्ष कहलाता है। यह तीन आवरणों से ढँका रहता है। सबसे बाहरी आवरण दृढ़तानिका (Duramater) और सबसे अन्दर का आवरण जो सुषुम्ना अथवा मस्तिष्क से लगा रहता है उसे मृदुतालिका (Piamater) कहते हैं। इसके बीच केशिकाओं का एक आवरण होता है जिसे जाल तानिका (Arachenoid) कहते हैं। इसके

बीचो-बीच में ऊपर से लेकर नीचे तक एक छेद होता है जिसे केन्द्रीय नली (Central Canal) कहते हैं। इसके छेद के अन्दर एक तरल पदार्थ होता है।

सुषुम्ना दो हिस्सों में बँटी है। Spinal Cord का वह भाग जो (Central Canal) के चारो ओर घिरा रहता है वह भूरे रंग का होता है और वह केन्द्र नली (Nerve Cells) और Cell States का बना होता है। इसे धूसर-भाग (Grey matter) कहते हैं। सामने की तरफ इसके दो हिस्से सींग के समान निकले रहते हैं जिसे धूसर भाग का अग्रश्‍ृङ्ग (Anterior Horn of the Grey matter) कहते हैं। पीछे की दो तरफ का भाग चौड़ा होता है जिसे धूसर भाग का पश्चश्रृङ्ग (Posterior Horn of the Grey matter) कहते हैं।



चित्र सं० ७४—सुषुम्नाकाण्ड का एक ओर का दृश्य

१ - अग्निमान्तरा सीता (Anteromedan Fissure)

२ - अग्रमूल की संलग्नता (Attachment of anterior root)

३—पश्चिमध्यका विदर (Posteromedian Fissure)

४—पश्चमपार्श्वगा विदर (Posterolateral Fissure)

धूसर भाग (Grey matter) के बाहर सुषुम्ना का वह भाग होता है जो तन्त्रिका सूत्रों (Nerve Fibre) का बना होता है तथा भीतर का भाग सफेद रंग का होता है। इसलिए इसे श्वेत भाग (White matter) कहते हैं।

———

सुषुम्ना के कार्य
(Function of Spinal Cord)

सुषुम्ना के दो मुख्य कार्य होते हैं—

(१) प्रतिवर्त क्रिया (Reflex Action)

(२) सहकारी क्रिया (Co-ordination)

(१) प्रतिवर्त क्रिया—इससे मतलब यह है कि जब सुषुम्ना खुद काम कर लेती है और उसमें किसी से भी सहायता नहीं लेनी पड़ती है तो इसे प्रतिवर्त क्रिया कहते हैं। जैसे आँख के पास अँगुली होने पर पलक का बन्द हो जाना। यानी कि शरीर का काम तो होता रहे और नुकसान न हो। बल्कि हर प्रकार की अनैच्छिक क्रियायें (Involuntary Action) भी प्रतिवर्त क्रियाओं (Reflex Action) में सम्मिलित हैं।

इसमें कुछ कार्य ऐसे भी हैं जो बिना मस्तिष्क की जानकारी हुए अपने-आप पूरा हुआ करते हैं। जैसे सोने में करवट का बदलना, बातचीत करते हुए साइकिल का चलाना इत्यादि। यह दोनों कार्य ऐसे हैं कि जिनका ज्ञान मस्तिष्क को नहीं रहता या जिसकी तरफ हम लोगों का ध्यान न जावे। साइकिल चलाते समय हम-लोग बात चीत में इतने व्यस्त रहते हैं कि हम लोगों का ध्यान पैर की तरफ नहीं जाता। इसका प्रमाण यह है कि एक जीवित मेढक को लेकर यदि सुषुम्ना शीर्ष (Medulla Obongata) काट दिया जावे। ऐसे अवस्था में मस्तिष्क का सम्बन्ध सुषुम्ना नाड़ी से बिलकुल कट जावेगा। इस हालत में यदि मेढक के पैर के पञ्जे पर एक बूँद तेजाब गिराया जावे तो दूसरे पैर का पञ्जा अपने आप ही उस पैर को खरोंचने को चला आवेगा।

प्रतिवर्त क्रिया (Reflex Action) निम्नलिखित विधि से होता है :— यदि किसी स्थान पर कुछ गड़ जावे या कोई चीज काट ले तो उसकी संवेदना (Sensation) संवेदन तन्त्रिकाओं (Sensory Nerves) के द्वारा सुषुम्ना (Spinal Cord) के पश्चमूल (Posterior route) पर

पहुँचतो है, वहाँ पर एक गैंगलियान (Ganglion) होती है। इसका कार्य Sensory Impulses को तेज कर देना है। अब यह संवेदना आवेगों (Sensory Impulses) को पश्च श्रृंग (Posterior Horn Cells) कोषाओं पर पहुँचाता है। यह कोषाएँ धूसर भाग के सुषुम्ना में होते हैं। यहाँ से यह आवेग (Impulses) अग्रश्रृंग कोषाओं (Anterior Horn Cells) पर पहुँचता है। अग्रश्रृंग कोषाओं का दो काम होता है—(i) रूपान्तरण (Transformation) और (ii) संचारण (Transmission)।

रूपान्तरण (Transformation) से मतलब यह है कि संवेदी आवेग (Sensory Impulses) को प्रेरक आवेग (Motor Impulses) में बदल दिया जाता है और संचारण (Transmission) से यह मतलब है कि यह प्रेरक तन्त्रिका अग्रश्रृंग (Motor Nerves, Anterior Horn) से होती हुई प्रेरक तन्त्रिका नालिका (Motor Nerves Tubes) में पहुँचती है। कभी-कभी यह आवेग सुषुम्ना के ऊपरी भाग में भी चले जाते हैं और तब वहाँ से प्रेरक तन्त्रिका (Moter Nerve) के द्वारा मांसपेशियों पर पहुँचते हैं जिसका फल यह होता है कि वह अमुक मांसपेशी सिकुड़ती है और जिसके द्वारा कार्य होता है। इस पूरे घेरे (Circuit) को परिवर्त्त चाप (Reflex Arch) कहते हैं।

(२) समन्वय (Co-ordination) सुषुम्ना का दूसरा कार्य समन्वय (Co-ordination) शासन करना है। जैसे—मस्तिष्क महत्वपूर्ण अंगों पर शासन करता है। उसी प्रकार सुषुम्ना नाड़ी भी नीचे के अंगों के कार्य पर अपना शासन करती है। यह शासन ऐच्छिक तथा अनैच्छिक अंगों पर होता है। ऐच्छिक अंगों पर इसका शासन इस प्रकार होता है जैसे कि पेशाब इत्यादि।

अनैच्छिक अंगों पर इसका शासन अनुकम्पी तन्त्रिकाओं (Sympathetic Nerves) के द्वारा होता है। सिम्पैथैटिक नर्व्स अनैच्छिक अंगों की क्रिया को तेज करती है। सुषुम्ना के निचले भाग (Lower Segment) के दुर्बल हो जाने का

परिणाम यह होता है कि पेशाब बहुत जल्दी-जल्दी लगती है और कभी-कभी देर करने पर अपने-आप हो जाती है। दूसरी अवस्था में यह भी होता है कि मूत्राशय के मूत्र से भर जाने के बाद भी पेशाब की इच्छा नहीं होती है और पेशाब अपने-आप निकलने लगती है। यह बात अक्सर छोटे बच्चों में देखी गई है, उन्हें रात में अपनेअ-आप पेशाब हो जाता है।

इसका एक दूसरा प्रमाण यह भी देखा गया है कि अगर कोई इन्सान किसी को जोर से डाँटे ताकि वह इन्सान डर जावे या कि भयानक, हिंसक जानवरों की गरज से डर जावे तो पेशाब, पाखाना अपने-आप हो जाता है। इसका मुख्य कारण सुषुम्ना के निचले भाग की दुर्बलता है।

वीर्यपात जल्द हो जाना यह भी सुषुम्ना के निचले भाग की दुर्बलता का प्रमाण है।

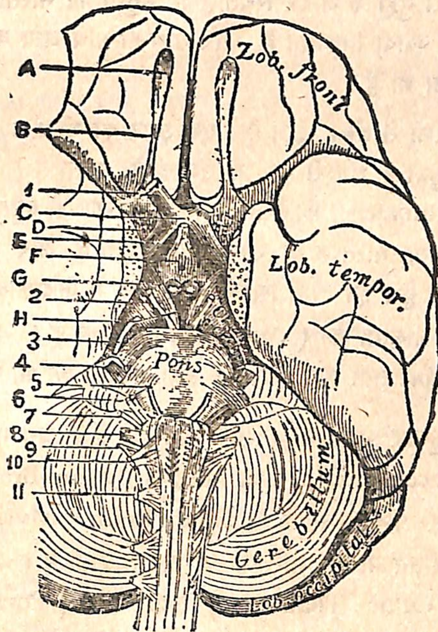
———

मस्तिष्क आधार

(Base of the brain)

A. घ्राण कन्द (Olfactory bulb)
B. घ्राणपथ (Olfactory Tract)
C. दृष्टिव्यत्यासिका (Optic Chiasma)
D. पूर्वसुषिरपत्रक (Anterior Perforated substance)
E. दृष्टिपथ (Optic Tract)
F. कीपाकार भाग (Infundibulum)
C. चूचुकाभ पिण्ड (Corpora mamillaria)
H. सछिद्र भाग (Posterior perforated substance)
1. दृष्टि तन्त्रिका (Optic Nerve)
2. नेत्र प्रेरक तन्त्रिका (Oculomotor Nerve)

3. चक्रक तन्त्रिका (Trochlear Nerve)
4. त्रिधारा तन्त्रिका (Trigeminal Nerve)
5. अपवर्तनी तन्त्रिका (Abducent Nerve)
6. आनन और श्रवण तन्त्रिका (Facial & acoustic Nerve)
7. जिह्वा ग्रसनी तन्त्रिका (Glossopharyngeal Nerve)
8. वेगस तन्त्रिका (Vagus Nerve)



चित्र सं० ७५

9. सहायक तन्त्रिका (Accessary Nerve)
10. अधोजिह्वा तन्त्रिका (Hypoglossal Nerve)
11. प्रथम ग्रैव नाड़ी (First Cervical Nerve)

मस्तिष्क
(Brain)

यह शरीर का वह प्रधान अङ्ग है जो सारे शरीर पर शासन करता है तथा मनुष्य की इच्छाओं के अनुसार समस्त शरीर को संचालित करता है। यह नर्व सेल्स का बना हुआ बहुत ही कोमल अङ्ग है जो कपाल या क्रेनियम (Cranium) की भीतरी गुहा के अन्दर स्थित है। मनुष्य का मस्तिष्क समस्त संसार में सभी प्राणियों से ज्यादा विकसित है और साथ-ही-साथ अन्य वस्तुओं की अपेक्षा आकार में बहुत बड़ा भी है।

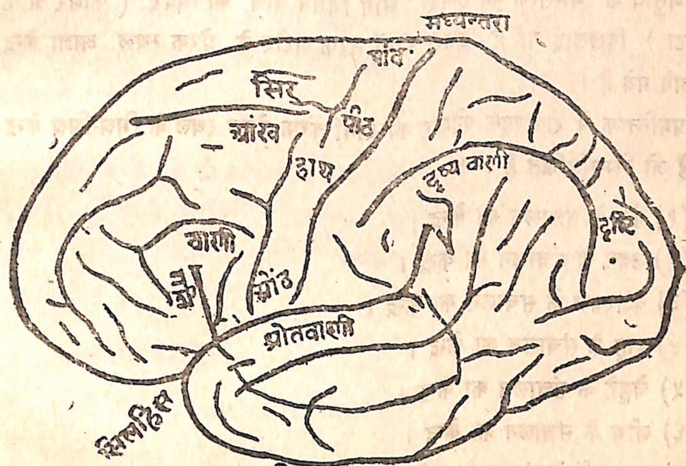
यह दो आवरणों से ढँका रहता है। एक ऊपर का मोटा व मजबूत आवरण जो कपाल की हड्डियों के भीतरी भाग के सम्पर्क में रहता है। इस आवरण को दृढ़तानिका (Duramater) कहते हैं। दूसरा आवरण जो बहुत ही पतला और पारदर्शी होता है, यह मस्तिष्क के सम्पर्क में रहता है और इसे मृदुतानिका (Piamater कहते हैं। इन दोनों झिल्लियों के बीच में कोशिकाओं का एक सघन जाल होता है जिसे जालतानिका (Arachenoid) कहते हैं। यह तीनों आवरण समस्त केन्द्रीय तान्त्रिका तन्त्र यानी मस्तिष्क तथा सुषुम्ना को भी ढँके रहते हैं।

उत्पत्ति के अनुसार मस्तिष्क के तीन भाग होते हैं। अग्र मस्तिष्क (Fore Brain या Prosencephalon), मध्य मस्तिष्क (Mind-Brain या Mesencephalon) और पश्च मस्तिष्क (Hind Brain Mylencephalon) अग्र मस्तिष्क से सेरीब्रम या पश्च मस्तिष्क की उत्पत्ति होती है। मध्य मस्तिष्क से आप्टिक थेलमस (OPtic Thalamus) तथा पान्स (Pons) की उत्पत्ति होती है और अन्तः. मस्तिष्क से सेरीबेलम या अनुमस्तिष्क, मेडुला आबलांगेटा या सुषुम्ना शीर्ष तथा सुषुम्ना की उत्पत्ति होती है। सुषुम्ना का वर्णन ऊपर विस्तारपूर्वक किया जा चुका है।

सेरीब्रम या प्रमस्तिष्क के दो भाग होते हैं यानी दाहिना गोला तथा बायाँ गोलार्द्ध। इनको विभाजन करने वाली लम्बी दरार को जो सामने

से पीछे की ओर गई हैं उसे रोलैण्डिक विदर (Rolandic fissure) कहते हैं। प्रमस्तिष्क ऊपर से देखने पर भूरे रंग का मालूम पड़ता है जिसके अन्दर अनेकों तन्त्रिका केन्द्र उपस्थित रहते हैं। समस्त प्रमस्तिष्क ऊपर से देखने पर बिल्कुल चिकना नहीं होता बल्कि असंख्य दरारों के द्वारा जिन्हें परिखाएँ (Sulci) कहते हैं ऊँचा-नीचा हो जाता है। इसका मुख्य अभिप्राय धरातल क्षेत्र को बहुत ज्यादा बढ़ा देना है। बुद्धिमानों में यह परिखायें गहरी और संख्या में अधिक होती हैं।

किन्तु बचपन में या और दूसरे जानवरों में जिनके मस्तिष्क का विकास पूर्ण रूप से नहीं हुआ रहता प्रमस्तिष्क का ऊपरी भाग चिकना होता है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है या जानवरों में विकास होता है मस्तिष्क के ऊपरी भाग में दरार उत्पन्न होने लगती है और तरुण अवस्था में दरारें अधिक-से-अधिक दिखलाई पड़ने लगती हैं।



मस्तिष्क

चित्र सं० ७६

मस्तिष्क के ऊपरी भूरे भाग को काटने पर वह हिस्सा दिखलाई पड़ता है जो श्वेत रंग का होता है। इसे श्वेत भाग (White matter) कहते हैं। यह तन्त्रिका सूत्रों (Nerve Fibres) का बना होता है। यह रेलवे लाइन के समान होती हैं जिनका सम्बन्ध एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र तक होता है और मस्तिष्क के ऊपरी भाग से नीचे के भाग तक होता है।

प्रमस्तिष्क के चार भाग होते हैं। सबसे आगे का भाग पूर्व खण्ड (Frontal Lobe) कहलाता है जो पूर्व कपाल अस्थि (Frontal Bone) के ठीक नीचे स्थित है। इसके पीछे पेराइटल लोब होता है जो पेराइटल बोन के ठीक नीचे स्थित होता है। सबसे पीछे पश्च खण्ड (Occipital Lobe) होता है जो आक्सीपिटल बोन के नीचे होता है। कनपटी यानी शंखास्थि (Temporal bone) के सम्पर्क में बृहत मस्तिष्क का वह लोब होता है जिसे शंख खण्ड (Temporal Lobe) कहते हैं।

मनुष्य के मस्तिष्क का ऊपरी भाग जिसमें बीच की विदर (फीशर आफ रोलैण्डा) दिखलाई गई है इसके दोनों तरफ शरीर के प्रेरक स्थल आज्ञा केन्द्र दिखलाये गये हैं।

प्रमस्तिष्क में रोलैण्डक फीशर की दोनों तरफ प्रेरक स्थल के भिन्न-भिन्न केन्द्र होते हैं जो निम्नलिखित हैं :—

(१) पैर के संचालन का केन्द्र।

(२) उदर के संचालन का केन्द्र।

(३) वक्षस्थल के संचालन का केन्द्र।

(४) बाहु के संचालन का केन्द्र।

(५) चेहरे के संचालन का केन्द्र।

(६) जीभ के संचालन का केन्द्र।

(७) स्वरनली के संचालन का केन्द्र।

इसके अतिरिक्त कुछ और भी केन्द्र हैं जो मस्तिष्क के ऊपरी भाग में स्थित हैं।

यदि हम मस्तिष्क को उलट कर देखें तो उसकी रचना ऊपर के चित्र के समान प्रतीत होगी। सबसे पहले सामने की तरफ बटन के समान दो गोले दिखाई पड़ेंगे। ये गोले रोलैण्डिक विदर के दोनों तरफ स्थित हैं। इन्हें घ्राणकन्द (Olfactory Bulb) कहते हैं। यह वह स्थान है जहाँ पर नाक से घ्राण-तन्त्रिका जाकर समाप्त होता है। घ्राणकन्द के पीछे तन्त्रिकाओं के एक बण्डल की तरह होता है जिसे घ्राणपथ (Olfactory Tract) कहते हैं। दोनों तरफ का घ्राणपथ एक चपटे हिस्से पर समाप्त होता है जिसे घ्राणकर्णक कहते हैं। यह स्थान सूँघने का केन्द्र है। इसके पीछे वे तन्त्रिकायें हैं जो एक दूसरे को कैंची के समान पार करती हैं। इन्हें दृष्टि व्यत्थासिका कहते हैं। इनके ऊपरी भाग से आप्टिक नर्व आकर मिलती है। इनके निचले भाग पर चार गोले हिस्से होते हैं जिन्हें चतुष्टयपिण्ड (कारपोरा क्वाड्रीजेमिना) कहते हैं। इनका मुख्य कार्य दृश्य के अनुभव को तीव्र कर देना है। इनके पीछे नेत्र के अंग का अन्तिम भाग होता है जिसे आप्टिक थैलेमस कहते हैं। यह दृष्टि का केन्द्र है। आप्टिक थैलेमस के पीछे बेंड़ी तन्त्रिकाओं का वह भाग है जिसे पान्स कहते हैं। पान्स का मुख्य कार्य प्रमस्तिष्क, अनुमस्तिष्क तथा मेडुला आबलांगेटा के बीच सम्बन्ध स्थापित करना है।

मस्तिष्क के गूदे की गहराई में कुछ खाली जगहें जल (मस्तिष्क सुषुम्ना जल) से भरी हुई होती हैं जिन्हें वेन्ट्रिकल कहते हैं। इस जल से मस्तिष्क का पोषण होता है। ये सभी वेन्ट्रिकल परस्पर सम्बन्धित होते हैं। इसके नाम ऊपर से नीचे क्रमशः ये हैं :—

तृतीय निलय (Third Ventricle)

पार्श्व निलय (Lateral Ventricle)

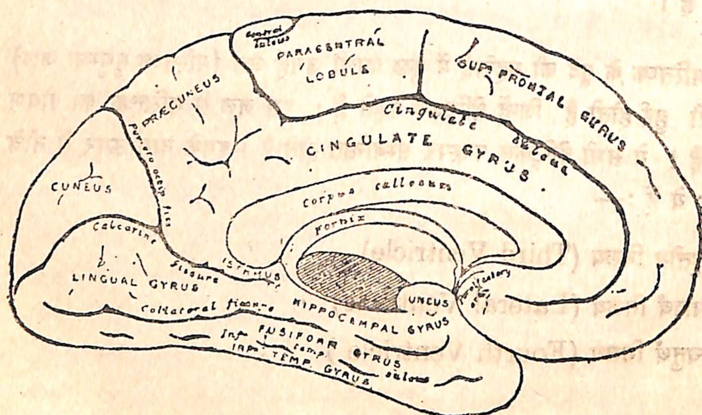
चतुर्थ निलय (Fourth Ventricle)

———

वाम गोलार्द्ध का आन्तरतल

(Medial surface of the left ceredral hemisphere)

कीलक (Cuneus)
वक्रान्तर विदर (Calcarine Fissure)
स्वाद कर्णक (Lingual gyrus)
योजन कर्णक (Isthmus)
सरलान्तरा परिखा (Collateral Fissure)
वेम कर्णक (Fusiform gyrus)
अधरा शंखिक-परिख (Inferior Temporal sulcus)
अधरा शंखिका कर्णका (Inferior Temporal gyrus)
हिपोकेम्पी कर्णक (Hippocampal gyrus)
अंकश कर्णक (Uncus)
घ्राण क्षेत्र (Parolfactory area)
छत्रिका (Fornix)



चित्र सं० ७७

मस्तिष्क सेतु (Corpus Callosum)
अधिसेतु कर्णंक (Cirgulate gyrus)
मेखला कर्णक (Cingulate Suleus)
उत्तरा ललाट कर्णक (Superior Frotal gyrus)
मध्य पूर्वं कर्णंक (Paracentral Lobule)
केन्द्रीय परीखा (Central sulcus)
पूर्वं कीलक (Precuneus)

मस्तिष्क को यदि बीच में काटकर देखा जाय तो उसके सामने वाले भाग में दोनों तरफ गड्ढे दिखलाई पड़ेंगे जिन्हें लेटरल वेन्ट्रिकल कहते हैं। इन दोनों वेन्ट्रिकलों का सम्बन्ध बीच में एक लम्बे वेन्ट्रिकल से होता है जिसे तृतीय वेन्ट्रिकल कहते हैं। तृतीय वेन्ट्रिकल के अन्तिम भाग से एक नहर आरम्भ होती है जिसे सिलवियन डक्ट (Sylvian Duct) कहते हैं। यह नली नीचे आकर मेडुला आबलांगेटा में खुलती है जहाँ चौथा वेन्ट्रिकल स्थित है और इसका अन्तिम भाग सुषुम्ना के केन्द्रीय नाली (Central Canal) से मिल जाता है। इन वेन्ट्रिकल्स या नहरों के अन्दर एक श्वेत तरल पदार्थ रहता है जिसे प्रमस्तिष्क सुषुम्ना तरल (Cerebro Spinal Fluid) कहते हैं। इस द्रव के द्वारा मस्तिष्क अपना पौष्टिक पदार्थं ग्रहण करता है। इसकी अधिकता से मस्तिष्क का प्रदाह हो जाता है। लेट्रल वेन्ट्रीकल्स के दोनों तरफ धूसर भाग (Grey matter) का भाग होता है जो ताड़ के पंखे के समान होता है और अधिक से अधिक ऊँचा-नीचा भी होता है। इसे इन्सुला कहते हैं। यह बुद्धि का केन्द्र है। जो लोग बहुत ज्यादा बुद्धिमान हैं जैसे वैज्ञानिक या दार्शनिक लोग, इनका इन्सुला बहुत ऊंचा नीचा होता है। इन्सुला के दोनों तरफ अन्दर के हिस्से से ग्रेमैटर का वह समूह होता है जिसे रेखित पिण्ड (Corpus Striatum) कहते हैं। यह ताप का केन्द्र होता है। इसकी उत्तेजना से शरीर का तापक्रम बढ़ जाता है तथा साधारण हालत में शरीर के अन्दर गर्मी बनी रहती है।

———

प्रमस्तिष्क के कार्य

(Functions of Cerebrum)

प्रत्येक जीव-जन्तु तथा मनुष्य के मस्तिष्क के तीन मुख्य कार्य होते हैं।

(१) विचार करने की शक्ति —विचार का मुख्य साधन मस्तिष्क है। स्वस्थ मस्तिष्क का उत्पादन शुद्ध विचार है।

(२) ज्ञान—यह करीब-करीब हरेक जीव-जन्तु में उपस्थित रहता है। ज्ञान ही वह शक्ति है जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति आपत्तियों से अपनी रक्षा कर सकता है तथा अपना विकास कर सकता है।

(३) कर्म या क्रिया —यह विचार और ज्ञान दोनों पर निर्भर रहता है। खासतौर से अगर कोई अच्छे विचार का मनुष्य है तो उसके नित्य कार्य भी अच्छे ही होंगे और अगर बुरे विचार का है तो बुरे होंगे। अधिकतर यही होता है कि आदमी जो सोचता है उसी के अनुसार कार्य करता है।

शरीर के किसी भी अंग के कार्य को अध्ययन करने के लिए निम्न लिखित उपाय हैं :—

(१) इस अंग को काट कर यह देखना कि उस अंग के अभाव से उस शरीर के अन्दर क्या-क्या विकार उत्पन्न होते हैं और क्या-क्या परिवर्तन होते हैं।

(२) इस अंग को उत्तेजित करके उसके कार्य का अध्ययन करना। यदि हम किसी अंग को उत्तेजित करें तो वह अंग अपने कार्य और तेजी से करने लगेंगे।

(३) जिन छोटे वर्ग के जीव-जन्तुओं में वह अग उपस्थित नहीं है उनमें व साधारण मनुष्यों में क्या अन्तर है ?

(४) रोग के समय भी अमुक अंग में जो परिवर्तन होता है वह भी विचारणीय है। जैसे कि उन्माद की अवस्था में मनुष्य को किसी बात का भी ज्ञान नहीं रहता और न तो उसे अच्छे तथा बुरे का बोध होता है।

इस प्रकार से वैज्ञानिकों ने अनेक जीव-जन्तुओं के ऊपर प्रयोग करके और उसके परिणाम का अध्ययन करके मस्तिष्क के कार्य को भी भली प्रकार दर्शाया है। इन लोगों ने यह भी देखा कि छोटे जानवरों में जिनमें बृहत मस्तिष्क बहुत ही छोटा होता है तथा विकसित नहीं होता अगर वृहत मस्तिष्क को काट कर निकाल दिया जावे तो उनके कार्य में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता जैसा कि मछलियों में देखा गया है। चिड़ियों में विशेष परिवर्तन हो जाता है। खासतौर से कबूतर में वृहत मस्तिष्क को निकाल देने से इनकी गर्दन नीचे झुक जाती है सुस्त पड़ जाता है, शत्रुओं का ज्ञान नहीं रहता तथा अगर उसे उड़ा दिया जावे तो थोड़ी देर तक उड़ता है, लेकिन बाद में किसी एक स्थान पर बैठ जाता है।

स्तनपायी जानवरों में वृहत मस्तिष्क को निकाल देने से मस्तिष्क के अन्दर रक्तपात होकर उनका देहान्त हो जायेगा। अगर बच भी गये तो उनका व्यवहार ठीक वैसे ही होगा जैसा ठीक ऊपर लिखे जानवरों का होगा।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार यह देखा गया है कि शरीर के वे अंग जो बाद को विकसित होते हैं बीमारी के समय उनके ऊपर पहले प्रभाव पड़ता है। बहुत से पढ़े-लिखे लोग जो एकाएक बीमार हो जाते हैं या गिर पड़ते हैं जिससे उनके मस्तिष्क में चोट लग जाती है तो उनमें यह देखा गया है कि या तो अन्य स्थान के नाम को बिल्कुल भूल जाते हैं या बहुत से अच्छे वक्ता अपने विचार को भली प्रकार से प्रकट नहीं कर पाते या उनके अन्दर कुछ विचित्र बातें आ जाती हैं।

अनुमस्तिष्क

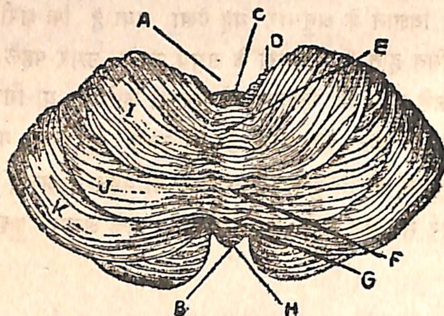
(Cerebellum)

अनु मस्तिष्क नारंगी के समान गोल होता है और जो पश्चकपालस्थि के भीतरी हिस्से में नीचे के दोनों तरफ के गड्ढों में स्थित है। यह तन्त्रिकाओं के द्वारा मेडुला आबलांगेटा तथा प्रमस्तिष्क से जुटा रहता है। मनुष्यों में यह भी

वृहत मस्तिष्क की भांति भली प्रकार विकसित है। प्रमस्तिष्क के समान अनुमस्तिष्क के दो भाग होते हैं, एक बाहरी भूरा हिस्सा जिसे अनुमस्तिष्क प्रांतस्था (Cerebellar Cortex) कहते हैं। यह नाड़ी केन्द्र का बना हुआ है। इसका बाहरी भाग भी काफी ऊँचा-नीचा रहता है। इसके अन्दरूनी श्वेत भाग में तीन केन्द्र उपस्थित हैं।

(१) न्यूक्लियस ग्रेशियेलिस (Nucleus Gracialis)
(२) न्यूक्लियस क्यूनियेटस (Nucleus Cuneatus)
(३) न्यूक्लियस डेन्टेटस (Nucleus Dentatus)

अनुमस्तिष्क का ऊर्ध्वतल
(Superior Surface of the Cerebellum)



चित्र सं० ७८

A. अनुमस्तिष्क अग्रखात (Anterior Cerebellar Notch)
B. अनुमस्तिष्क पश्च (Posterior Cerebellar Notch)
C. मध्य खण्ड (Lobulus Centralis)
D. पक्षति मध्य खण्ड (Ala Lobula Centralis)
E. शलभिका-शरीर (Culmen Monticuli)

F. शलभिका त्रिक (Clivus Monticuli)

G. शलभिका पुच्छ (Folium Vermis)

H. शलभिका कन्द (Tuber Vermis)

I. अग्रिम चतुरस्त्र-पिण्डिका (Anterior Part of Quadrangular lobe)

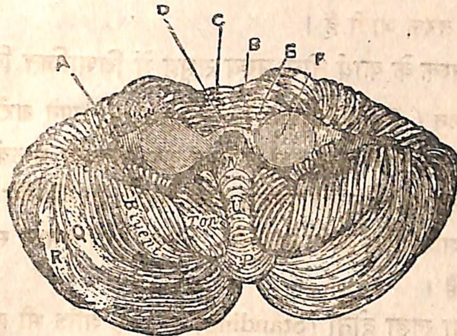
J. पश्चिमचतुरस्त्र पिण्डिका (Posterior Part of Quadrangular lobe)

K. उत्तरार्धचन्द्रिका खण्ड (Superior Semilunar lobule)

अनुमस्तिष्क का अधस्तल
(Inferior Surface of the Cerebellum)

A. उर्णपिण्डिका (Flocculus)

B. पक्षतिकेन्द्रीयखण्डिका (Ala Lobulis Centralis)



चित्र सं० ७९

C. केन्द्रीय खण्डिका (Lobulus Centralis)

D. अग्रिम अन्तस्थच्छदन (Anterior Medullary Vellum)

E. उत्तरवृन्तिक (Brachium Conjunctivum)

F. मध्यवृन्तिक (Brachium Pontis)
N. खण्ड-पर्व (Lobus Nodule)
P. शलभिका तुन्द (Pyramid Vermis)
Q. R अधरा अर्धचन्द्रखण्डिका (Inferior Semilunar Lobule)
U. शलभिका ग्रीवा (Uvula Vermis)

प्रत्येक केन्द्र में तन्त्रिकाएं तीन समूहों में एकत्रित होती हैं।

(क) नीचे की तन्त्रिकाओं का वृन्तक (Interior Peduncle)
(ख) बीच की तन्त्रिकाओं का वृन्तक (Middle Peduncle)
(ग) ऊपर की तन्त्रिकाओं का वृन्तक (Superior Peduncle)

इन समूहों का आकार पेड़ की डालियों के समान होता है। सबसे नीचे के समूह से वे तन्त्रिकाएं उत्पन्न होती हैं जो प्रमस्तिष्क की तरफ जाती हैं। बीच के समूह से वे तन्त्रिकाएं उत्पन्न होती हैं जिनका सम्बन्ध पहले तो कान से होता है और फिर पान्स (Pons) के द्वारा दूसरी तरफ के अनुमस्तिष्क से होता है। ऊपर के तन्त्रिकाओं के समूह से वे नाड़ियाँ आरम्भ होती हैं जो नीचे सुषुम्ना तन्त्रिकाओं की तरफ जाती हैं।

अनुमस्तिष्क के कार्य तीन मुख्य समूह में विभाजित किये गये हैं—

(१) संतुलन (Equilibrium) :—मनुष्य को अपने शरीर को साधे रहना ताकि वह गिरने न पावे। इस कार्य में बहुत कुछ सहायता आठवीं नाड़ी से मिलती है। जैसे-जैसे लघु मस्तिष्क का विकास होता चलता है वैसे-वैसे उसमें अपने-आप को साधने की शक्ति तीव्र होती जाती है। इसका मुख्य प्रमाण सर्कस के कलाकारों से प्रतीत होता है।

(२) सीधा खड़ा होना (Standing) :—यह शक्ति भी हम लोगों को अनुमस्तिष्क के द्वारा प्राप्त होती है। इसका सम्बन्ध तन्त्रिकाओं के द्वारा पैर की मांसपेशियों से होता है। बहुत ज्यादा घूमने पर या जल्दी-जल्दी चक्कर लगाने पर मनुष्य को एकाएक खड़े होने में कठिनाई होती है।

(३) चलने-फिरने में शरीर को साधना तथा मांसपेशियों के ऊपर शासन करना (Co-ordination of muscular movements)

यह देन भी अनुमस्तिष्क की है, क्योंकि अक्सर ऐसा देखा गया है कि जब अनुमस्तिष्क में किसी को विकार उत्पन्न हो जाता है तो ऐसे मनुष्य की गति में बहुत कुछ अन्तर हो जाता है तथा इसके दोनों पैर बराबर नहीं उठते उसका एक पैर दूसरे पैर की अपेक्षा हल्का हो जाता है और उसी तरफ इसके गिरने की आशंका रहती है। वह पैर कमजोर व पतला होता जाता है, लेकिन ऐसे रोगियों की मांसपेशियों में कम्पन उत्पन्न नहीं होती। साथ-ही-साथ एक दूसरा परिवर्तन यह हो जाता है कि वह ठीक से बोल नहीं पाता और साधारण तरीके से सिलसिलेवार बातें न करके झटके से बातें करता है। तीसरा परिवर्तन यह होता है कि ऐसे मनुष्य की आँखें टेढ़ी हो जाती हैं।

———

सुषुम्ना शीर्ष

मेडुला आबलांगेटा

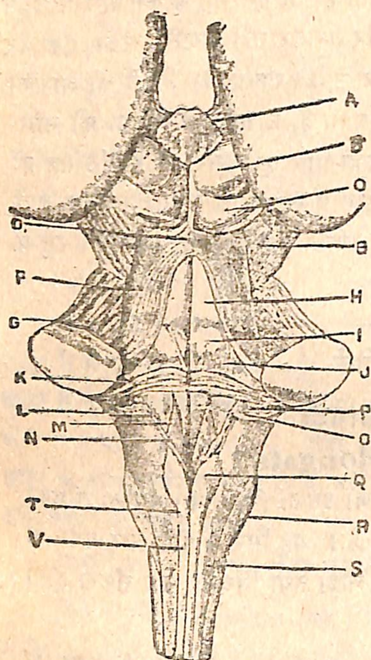
(Medulla Oblongata)

यह मस्तिष्क का सबसे पिछला भाग है जो इसको (मस्तिष्क) सुषुम्ना तंत्रिका से जोड़ता है और श्वास-क्रिया में भाग लेता है। यह सिर के पीछे और गर्दन के ऊपरी भाग में स्थित है। इसका ऊपरी भाग चौड़ा तथा निचला भाग सँकरा होता है और सुषुम्ना से मिल जाता है।

मेडुला के पीछे का भाग चौथे निलय की छत बनाता है। यह अधिकतर उन तन्त्रिकाओं से मिल कर बना हुआ है जो सुषुम्ना से आरम्भ होती हैं और मस्तिष्क की तरफ जाती हैं तथा उन तन्त्रिकाओं से भी मिलकर बना है जो बहुत हैं तथा अनुमस्तिष्क से आरम्भ होकर सुषुम्ना तन्त्रिकाओं को जाती हैं। इसी स्थान पर तन्त्रिकाएँ एक दूसरे को पार करती हुई दाहिना तरफ से बायीं तरफ को जाती हैं तथा बायीं तरफ से दाहिनी तरफ। यह तन्त्रिकाएँ अनुमस्तिष्क से भी सम्बन्ध स्थापित करती हैं। मेडुला का आधार (Base) चौथे निलय से मिलकर बना हुआ है। यह पतंग के आकार का है।

———

मस्तिष्क का चतुर्थ निलय



चित्र सं० ८०

A. पिनियल पिण्ड (Pineal Body)

B. ऊर्ध्व वप्र (Superior Colliculus)

C. अधरवप्र (Inferior Colliculus)

D. अग्रिम अन्तस्थ छेदन (Anterior Medullary Velum)

E. प्रमस्तिष्क वृन्तक (Cerebral Peduncle)

F. उत्तरवृन्तिक (Brachium Conjunctivum)

G. मध्यवृन्तिक (Brachium Pontis)

H. मस्तिष्क चतुर्थ गुहा के तल का उष्णीषक सम्बन्धी भाग (Pontine Part of floor fourth Ventricle)

I. आनन वप्र (Colliculus Facialis)

J. ऊर्ध्व गर्तिका (Fovea superior)

K. सुषुम्ना रेखा (Stria Medullaris)

L. क्षवण तन्त्रिका क्षेत्र (Area Acustica)

M. अधः गर्तिका (Fovea Inferior)

N. श्यामपक्षक (Ala Cinerea)
O. द्वादश तन्त्रिका त्रिकोण (Trigonum Hypoglossi)
P. अधःवृन्तिक (Restiform Body)
Q. दशचूड़िका (Clava)
R. भस्माभकी कन्द (Tuberculum Cinereum)
S. कीलक पूलिका (Fasciculus Cuneatus)
T. कीलक गुलिका (Cuneate Tubercle)
U. तनुपूलिका (Fasciculus gracillis)

चौथे वेण्ट्रिकल का ऊपरी भाग तीसरे वेंट्रिकल या मस्तिष्क कुल्या (Cerebral aquiduct) तथा नीचे का भाग सुषुम्ना नाली की केन्द्रीय नाली से मिलता है। इसके आधार में मस्तिष्क की अन्तिम चार तन्त्रिकाओं के केन्द्र होते हैं। यह चारों केन्द्र चौथे वेण्ट्रिकिल में क्रम से ऊपर से नीचे की ओर स्थित रहते हैं। इसमें मुख्य स्थान दसवीं नर्व या वेगस (Vagus) का है। इससे बहुत-सी शाखाएँ उत्पन्न होती हैं और एक-एक शाखा एक-एक अनैच्छिक अंग पर समाप्त होती है। इस केन्द्र को उत्तेजित करने से इन अंगों की क्रिया धीमी पड़ जाती है। श्वसन केन्द्र भी मेरु शीर्ष में ही स्थित हैं।

———

केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र का संक्षिप्त कार्य

प्रत्येक तन्त्रिका तन्त्र के दो मुख्य कार्य होते हैं। प्रथम तो यह कि शरीर के प्रत्येक अंग के ऊपर शासन तथा उन्हें सुचारु रूप से सञ्चालित करना, दूसरा कार्य यह है कि परिस्थिति तथा बाहरी वातावरण के अनुसार अपने-आप को वैसा ही बना लेना।

एक साधारण जन्तु, जैसे जेली मछली जो बहुत ज्यादा इधर से उधर नहीं कर सकती, इसके अन्दर केवल उतनी ही तन्त्रिकाएँ होती हैं जिनके द्वारा वह शत्रुओं से अपनी रक्षा कर सके। कीड़े-मकोड़ों में कुछ और तन्त्रिकाएँ होती

हैं जिनके द्वारा उनकी गति अधिक तीव्र होती है। इसके अन्दर सुषुम्ना का विकास हो जाता है जिनकी सहायता से यह और भी भिन्न-भिन्न कार्य करने के योग्य हो जाते हैं।

जो जानवर अधिक चलते-फिरते हैं उनमें अधिक केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र की उत्पत्ति हो जाती है। उन्हें शुद्ध वायु की भी अधिक आवश्यकता होती है। इनके तन्त्रिका तन्त्र में मेडुला और पान्स का विकास हो जाता है। उनके अन्दर पाचन-क्रिया तथा निगलने की क्रिया दसवीं तन्त्रिका की वजह से तेज हो जाती है। जैसे-जैसे हम लोग उच्च श्रेणी के जानवरों की क्रिया का अध्ययन करते हैं, हम लोगों को इस बात का ज्ञान होता है कि उनके अनुमस्तिष्क, आबलांगेटा तथा सुषुम्ना में विकास होने लगता है। मस्तिष्क के इन तीनों अङ्गों में इतनी शक्ति आ जाती है कि जानवरों की प्रत्येक क्रिया पर शासन करने लगते हैं जैसे कि उड़ना, दौड़ना, भागना, शत्रुओं पर आक्रमण भी करना। इसके अतिरिक्त मल-मूत्र का त्याग भी इन्हीं तीन अंगों पर निर्भर करता है।

वाहिनी विहीन ग्रन्थियाँ भी इन जानवरों के विकास में बहुत कुछ भाग लेती हैं और जैसे-जैसे तन्त्रिका तन्त्र में विकास होता चलता है वैसे-वैसे ये जानवर बहुत ही जटिल और विकसित होते जाते हैं। इनके अन्दर प्रतिक्रिया भी बहुत जोरें में होती है। इसके साथ ही साथ ये जानवर और भी चौकन्ने तथा चालाक हो जाते हैं।

जब हम लोग मनुष्य की श्रेणी में पहुँचते हैं तो हमको यह मालूम होता है कि मनुष्य अपनी परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको साध लेता है। इसके अन्दर विचार की शक्ति बहुत तीव्र हो जाती है और बाहरी कठिन-से कठिन वातावरण में भी अपने आपको उसी के अनुसार बना लेता है। जैसा कि हम भिन्न-भिन्न देशों के निवासियों को देखते हैं। उनका रहन-सहन और कार्य उन देशों की भौगोलिक स्थितियों पर निर्भर रहता है।

सुषुम्ना तन्त्रिकाएँ
(Spinal Nerves)

सुषुम्ना से उत्पन्न हुई अन्य तन्त्रिकाएँ—

यह वह स्थानीय तन्त्रिकाएँ हैं जो सुषुम्ना से आरम्भ होती हैं और शरीर के प्रत्येक अंग में जाकर मिलती हैं। इनकी कुल संख्या ३१ है जिनमें ८ ग्रैव तन्त्रिकाएँ (Cervical Nerves) हैं और १२ वक्षीय (Thoracic), ५ कटि (Lumbar), ५ त्रिक (Sacral) और १ अनुत्रिक (Coccygeal) तन्त्रिकाएँ हैं। ये तन्त्रिकाएँ सुषुम्ना से दो मूलों (Roots) से आरम्भ होती हैं– (१) अग्रमूल (Anterior root), (२) पश्चमूल (Posterior root)। पश्चमूल में एक गण्डिका (Ganglion) भी रहता है। यह तन्त्रिकाएँ दोनों मूलों से मिलकर एक हो जाती हैं और कुछ दूर जाकर प्रत्येक तन्त्रिका की पुनः दो-दो शाखायें हो जाती हैं। एक सामने की शाखा जिसे अग्र प्रशाखा (Anterior Ramus) कहते हैं और पीछे की शाखा जिसे पश्च प्रशाखा (Posterior Ramus) कहते हैं। अग्र प्रशाखा पश्च के पीछे की अपेक्षा कुछ लम्बी होती है। पश्च प्रशाखा पीछे की तरफ घूमकर फिर दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है। पहली मध्य शाखा (Medial Branch) और दूसरी पार्श्व शाखा (Lateral Branch)। इनमें वागत और अनुकम्पी तन्त्रिकाओं (Sympathetic Nerves) की शाखायें भी आकर मिल जाती हैं।

ग्रैव तन्त्रिकाएँ (Cervical Nerves)—ये सुषुम्ना के ऊपर से निकलती हैं और इनकी शाखाएँ कुछ तो मांसपेशियों के अन्दर प्रवेश करती हैं और कुछ सिर और गले के चर्म के अन्दर प्रवेश करती हैं। प्रत्येक तन्त्रिका से एक सहायक शाखा निकलती है जो नीचे की दूसरी तन्त्रिका की सहायक शाखा से मिल जाती है। इसी प्रकार दूसरी से जो शाखा निकलती है वह तीसरी तन्त्रिका से मिल जाती है। इसी प्रकार ये शाखायें नीचे की ओर तन्त्रिकाओं से मिलती जाती हैं।

मध्यच्छदा तन्त्रिका (Phrenic Nerves)—ये दो बहुत महत्वपूर्ण तन्त्रिकाएँ हैं जो दूसरी, चौथी और पाँचवीं ग्रैव तन्त्रिका से आरम्भ होती हैं और वक्षस्थल के सामने के भाग से परिफुफ्फुस और परिहृद् के बीच होती हुई नीचे को आती हैं और डायाफ्राम में मिल जाती हैं। दाहिनी तरफ फ्रेनिक नर्व बायें की अपेक्षा छोटी होती हैं। बायीं तरफ की फ्रेनिक नर्व जो दाहिने से अधिक लम्बी होती है, महाधमनी और Thoracic duct से पीछे होती हुई नीचे को आती है और डायाफ्राम के निचले भाग में मिल जाती है। श्वास-क्रिया इस तन्त्रिका का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। इस तन्त्रिका के उत्तेजित होने पर श्वास-क्रिया तेज हो जाती है।

प्रगण्ड तन्त्रिका जालिका

(The Brachial Plexus)

इसके अन्तर्गत वे तन्त्रिकाएँ सम्मिलित हैं जो हाथ की मांसपेशियों को संचालित करती हैं और जिसके द्वारा हम लोगों को हाथों की सूचना भी मिला करती है। तात्पर्य यह है कि इनमें संवेदनवाही और क्रियावाही दोनों नाड़ियाँ पायी जाती हैं। इन नाड़ियों का आरम्भ इस प्रकार होता है—

गले की पाँचवीं, छठवीं, सातवीं, आठवीं तथा वक्षस्थल की प्रथम तन्त्रिका की अग्र (Anterior) शाखाओं का सहयोग इस प्रकार होता है। ५वीं तथा ६ठों तन्त्रिका का अग्रमूल (Anterior Root) मिलकर ऊर्ध्व प्रकाण्ड (Upper Trunk) बनता है। ७वीं तन्त्रिका का अग्रमूल (Anterior Root) किसी से नहीं मिलता बल्कि स्वयं ही मध्य प्रकाण्ड (Middle Trunk) बनता है। चौथी और पहली तन्त्रिका को अग्रमूल अधःप्रकांड मिलकर (Lower Trunk) बनाते हैं। इस प्रकार तीन मुख्य तंत्रिकाएँ शरीर प्रकांड बनाती हैं। प्रत्येक तंत्रिका-शरीर के भी दो-दो विभाग हो जाते हैं जिसे सामने को अग्रशाखा (Anterior Branch)

और पीछे की शाखा (Posterior Branch) कहते हैं। अब ऊर्ध्व प्रकाण्ड की दो शाखाएँ हो जाती हैं अग्रशाखा और पश्चशाखा। मध्य प्रकाण्ड की दो शाखाएँ हो जाती हैं—अग्र और पश्चशाखा। इसी प्रकार अधःप्रकाण्ड की भी दो शाखाएं हो जाती हैं अग्र और पश्चशाखा। अब ऊर्ध्व प्रकाण्ड की अग्र शाखा और मध्य प्रकाण्ड की अग्र शाखा दोनों मिलकर पार्श्व रज्जु (Lateral Cord) बनाते हैं। अधः प्रकाण्ड की ऊर्ध्व शाखा किसी से नहीं मिलती बल्कि मध्यरज्जु (Medial Cord) बनाती है और तीनों प्रकाण्ड की पश्च शाखाएं मिलकर पश्च रज्जु (Posterior Cord) बनाती हैं।

पार्श्व रज्जु (Lateral Cord) की तीन शाखाएं हो जाती हैं। पहली शाखा वक्षच्छदिक (Pectoral Muscle) को जाती है। दूसरी शाखा चर्म और मांसपेशी को जाती है जिसे पेशीत्वचा तन्त्रिका (Musculo Cutaneous) कहते हैं और दूसरी शाखा अभिमध्य तन्त्रिका (Median Nerve) की पार्श्व मूल (Lateral Head) बनाती हैं। मध्य प्रकाण्ड की भी तीन शाखाएँ होती हैं—

(1) पेशीत्वचा तन्त्रिका

(2) अन्तः प्रकोष्ठिका तन्त्रिका (Ulnar Nerve)

(3) अभिमध्य तन्त्रिका (Median Nerve) का मध्य मूल।

तीनों तन्त्रिकाओं के पश्चरज्जु मिलकर बहिःप्रकोष्ठिका तन्त्रिक (Radiai Nerve) बनाते हैं। इस प्रकार बाहु (Arm) अग्रबाहु (Forearm) के अन्दर तीन तन्त्रिकाएं पायी जाती हैं। अभिमध्यभाग (Medial Side) में अन्तःप्रकोष्ठिका तन्त्रिका (Ulnar), बीच में अभिमध्य तन्त्रिका (Median) और पार्श्वभाग में बाह्य प्रकोष्ठिका (Redial) तन्त्रिका।

Cervical

V ऊर्ध्वप्रकाण्ड
VI Upper Trunk
- पश्च Posterior — — —
- Anterior पार्श्व रज्जु

अग्र { Lateral Cord

VII Middle Trunk
मध्य प्रकाण्ड
- अग्र Anterior — — —
- Posterior

पश्च

VIII
Lower Trunk
TI
अधः प्रकाण्ड
- पश्च Posterior — — —
- Anterior Medial Cord
- अग्र अभिमध्य रज्जु

Posterior Cord पश्च रज्जु

- (1) Median Nerve
- (2) मध्यतंन्त्रिका

- (1)
- (2) Posterior Redial Nerve
- (3) पश्च-बहिः प्रकोष्ठिका तन्त्रिका

Pecteral
Musculo Cutaneous
पेशी त्वचा तन्त्रिका
Lateral head of the Median Nerve
अभिमध्य तन्त्रिका (पार्श्वशिर)
Medial head of the Median
अभिमध्य तन्त्रिका का अभिमध्य शिर
Musculo Cutaneous
Ulnar
अन्तः प्रकोष्ठिका तन्त्रिका

वक्षीय तन्त्रिकाएँ

(Thoracic Nerves)

वक्षीय तन्त्रिकायें (Thoracic Nerve)—यह संख्या में २४ होती हैं जिसमें १२ बायें और १२ दायें होती हैं। इनमें से ऊपर की जो तन्त्रिकाएँ होती हैं वे वक्षस्थल की दीवारों में प्रवेश करती हैं।

प्रथम वक्ष तन्त्रिका प्रगण्ड तन्त्रिका जालिका (Brachial Plexus) में सम्मिलित हो जाती हैं और शेष तन्त्रिकायें कशेरुक छिद्रों से निकल कर पसलियों के बीच के स्थान में घुसकर पसली के नीचे किनारे-किनारे इंटरकास्टल धमनी और शिरा के साथ दौड़ती हैं। अन्तरापर्शुका स्थान (Intercostal Space) में प्रवेश करती हैं। यहाँ पर यह अन्तरापर्शुका धमनी और शिरा के सम्पर्क में तथा उनके समानांतर रहती है। इसके अग्रभाग में परिफुफ्फुस (Pleura) और नीचे के भाग में अन्तरापर्शुका पेशी आंतर (Intercostalis Internus Muscle) रहता है और पश्चभाग में अन्तरापर्शुका पेशी बहिःपेशी (Intercostalis Externus Muscle) रहता है। वक्ष तन्त्रिकाओं की एक-एक शाखायें अनुकम्पी गणिका (Sympathetic Ganglion) को जाती हैं।

———

कटि तन्त्रिकाएँ

(Lumbar Nerves)

यह संख्या में १० होती हैं। ५ दायें तथा ५ बायें तरफ रहती हैं। इनकी अग्र शाखाओं से जो तन्त्रिकाएँ निकलती हैं उनसे कटि तन्त्रिका जाल (Lumbar Plexus) तैयार होता है। इस कटि तन्त्रिका जाल से निम्नलिखित तन्त्रिकाएँ आरम्भ होती हैं :—

पहली तन्त्रिका से तीन शाखाएँ उत्पन्न होती हैं।

१—श्रोणिफलक अधोजठर तन्त्रिका (Ilio hypogastric)

२ – श्रोणिफलक वंक्षण तन्त्रिका (Ilio inguinal)

३ – जननोरू तन्त्रिका (Genito femoral)

———

कटि तन्त्रिका जाल

(The Lumbar Plexus)

A. बारहवीं पशु ंका (Twelfth rib)

B. कटिचतुरस्रा (Quadratus Lumborum)

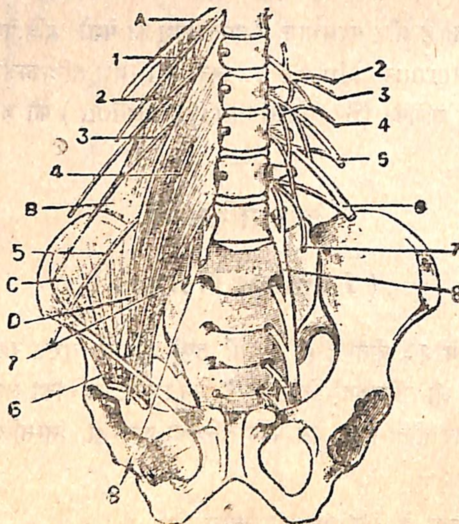
C. श्रोणि फलकिका (Iliacus)

D. कटिलम्बिनिका दीर्घा (Psoas Major)

1. अन्तिम तन्त्रिका (Last thoracic Nerve)

2. श्रोणिफलक अधो जठर तन्त्रिका (Ilio-hypogastric Nerve)

3. श्रोणिफलक वंक्षण तन्त्रिका (Ilio-inguinal Nerve)



चित्र सं० ८१

4. जननोरू तन्त्रिका (Genitofemoral Nerve)
5. उरुपार्श्विकी त्वाची तन्त्रिका (Lateral Femoral Cutaneous Nerve)
6. और्वी तन्त्रिका (Femoral Nerve)
7. गवाक्ष नाड़ी (Obturator Nerve)
8. कटित्रिका काण्डशाखा (Lumbo-Dorsal Trunk)

इसकी एक शाखा वक्ष तन्त्रिका (Thoracic) में मिल जाती है। दूसरा तन्त्रिकाएँ (Nerves) पार्श्वी त्वचा तन्त्रिका (Lateral Cutaneous Nerve) है। यह तन्त्रिका नीचे जाकर जांघ के चर्म में मिल जाती है।

गवाक्ष तन्त्रिका (Obturator Nerve)—यह दूसरी, तीसरी और चौथी तन्त्रिका से आरम्भ होती है और नीचे चलकर फलकिका (Iliacus Muscle) पेशी के ऊपर से होती हुई आगे को बढ़ती है जहाँ इसकी दो शाखाएँ हो जाती हैं। अग्र शाखा (Anterior Branch) तथा पश्च शाखा (Posterior Branch) हो जाती है।

और्वी तन्त्रिका (Femoral)—यह तन्त्रिका बहुत लम्बी होती है और 2nd. 3rd. 4th. कटि तन्त्रिकाओं (Lumbar Nerve) से आरम्भ होती है और नीचे चलकर वंक्षण मुद्रिका (Inguinal Ring) से होकर जांघ के सामने के हिस्से में प्रवेश करती है और जांघ के आधे हिस्से तक यह सामने रहती है। उसके पश्चात् यह तन्त्रिका जांघ के पीछे हिस्से में चली जाती है और घुटने तक पहुँचती है। यहाँ पर इस तन्त्रिका की दो शाखाएँ हो जाती हैं।

१—उपरिस्थ जंघा पार्श्व तन्त्रिका (Superficial Paroneal Nerve)

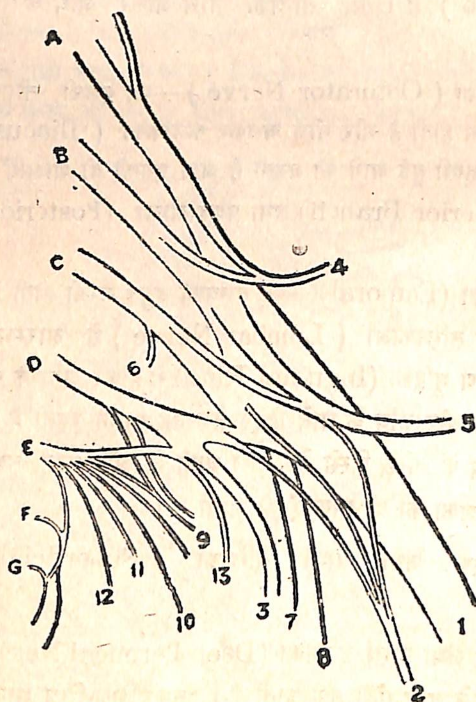
२—गंभीर जंघा पार्श्व तन्त्रिका (Deep Peroneal Nerve)—यह दोनों तत्रिका पैर के पंजे तथा एँड़ी तक जाती हैं। इनकी भिन्न-भिन्न शाखायें मांसपेशियों तथा चर्म के अन्दर प्रवेश करती हैं।

त्रिक तन्त्रिका (Sacral Nerve)—यह भी संख्या में १० होती हैं। ५ दाहिनी तरफ और ५ बायीं तरफ। इनके संयोग से एक मोटी तन्त्रिका आरम्भ होती है जिसे आसन तन्त्रिका (Sciatic Nerve) कहते हैं। यह आसन छिद्र (Sciatic Foramen) से होती हुई जाँघ के पिछले हिस्से में प्रवेश करती है।

———

त्रिक गुह्य और अनुत्रिक तन्त्रिका जाल

(Sacral Pudendal and Coccygeal Plexuses)



चित्र सं० ८२

A. कटित्रिका तन्त्रिका (Lumbo-Sacral Nerve Trunk)

B. प्रथम अनुत्रिक तन्त्रिका (Fist Sacral Nerve)

C. द्वितीय अनुत्रिक तन्त्रिका (Second Sacral Nerve)

D. तृतीय अनुत्रिक तन्त्रिका (Third Sacral Nerve)

E. चतुर्थ अनुत्रिक तन्त्रिका (Fourth Sacral Nerve)

F. पंचम अनुत्रिक तन्त्रिका (Fifth Sacral Nerve)

G. त्रिक-शौषिकी तन्त्रिका (Coccygeal Nerve)

1. महागृध्रसी तन्त्रिका (Great Sciatic Nerve)
2. पश्चिमोरुका त्वचा तन्त्रिका (Posterior femoral Cutaneous Nerve)
3. गुह्य तन्त्रिका (Pudendal Nerve)
4. ऊर्ध्व नितम्बिनी तन्त्रिका (Superior Gluteal Nerve)
5. अधर नितम्बिनी तन्त्रिका (Inferior Gluteal Nerve)
6. तुम्बिका पेशी को तन्त्रिका शाखा (Branch to Piriformis)
7. श्रोणि-गवाक्षिगी अन्तस्था को तन्त्रिका (Nerve to Obturator Internus)
8. उरु चतुरस्रा को तन्त्रिका (Nerve to Quadratus Femoris)
9. तृतीय और चतुर्थ अनुत्रिका तन्त्रिकाओं को आशयिका शाखायें (Visceral branches of third and fourth Sacral Nerve)
10. गुद उन्नयनिका को शाखा (Branch to Levator Ani.)
11. अनुत्रिकणी को शाखा (Branch to Coccygeus)
12. चतुर्थ अनुत्रिका की मूलधारिणी शाखा (Perineal branch of foruth Sacral Nerve)
13. भेदक त्वाची शाखा (Perforating Cutaneous Branch)

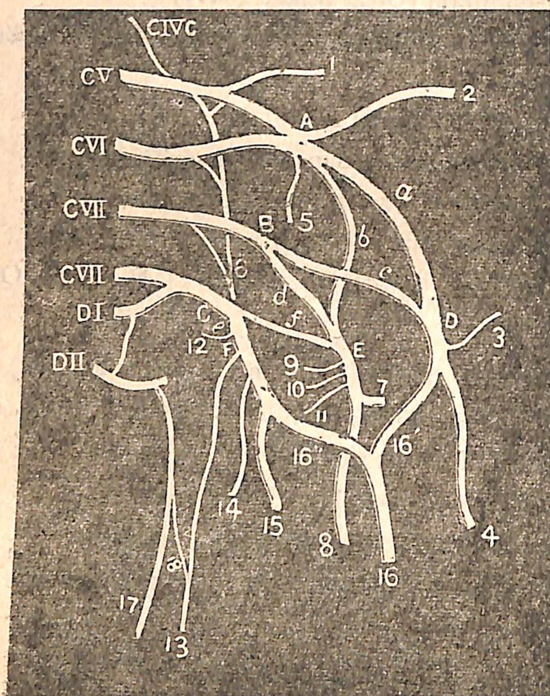
———

त्रिक-कक्षानुगा तन्त्रिका जाल

(Branchial Plexus)

चतुर्थ अनुग्रीविका (CIV) तन्त्रिका से आनेवाली संयोजनी शाखा (Communicating Branch from the fourth Cervical Nerve) ।

CV, CAI, CVII, CVIII, CI, DII,



चित्र सं० ८३

पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम अनुग्रीविका, प्रथम और द्वितीय वक्ष तन्त्रिकाओं के पूर्व प्रारम्भिक भाग।

(Anterior Primary Divisions of the fifth, sixth, seventh, eighth, first and second thoracic Nerves.)

A. उत्तर प्रकाण्ड शाखा a, b नामक अग्र और पश्च विभागों में विभक्त होती हुई—
(Upper trunk dividing into a, b anterior and posterior divisions.)

B. मध्यम प्रकाण्डशाखा e, d नामक अग्र और पश्च विभागों में विभक्त होती हुई —
(Middle trunk dividing into e, d anterior and posterior divisions)

C. अधर प्रकाण्डशाखा e, f नामक अग्र और पश्च विभागों में विभक्त होती हुई—
(Lower trunk dividing into e, f anterior and posterior divisions.)

D. पार्श्विक रज्जु (Lateral Cord)
E. पश्चिम रज्जु (Posterior Cord)
F. अन्त (मध्यानुगा) रज्जु (Medial Cord)
1. अंसपृष्ठिका तन्त्रिका (Dorsal Scapular Nerve)
2. अध्यंसफलक तन्त्रिका (Suprascapular Nerve)
3. अग्रऔरसी तन्त्रिका (Lateral Anterior Thoracic Nerve)
4. पेशीत्वगन्तिका तन्त्रिका (Musculo-Cutaneous Nerve)
5. अधोजत्रुक पेशी को जानेवाली तन्त्रिका (Nerve to Subcalavius)
6. दीर्घ औरसी तन्त्रिका (Long Thoracic Nerve)
7. कक्षाधरा तन्त्रिका (Axillary Nerve)

8. बहि:प्रकोष्ठिका तन्त्रिका (Radial Nerve)
9. प्रथम और द्वितीय अव अंसफलक तन्त्रिकाएँ (Upper and Lower Subscapular Nerve)
10. तृतीय वक्षपृष्ठिका तन्त्रिका (Thoraco dorsal Nerve)
12. मध्य अग्रौरसी तन्त्रिका (Medial Anterior Thoracic Nerve)
13. पुरोबाहु त्वाची तन्त्रिका (Medial Branchial Cutaneous Nerve)
14. प्रगण्डान्तरीया त्वाची तन्त्रिका (Medial Antibranchial Cutaneous Nerve)
15. अन्त:प्रकोष्ठिका तन्त्रिका (Ulnar Nerve)
16. मध्यानुगा तन्त्रिका (Medial Nerve)
16. मध्यानुगा तन्त्रिका का पार्श्व शिर (Lateral head of Median Nerve)
16. मध्यानुगा तन्त्रिका का अन्तः शिर (Medial Head of Median Nerve)
17. पर्शुका प्रगाण्डान्तरिका तन्त्रिका (Intercosto-Branchial Nerve)
18. पर्शुका प्रगाण्डान्तरिका तन्त्रिका से पुरोबाहुका त्वाची तन्त्रिका में जाकर मिलनेवाला सूत्र (Communicating twig from the Intercosto-branchial Nerve to the Medial Branchial Cutaneous Nerve)

———

ग्यारहवाँ अध्याय

ज्ञान-इन्द्रियाँ

(Organs of Special Senses)

यह ऐसे अंग हैं जिनके द्वारा बाहरी वातावरण का ज्ञान होता है। ये ज्ञान-इन्द्रियाँ निम्नलिखित होती हैं :—

(१) नाक (Nose)
(२) कर्ण (Ear)
(३) नेत्र (Eye)
(४) कण्ठ (Larynx)
(५) त्वचा (Skin)
(५) जिह्वा (Tongue)

इन सभी ज्ञान-इन्द्रियों में से एक का भी अभाव होने पर मनुष्य को बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

———

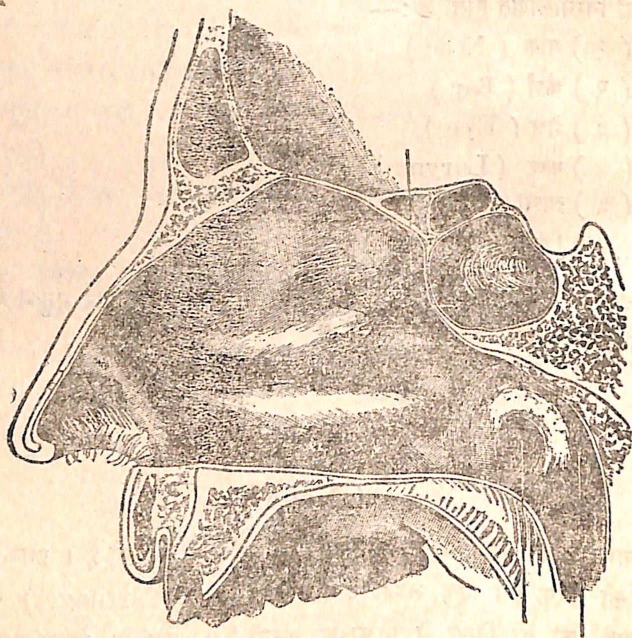
नासा

(Nose)

नाक सूँघने का अंग है, जो चेहरे के बीचो-बीच होती है। इसकी सूराख नीचे की तरफ है। एक लम्बी दीवार उपास्थि (Cartilage) की बनी हुई नाक को दो हिस्से में विभाजित करती है। नाक के अन्दर चारो तरफ बाल होता है जो कूड़ा, गर्दा या अन्य विषैली चीजों को अन्दर जाने से रोकता है। अन्य भाग एक पतली झिल्ली से ढँका रहता है। नाक के अन्दर चारो तरफ एक पतली महीन झिल्ली है। झिल्ली के पीछे तन्त्रिका-जाल होता है और वहाँ

से तंत्रिका सूत्र (Nerve Fibres) निकलती है जो चलनी के समान छेद के द्वारा मस्तिष्क के धरातल पर पहुँच कर घ्राण खण्ड (Olfactory Lobe) में मिलती है।

जब हम कोई सुगन्धित वस्तु नाक के पास ले जाते हैं तो उनकी गन्ध श्लैष्मिक झिल्लियों पर पहुँचती है और वहाँ तन्त्रिका कली (Nerve buds) के सम्पर्क में आती है। वहाँ से महँक घ्राण तंत्रिका सूत्र (Olfactory Nerve Fibre) के द्वारा घ्राण कन्द (Olfactory Bulb) में पहुँचती



चित्र सं० ८४—नाक की आन्तरिक रचना

है और वहाँ से घ्राणपथ (Olfactory Tract) से होती हुई अन्त में घ्राणकर्णक (Olfactory Gyrus) पर पहुँची है। जहाँ से हम लोग सुगन्ध

को उसके केन्द्र द्वारा अनुभव करते हैं। हम लोगों ने यह भी अनुभव किया है कि सर्दी जुकाम हो जाने पर किसी चीज की मँहक कम या नहीं मालूम पड़ती। इसका कारण यह है कि बलगम की एक महीन तह श्लेष्मक कला (Mucus membrane) पर बैठ जाती है तथा झिल्ली के सूज जाने पर उसमें की तन्त्रिकाएँ दबना शुरू करती हैं और महँक को तन्त्रिका जाल तक जाने में रुकावट पैदा करती हैं।

नेत्र
(Eye)

आँखें मनुष्य तथा सारे जीव-जन्तुओं का बहुत ही महत्वपूर्ण अंग हैं, जिनके द्वारा वह हरएक चीज को देख सकता है। मनुष्य के कपाल के अन्दर यह नाक के दोनों तरफ एक गहरे गड्ढे में स्थित हैं जिसे नेत्रगुहा (Orbit) कहते हैं। आँखें सामने के एक परदे से ढँकी रहती हैं जिसे पलक (Eyelids) कहते हैं। वह दो हैं एक ऊपरी एक निचली। पलकें एक प्रकार की कड़ी तह के द्वारा स्थित रहती हैं जिसे टारटस (Tartus) कहते हैं। इनके नीचे के किनारे पर छोटे-छोटे बाल होते हैं जो आँखों की धूल तथा गर्दों से रक्षा करते हैं। पलक के भीतरी भाग में एक महीन पारदर्शी झिल्ली लगी रहती है जिसे नेत्रश्लेष्मला (Conjunctiva) कहते हैं और यह झिल्ली दोहरी होकर नेत्र-गुहा को ढँके रहती है। इसके अन्दर प्रदाह हो जाने पर आँखों में जलन होने लगती है तथा उनमें दर्द होने लगता है। पलक के खोलने में ऊर्ध्व नेत्रच्छदा उन्नमनिक (Levator Palpebrae Superiors) नामक पेशी का काम करती है और इसके ऊपर नेत्र प्रेरक तन्त्रिका (Oculomotor-Nerve) का शासन होता है। जब यह नर्व सुन्न हो जाती है तो पलकें सदैव गिरी रहती हैं। इस दशा को वर्त्मपात (Ptosis) कहते हैं।

पलक के अन्दर कुछ ऐसी ग्रन्थियाँ रहती हैं जो आँसू पैदा करती हैं। इन्हें अश्रुग्रन्थि (Lacrymal Glands) कहते हैं और इनसे जो स्राव निक-

लता है उसे आंसू (Tears) कहते हैं। पलक के स्वतन्त्र भाग में एक बेंड़ी नली निकलती है जिसके द्वारा यह आंसू आँखों के पास गिरते हैं। इस बेंड़ी नली के बीच वाले मिडियल (Medial) सिरे से एक दूसरी नली आरम्भ होती है जो सीधे एक नाक में अन्दर खुल जाती है। ऐसी नली को अश्रुनासा नली (Naso-LacrymalDuct) कहते हैं। यह नली बच्चों में अक्सर बन्द हो जाया करती है और जिसे आपरेशन के द्वारा खोल देने से आँखों के बहुत से विकार दूर हो जाते हैं। लेक्रिमल ग्लैण्ड का शासन अनैच्छिक तन्त्रिकाओं के द्वारा होता है।

आँख का गोला बाहर से एक अपारदर्शक श्वेत पटल (Sclera) से ढँका रहता है जिसका सामने का भाग पारदर्शक और कुछ उभरा होता है। इस उभरे भाग को स्वच्छमण्डल (Sclera) कहते हैं। शेष भाग जो सारे नेत्र का लगभग दो-तिहाई भाग है वह अपारदर्शक होता है। इस छिपे हुए भाग के बाहरी आवरण को श्वेतपटल (Cornea) करते हैं। श्वेतपटल श्वेत अपारदर्शक आवरण है जिसका बाहरी भाग एक सौत्रिक झिल्ली का और भीतरी भाग शुभ्र सूत्रों का बना हुआ होता है।

कॉनिया के बाहरी किनारे पर एक पतला झिल्लीदार स्तर होता है जो कि पीछे की ओर कुछ दूर तक शुक्ल वृत्ति के ऊपर जाकर फिर ऊपर और नीचे वाले पलकों के भीतरी स्तर तथा सिर की त्वचा के साथ निरन्तर रूप धारण कर लेता है। इस स्तर को नेत्र-श्लेष्मला (Conjunctiva) कहते हैं।

कार्निया के नीचे कैमरे के छिद्रपट से मिलता हुआ एक पर्दा (Iris) होता है। इसका रङ्ग भिन्न-भिन्न मनुष्यों में और भिन्न-भिन्न देशवासियों में भिन्न-भिन्न होता है। भारतवर्ष में रहने वालों में यह प्रायः काले रंग का और ठण्डे देश में रहने वालों में भूरे रंग का होता है। इस पर्दे में एक छोटा-सा छिद्र होता है जिसे नेत्रतारा या आँख की पुतली (Pupil of the eye) कहते हैं। यह तिल के छिद्रपट के छिद्र की भाँति अँधेरे में बड़ा और अधिक

प्रकाश में छोटा हो जाता है जिससे प्रकाश की नियमित मात्रा आँख के अन्दर जा सकती है। तिल के पर्दे के पीछे एक लेंस होता है जिसे नेत्रलेंस (Eye-lens) कहते हैं। इस लेंस के दोनों तलों के वक्र अर्द्धव्यास एक-से नहीं होते बल्कि जो तल अन्दर की ओर होता है उसका वक्र अर्द्धव्यास क्रम से ६ मि० मी० और १० मि० मी० होता है। लेंस शीशे की भाँति कठोर पदार्थ का बना नहीं होता और पारदर्शक वस्तु का बना होता है और मांसपेशियों (Ciliary body) की सहायता से अपने स्थान पर रहता है। तारामण्डल और स्वच्छमण्डल के बीच एक स्थान होता है जिसको नेत्रोद कक्ष (Aqueous Chamber) कहते हैं। इसमें जल के समान पारदर्शक द्रव भरा रहता है जिसको नेत्रोद (Aqueous Humour) कहते हैं। दृष्टिमण्डल के भीतर की ओर नेत्रगोलक की प्रधान गुहा होती है जिसको काचाभ द्रव कक्ष (Vitreous Chamber) कहते हैं। काचाभ द्रव कक्ष नेत्रोद की अपेक्षा अधिक बड़ा होता है।

काचाभ द्रव कक्ष की दीवारें तीन स्तरों की बनी हुई होती हैं। सबसे बाहर वाला स्तर शुक्ल वृत्ति है जिसका वर्णन ऊपर आ चुका है। इसके भीतर एक काले रंग की झिल्ली रंजित पटल (Ohoroid) की पर्त्त होती है जो अपने काले रंग के कारण प्रकाश का शोषण कर लेती है और आँख के गोले के भीतर प्रकाश का प्रभाव नहीं होने देती। इस झिल्ली के नीचे आँख की सबसे भीतर की पारदर्शक झिल्ली होती है जिसे दृष्टिपटल (Retina) कहते हैं। यह पर्दा दृष्टि तन्त्रिकाओं का बना होता है। इस पर प्रकाश पड़ने से मस्तिष्क का ज्ञान हो जाता है।

ऊपर किये गये वर्णन से स्पष्ट है कि नेत्र की रचना बिल्कुल एक कैमरे की रचना के सदृश्य होती है। जिस प्रकार फोटो के कैमरे में वास्तविक और उलटा प्रतिबिम्ब बनता है उसी प्रकार आँख में भी वास्तविक और उलटा प्रतिबिम्ब बनता है; परन्तु हमारा मस्तिष्क उस उलटे प्रतिबिम्ब को सीधा करके दिखलाता है।

जिस प्रकार एक फोटोग्राफर दोपहर के समय फोटो लेते समय छिद्रपट (Diaphragm) के छेद को छोटा कर देता है ताकि प्रकाश अधिक मात्रा में कैमरे के अन्दर न जा सके और सन्ध्या समय फोटो लेते समय छिद्रपट के छेद को बड़ा कर देता है, इसी प्रकार हम लोगों की आँखें भी होती हैं। दोपहर के समय तेज धूप में नेत्रतारा (Pupil) सिकुड़ जाती है और सन्ध्या के समय प्यूपिल फैल जाती है। प्रकार के अनुसार प्यूपिल के फैलने तथा सिकुड़ने की क्रिया को समंजन शक्ति (Power of Accomodation) कहते हैं।

आँखों के दोष और उनका विवरण—आँखों में अनेक दोष होते हैं, परन्तु उनमें से मुख्य निम्नलिखित चार दोष हैं :—

(१) निकट दृष्टि (Short Sight or Myopia)

(२) दूर दृष्टि (Long Sight or Hypermetropia)

(३) विषम दृष्टि (Astigmatism)

(४) जरा दृष्टि (Presbyopia)

(१) निकट दृष्टि—जब नेत्र दूर की वस्तुओं को ठीक से न देख सके, केवल निकट की वस्तुओं को देख सकता हो तो उसे समीप दृष्टि का विकार कहते हैं।

इसका कारण यह है कि उन मनुष्यों के नेत्रलैंस का नाभ्यान्तर स्वाभाविक अवस्था में इतना कम होता है कि इससे दूर की वस्तुओं का प्रतिबिम्ब दृष्टिपटल पर नहीं बन सकता। नेत्रों पर अधिक जोर पड़ने से नेत्रगोलक की लम्बाई अधिक हो जाती है जिससे ताल (Lens) और पीत बिन्दु (Yellow Spot) में बहुत अधिक अन्तर हो जाता है। ऐसी अवस्था में आँख का केन्द्र-बिन्दु (Point of Focus) पीत बिन्दु से आगे की ओर बढ़ जाता है। इस कारण दूर की वस्तुएँ धुँधली दिखलाई पड़ती हैं। इसलिए जब तक वस्तु आँख के इतने पास नहीं आ जाती कि उसका प्रतिबिम्ब दृष्टिपटल पर बन जाय तब तक वह उसे स्पष्ट नहीं देख

सकती। अनन्तता से आने वाली किरणें दृष्टिपटल तक पहुँचने से पहले ही एक बिन्दु पर एकत्रित हो जाती हैं। इसलिए प्रतिबिम्ब दृष्टिपटल पर बनने के लिए दूर बिन्दु अनन्तता से हट कर किसी बिन्दु पर आ जाता है और निकट बिन्दु सामान्य निकट बिन्दु से भी पास आ जाता है। यह दोष आँख में बहुत पास से पढ़ने या लेट कर पढ़ने से आ जाता है।

इस दोष को दूर करने के लिए उचित क्षमता के नतोदर लेंसों के चश्मे आँख में लगा लेते हैं जिससे अनन्तता से आने वाली किरणें नेत्रपटल पर एकत्रित हो जाती हैं और प्रतिबिम्ब स्पष्ट बन जाता है। चूँकि नतोदर लेन्स न होने पर दूर बिन्दु से चलने वाली किरणें नेत्रपटल पर मिलती थीं और अब नतोदर लेन्स होने से अनन्तता से आने वाली किरणें वहाँ पर मिलती हैं, इसलिए निकट दृटि का दोष हटाने के लिए यदि नतोदर लेन्स को आँख के पास रखा जाय तो उसका नाभ्यन्तर आँख के दूर बिन्दु और आँख के बीच की दूरी के बराबर होना चाहिए।

(२) दूर दृष्टि—इस विकार का कारण यह होता है कि आँखों के पिछले और अगले भाग का अर्थात् ताल और नेत्रपटल के बीच का अन्तर कम हो जाता है जिससे प्रकाश की किरणें आँख के पीत बिन्दु के पीछे बनती हैं। अतः दूर की वस्तुएँ साफ और निकट की धुँधली दीख पड़ती हैं। छोटी अवस्था में जब नेत्र-गोलक कमजोर रहते हैं, यह विकार हो जाता है, पर आयु बढ़ने के साथ-साथ यह विकार दूर भी हो जाता है। वृद्धावस्थामें ताल पर नियंत्रण रखने वाली शक्ति क्षीण हो जाती है। इस कारण यह विकार हो जाता है। इस दोष को हटाने के लिए उचित क्षमता के उन्नतोदर (Cedvex) लेन्सों के चश्मे आँखों में लगा दिए जाते हैं जिससे नेत्रपटल पर पड़ने वाली किरणें अधिक मुड़ जाती हैं और उनका प्रतिबिम्ब नेत्रपटल पर बन जाता है।

(३) विषम दृष्टि— इस विकार में ताल पर पड़ने वाली किरणें अन्तः-पटल पर एक स्थान में केन्द्रीभूत नहीं होतीं। इस कारण उनके अनेक प्रतिबिम्ब

दिखाई देते हैं और वे स्पष्ट नहीं होते। ताल के दोष के कारण ऐसा होता है। ताल का आकार जब सम नहीं होता है तो यह विकार हो जाता है।

यह जन्मजात अथवा माता-पिता से बालक में आ जाता है। इस विकार से ग्रस्त लोगों के सिर में बहुत पीड़ा होती है और वे वस्तु को देखने के लिए सिर झुकाकर अपनी दृष्टि एक ही ओर रखते हैं।

ऐसे लोगों को असमतल चश्में का प्रयोग करना चाहिए।

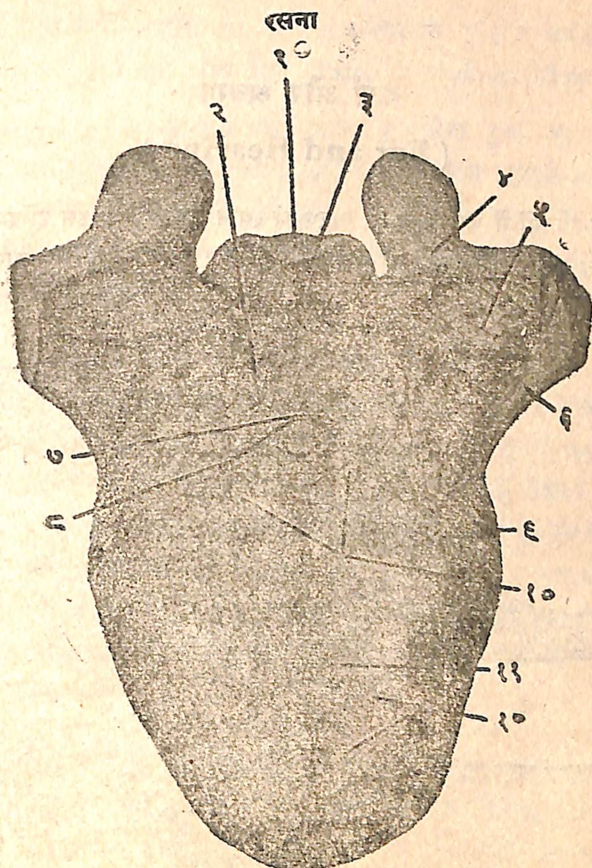
(४) जरा दृष्टि—बुढ़ापे में नेत्रलेंस की समंजन शक्ति कम हो जाती है, इसलिए मनुष्य न तो बहुत दूर की चीजों को देख सकता है और न बहुत पास की चीजों को। इस दोष को हटाने के लिए दो प्रकार के नाभ्यान्तर लैन्सों के चश्में काम में लाये जाते हैं। कम नाभ्यान्तर के चश्मे पढ़ने के लिए और अधिक नाभ्यान्तर के चश्में बाहर के कामों के लिए।

जिह्वा
(Tongue)

यह वह अंग है जिसके द्वारा हम लोग स्वाद का अनुभव करते हैं। यह मुँह के अन्दर स्थित है तथा पीछे की ओर चौड़ी और सामने की ओर पतली होती हैं। यह मांशपेशियों की बनी है जिसके ऊपर स्वाद कलियाँ (Taste Buds) हैं जहाँ से जिह्वा तन्त्रिका (Lingual Nerve) आरम्भ होती है। जब हम कोई खाने की चोज मुँह में डालते हैं तो वह जिह्वा की श्लैष्मिक झिल्ली के सम्पर्क में आता है और उसका स्वाद जिह्वा तन्त्रिका कलिकाओं (Lingual Nerve bubs) से जिह्वा तन्त्रिका (Lingual Nerve) में आता है और वहाँ से तन्त्रिका स्वाद को मस्तिष्क में ले जाती हैं। स्वाद में एक तो खट्टा, मीठा, कड़ुवा तथा तीता व दूसरे नमकीन। इसलिए अगर कहा जाय कि स्वाद में नाक वा जिह्वा दोनों शामिल हैं तो यह गलत न होगा और यह देखा गया है कि जुकाम होने पर

खाने का स्वाद नहीं मिलता है। स्वाद कलियाँ तीन स्थानों पर पाये जाते हैं। जिह्वा के नोंक पर जो स्वाद कलियाँ हैं ये मिठास का अनुभव करते हैं। जिह्वा के दोनों किनारों पर बीचो-बीच में नमक का स्वाद मिलता है तथा जिह्वा के पिछले हिस्से में कड़ुई चीजों का अनुभव होता है। अधिक तीती चीजों के सम्पर्क

रसना



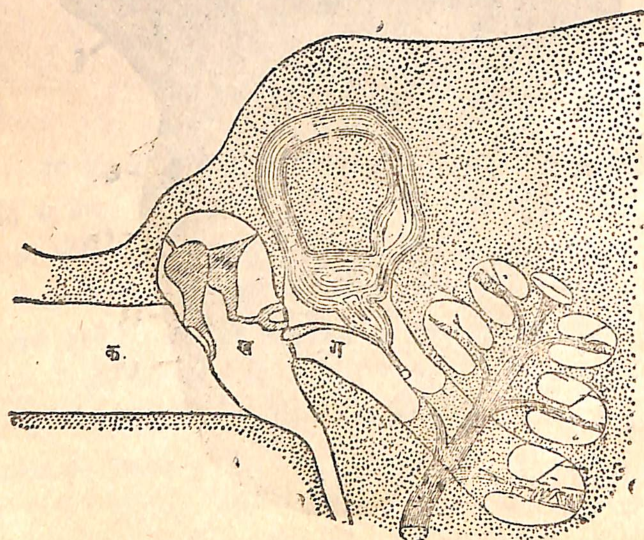
चित्र सं० ८५—जिह्वा

में जिह्वा से पानी गिरने लगता है। ताकि वह तीतापन हल्का (Dilute) घोल बन जाय और अपने तीखेपन से कोमल टीशू को हानि न पहुँचा दे।

कर्ण और श्रवण

(Ear and Hearing)

ज्ञान-इन्द्रियों में कर्ण बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस इन्द्रिय के द्वारा हम समस्त संसार की बातों को सुन सकते हैं। रचना के अनुसार कान के तीन भाग होते हैं।



चित्र सं ८६—कर्ण की आन्तरिक रचना

(१) बाह्य कर्णं (External Ear)

(२) मध्य कर्णं (Middle Ear)

(३) अन्तः कर्णं (Internal Ear)

(१) बाह्य कर्णः—इसके भी दो भाग होते हैं (१) कर्णशष्कुली (Pinna) और (२) बाह्य श्रवण छिद्र (External Auditory Meatus) ।

कर्णशष्कुली :—यह कान का वह चौड़ा और फैला हुआ भाग है जो उपास्थि (Cartilage) का बना होता है और चमड़े से घिरा रहता है । ऊपर से नीचे तक यह दबा तथा उभड़ा हुआ होता है । इसके अन्दर तीन छोटी-छोटी मांसपेशियाँ होती हैं जो इसे हिलाती-डुलाती हैं । यह मनुष्य में कम, पशुओं में अधिक हिलाई जा सकती हैं ।

बाह्य कर्ण :—यह पिन्ना से आरम्भ होती है और मध्यकर्ण कला (Tympanic Membrane) टिम्पैनिक मेम्ब्रेन पर समाप्त होती है । यह नली लगभग १$\frac{1}{4}$इञ्च लम्बी होती है । यह नली टेढ़े-मेढ़े घूमकर कर्णपटह (Drum) तक पहुँचती है । इस नली में एक पतली खाल का स्तर लगा रहता है जिसमें छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ रहती हैं । इनसे कान का चिकना पदार्थ निकलता है जो कान में घुसने वाली गन्दी वस्तुओं को फंसा कर स्वय मैल बन जाता है । इस नली की खाल में छोटे-छोटे बाल भी होते हैं । इस पूरी नली के दो भाग हो जाते हैं । एक कार्टिलेज की बनी हुई, दूसरी हड्डी की बनी हुई । हड्डी से बना भाग भीतर होता है ।

[२] मध्य कर्ण :—यह एक छोटी-सी कोठरी है जो कनपटी की हड्डियों के भीतर रहती है । इसमें सब जगह एक पतली श्लैष्मिक झिल्ली लगी रहती है और यह हवा से भरी होती है । इसकी बाहरी दीवार कर्णपटल से बनती है इस दीवार के दो छेद होते हैं, एक अण्डाकार, दूसरा गोल । बाकी दीवारें, छत और फर्श कनपटी की हड्डियों से बनते हैं । उनके सामने की दीवार में एक नली

का मुँह होता है। इस नली के द्वारा मध्य कान का कंठ से सम्बन्ध रहता है। इस नली को कण्ठकर्ण नली (Eustachian Tube) कहते हैं। नाक और मुँह में छेदों को बन्द करने पर साँस इस नली से होकर कान से जाने लगती है, जिससे शब्द को इस समय सुगमता से सुना जा सकता है। नाक और मुख से रोग इसी नली द्वारा कान तक पहुँचते हैं।

मध्य कान में तीन छोटी-छोटी हड्डियाँ होती हैं, जो कर्णपटह से लेकर भीतर दीवार तक फैली होती हैं। ये आपस में बन्धनों के द्वारा बँधी रहती हैं और इनके बीच में हिलने घूमने वाले जोड़ होते हैं। कर्णपटह के पास की हड्डी को मुगदर (Hammer) कहते हैं। बीच की हड्डी को नेहाई (Anvil) कहते हैं। तीसरी हड्डी भीतरी कान के पास होती है। इसका नाम रकाब (Stirup) है। इन हड्डियों के नाम इसकी बनावट के अनुरूप हैं। इन हड्डियों के सहारे कर्णपटह पर पहुँचती हुई वायु रूप में आवाज की लहरें (ध्वनि लहरें) भीतरी कान तक ठोस वस्तुओं की गति में बदल कर पहुँचती हैं।

[३] अन्तस्थ कर्ण (Internal Ear) :—भीतरी कान की बनावट बहुत ही जटिल और विचित्र है। शंखास्थि (Temporal) अश्म (Petrous) भाग के गर्भ में सुरक्षित रहता है। इसकी बनावट की जटिलता के कारण इस घूम-घुमैया को गहन (Labirynth) भी कहते हैं। भीतरी गहन की दीवाल हड्डी की होती हैं और उनके भीतर भी वैसी ही झिल्ली का उसी तरह का गहन होता है।

इसके भीतर एक द्रव पदार्थ होता है। जिस समय ध्वनि लहरों से रकाब नामक हड्डी की जड़ में कंपन होता है उसके साथ ही वह झिल्ली की गहन की दीवाल भी हिलती है, जिसमें यह हड्डी लगी होती है। इसलिए झिल्ली के दूसरी ओर भीतरी कान का तरल पदार्थ अन्तःकर्णोदक (Endolymph) बराबर थपथपाया जाता है और इस प्रकार उत्पन्न हुई शब्द तरंगें भीतरी कान के कुण्डलाकार भाग को घूमकर आती हैं। जिसमें श्रवण नाड़ी के जाल

तैरते रहते हैं और साथ ही मस्तिष्क को सूचना देते हैं, तभी हम सुनते हैं। कान का सबसे आवश्यक भाग यही है।

अन्तस्थ कर्ण के तीन भाग होते हैं :—

(१) प्रघाण (Vestibule), (२) कर्णावर्त (Cochlea), (३) तीन अर्द्ध चक्राकार नलियाँ (Semi-Cirular Canals)।

प्रघाण (Vestibule) नामक कोठरी मध्य कान के सामने होती है। इसके सामने की ओर कर्णावर्त (Cochlea) नामक भाग और पीछे की ओर अर्द्ध चक्राकार नलियाँ (Semi Circular Canals) होती है। इसी की दीवार में अण्डाकार छेद होता है जिसमें रकाब हड्डी लगी होती हैं। कर्णावर्त, प्रघाण के सामने घड़ी की कमानी के समान मुड़ा हुआ भाग होता है। इसकी आकृति कोकला नामक शंख से बहुत मिलती है। अर्द्ध-चक्राकार नलियाँ, प्रघाण के पिछले भाग से जुड़ी हुई होती हैं। इनकी संख्या तीन हैं, ये एक दूसरे से लम्ब बनाती हैं। इनके और प्रघाण के बीच पाँच सूराख होते हैं। इनमें से दो कर्ण-कुटी से मिलने के पहले ही बन्द हो जाते हैं। अर्द्ध-चक्राकार नलियों के केवल एक सिरे पर श्रवण स्नायु शाखायें मिली होती हैं। अर्द्ध-चक्राकार नलियों का कार्य है कि ये अनुमस्तिष्क को शरीर की गति से सूचित रखें।

———

स्वरयन्त्र और ध्वनि

स्वरयन्त्र (Larynx)—स्वरयन्त्र का नाम पहले कई बार आ चुका है। यह आवाज की इन्द्रिय और श्वास नली (Trachea) का ऊपरी भाग है। स्वरयन्त्र ९ कार्टिलेजों से बना एक कोष्ठ है। जिनमें मुख्य चार के नाम ये हैं—अवटु कार्टिलेज (Thyreoid), मुद्रा कार्टिलेज (Carotid) और दो त्रिकोट कार्टिलेज (Arytencid)। इस कोष्ठ के नीचे के भाग से श्वास प्रणाल आरम्भ होता है। इस स्वर कार्टिलेजों के अतिरिक्त एक कार्टिलेज पीपल के पत्ते की तरह

होता है। वही रचना कण्ठच्छद में गिरने से बचाती है। स्वरयन्त्र के कार्टिलेज आपस में पेशियों और बन्धनों से बँधे रहते हैं। अब मुख्य चार कार्टिलेजों का वर्णन दिया जाता है।

अवटु कार्टिलेज (Thyreoid)—स्वरयन्त्र के सामने और दोनों तरफ यही कार्टिलेज होता है। सामने ठीक उभरा हुआ भाग होता है। इसके पिछले भाग में एक पतली झिल्ली लगी होती है। ऊपर की ओर यह कण्ठिका (Hyoid) नामक हड्डी से मिला होता है और नीचे की ओर मुद्रा कार्टिलेज (Cricoid) से।

मुद्रा कार्टिलेज (Cricoid) :—यह कार्टिलेज अवटु कार्टिलेज के नीचे होता है। हवा की नली में केवल यही कार्टिलेज पूर्ण है। इसकी आकृति अँगूठी की तरह है। इसी से इसे मुद्रा कार्टिलेज कहते हैं। इसका पीछे का भाग चौड़ा और सामने का भाग सँकरा होता है। चुल्ली और इसके बीच का स्थान झिल्ली से मिला होता है। ऊपर दोनों ओर दो त्रिकोण कार्टिलेज होते हैं।

त्रिकोण कार्टिलेज (Arytenoids)—ये पिरामिड की शक्ल के त्रिकोण दो छोटे कार्टिलेज होते हैं। जो मुद्रा के ऊपर पीछे की तरफ इस प्रकार लगे होते हैं कि सुगमता से हिल-डुल सकें। इस त्रिकोण कार्टिलेज और अवटु उपास्थि की पिछली सतह के बीच में दो सौत्रिक बन्धन रहते हैं। जो पतली झिल्ली से ढँके होते हैं। इन्हें स्वररज्जु (Vocal cords) कहते हैं। ये बन्धन इस प्रकार मिले होते हैं कि जब ये फैलते हैं तो इनके किनारों के आस-पास और समानान्तर आ जाने से केवल एक बहुत ही पतला-सा छिद्र रह जाता है, जिससे होकर हवा जाती है। स्वर-रज्जु के ऊपर अलग-अलग दो तन्तु की और दो तहें हैं।

कण्ठच्छद (Epiglottis)—जैसा ऊपर कहा गया है, एक पत्ती की आकृति का कार्टिलेज का टुकड़ा है। जिसका नीचे का पतला भाग अवटु

कार्टिलेज से मिला होता है। इसका काम है स्वरयंत्र को खाने-पीने के समय बन्द रखना।

स्वरयंत्र का पार्श्व दृश्य, अवटु-ग्रन्थि के एक पत्राक के कुछ भाग को पृथक् किया गया और नीचे के भाग को नीचे किया गया

(Sideview of the Larynx, one lamina of the thyreoid cartilage partially removed and the lower part being turned down)

A. कण्ठिकास्थि का दीर्घ श्रृङ्ग (Greater Cornu of Hyoid Bone)

B. कण्ठिकास्थि का लघु श्रृङ्ग (Lesser Cornu of Hyoid Bone)

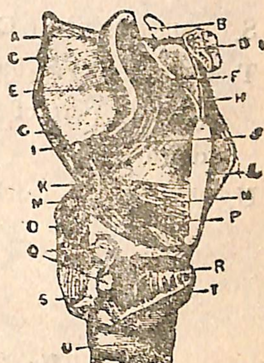
C. पार्श्विक अवटुकंठिकान्तरा स्नायु में सृक्ति (Caratilage Triticae in Latera l Hyothyreoid Ligament)

D. कंठिकास्थि का गात्र (Body of Hyoid Bone)

E. अवकण्ठिकान्तरा कला (Hyothyreoid membrane)

F. कंठच्छद (Epiglottis)

G. अवटुका उपास्थि का ऊर्ध्व श्रृङ्ग (Superior cornu of thyreoid Cartilage)



चित्र सं० ८७

H. अवटुकण्ठिकान्तरा कला का आगे का भाग (Front of Hyothyreoid membrane)

I. कर्णिका उपास्थि (Corniculate Cartilage)

J. घाटिकाधिजिह्विका पेशी (Aryepigloticus)

K. घाटान्तरीया पेशी (Artytaenoideus)

L. अवटुका उपास्थि (Thyreoid cartilage)

M. घाटिका सृक्ति के आधार का पार्श्विक कोण (Lateral angle of Base of Arytaenoid Cartilage)

N. अवटुकाघाटिका पेशी (Thyreoary taenoideus muscle)

O. कृकाटघाटिका पश्चिमा पेशी (Crieoary taenoidens Posterior)

P. कृकाटघाटिका पार्श्वगा पेशी (Cricoary taenoideus Lateralis)

Q. अवटुका उपास्थि के अधःश्रृङ्ग और कृकाटिका सृक्ति की सन्धि (खुली हुई) (Articulation between inferior cornu of Thyreoid and cricoid Laid open)

R. अवटुकृकाटिका पेशी (नोचे को मुड़ी हुई) (Cricothyreoideus Turned down)

S. कृकाटिका उपास्थि (Cricoid cartilage)

T. अवटुका उपास्थि के दक्षिण पत्रक का नीचे का भाग नीचे को उलटा हुआ (Lower part of right lamina of thyreoid cartilage turned down)

U. श्वास प्रणाली (Trachea)

स्वरयन्त्र की गुहा

(The Cavity of the Larynx)

A. कंठिकास्थि (Hyoid Bone)

B. अवटु उपास्थि (Thyreoid cartilage)

C. कृकाटिका उपास्थि (Cricoid Cartilage)

D. श्वासप्रणाली का प्रथम उपास्थि निर्मित छल्ला (First tracheal ring)

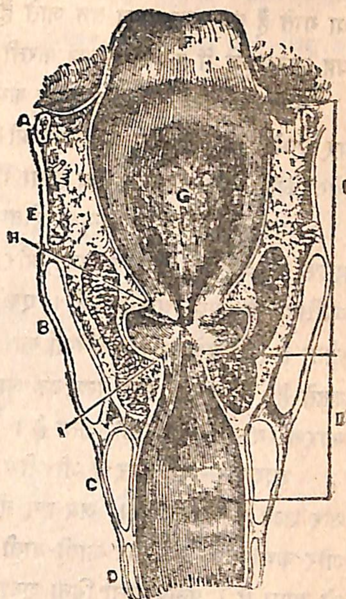
E. अवटुकंठिका कला (Hyothyreoid membrane)

F. कण्ठच्छदा (Epiglottis)

G. कण्ठच्छद गुलिका (Tubercle or cushion of Epiglottis)

H. निलय बन्धन (Ventricular ligament or fold)

I. स्वरबन्धन (Vocal Ligament of fold)



चित्र सं० ८८

कण्ठिकास्थित

(Hyoid Bone)

हाइआयड (Hyoid) हड्डी अंग्रेजी अक्षर यू (U) की तरह होती है और जीभ की जड़ में चुल्ली कार्टिलेज के ऊपर होती है। यह किसी हड्डी से मिली नहीं होती बल्कि खोपड़ी में लगे बन्धनों से लटकती रहती है। इसका सम्बन्ध जिह्वा और स्वरयन्त्र की कई पेशियों से रहता है।

स्वर और भाषण—स्वर-रज्जुओं (Vocal Cords) के प्रकम्पन से उत्पन्न होता है। साधारणत: साँस लेने के समय स्वर-रज्जु ढीले रहते हैं। जब हम बोलते

या गाते हैं तब स्वर-रज्जु तन जाते हैं और उस समय जो वायु बाहर निकलती है वह स्वर-रज्जु में कम्पन उत्पन्न करती है।

स्वर का मन्द और तीव्र होना कम्पन गति पर निर्भर है और कम्पन स्वर-रज्जु पर निर्भर है। जितना ही छोटा और तना रज्जु होगा उतना ही कम्पन अधिक होगा और साथ ही स्वर तीव्र होगा।

स्वर का मीठा या कडुवा होना कई बातों पर निर्भर है जैसे—मुँह, नाक, हलक की आकृति और बनावट और जीभ का स्थान इत्यादि। ये अंग भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न होते हैं। एक व्यक्ति का स्वर दूसरे व्यक्ति के स्वर से भिन्न होता है। लड़के और लड़कियों का स्वरयन्त्र एक-सा होता है, किन्तु लड़के जब बढ़ते हैं तो इनका स्वर-यन्त्र बढ़ जाता है और कम्पन में विभिन्नता आ जाने के कारण स्वर में अन्तर हो जाता है।

भाषण—वह स्वर है जो जीभ से गाल, होंठ और दाँत से टकराने से टूट-टूट कर शब्द बन जाता है। जब हम बोलते हैं तो हमारी जीभ कभी होंठ, कभी दाँत और कभी गाल की ओर आती-जाती है। इसी से स्वर टूट कर शब्दों में परिणत हो जाता है। फुसफुसाना बिना शब्द का भाषण है। इससे साँस से ही बोलते हैं, क्योंकि स्वर-रज्जु में कम्पन नहीं होता है। फुसफुसाने की आवाज जीभ होंठ की सहायता से होती है।

त्वचा के कार्य

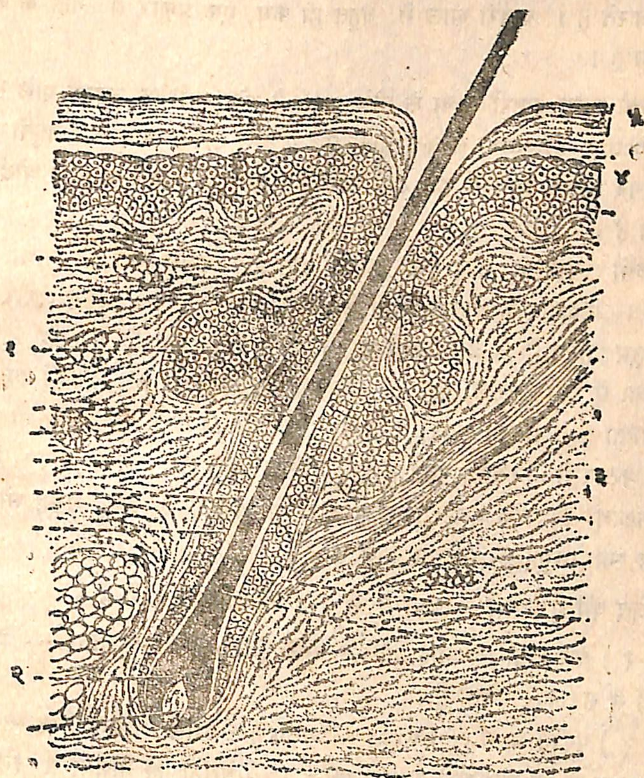
त्वचा सारे शरीर को ढंके रहती है और भीतर के सभी अंगों की रक्षा करती है। यह शरीर के अन्दरूनी अंग को बेकार वस्तुओं से दूर रखती है और शरीर पर पड़ने वाले ताप तथा शीत को ठीक दशा में रखती है।

त्वचा के दो भाग होते हैं :—

(१) बाहरी त्वचा (Epidermis), और (२) अन्तःत्वचा (Dermis)।

बाहरी त्वचा की तह की मोटाई शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में एक-सी नहीं है। इसकी मोटाई तलवे पर $\frac{१}{२०}$ इञ्च है और चेहरे पर $\frac{१}{२००}$ इञ्च। बाहरी

त्वचा सख्त होती है और वह इपीथीलियल काषा की कई तहों के मिलने से बनती है। ये भीतरी सेलों की रक्षा करते हैं और बराबर घिसते रहते हैं। घिस जाने



चित्र सं० ८६—त्वचा की रचना

पर भीतर से दूसरे सेल आ जाते हैं। ऊपरी खाल के नीचे की तहों में उस रंग के कण होते हैं जिससे हमारा शरीर गोरा या साँवला दिखाई पड़ता है। इन्हें रञ्ज कोषा (Pigment Cells) कहते हैं।

बाहरी त्वचा में खून की नलियाँ नहीं होती हैं। इनके भीतर जो सेल होते हैं वे अपना पोषण लसीका से पाते हैं; जो अन्तःत्वचा की सेल से धीरे-धीरे निकला करते हैं। बाहरी खाल में बहुत ही कम, एक प्रकार से नहीं के बराबर स्नायु-सूत्र हैं।

सच्ची त्वचा बाहरी त्वचा के नीचे रहती है और संयोजक उतकों वाले तन्तुओं (Connective Tissues) से बनी होती है। ये तन्तु ऊपरी भाग में मजबूती से लगे रहते हैं पर निचले भाग में कुछ ढीले रहते हैं। तन्तु के निचले भाग में थोड़ी चर्बी भी होती है।

सच्ची त्वचा के नीचे दूसरे ऊतक होते हैं। इनमें चर्बी की मात्रा अधिक रहती है। ये शरीर के भीतरी भागों के गड्ढों को भरते हैं। जिससे शरीर भरा-पूरा मालूम होता है। अन्तःत्वचा के नीचे जो तन्तु होते हैं वे ढीले होते हैं। अन्तःत्वचा में स्नायु-जाल, खून की नलियाँ और लसिका को नलियों का अच्छा प्रबन्ध रहता है। इसकी ऊपरी सतह पर उँगलियों की तरह से उभार भी होते हैं जो एक कतार से निकलते रहते हैं इन्हें पैपिले कहते हैं। प्रत्येक पैपिला में खून की केशिकाओं का एक गुच्छा होता है और एक अण्डाकार स्नायु-समूह भी रहता है। इस स्नायु-समूह का सम्बन्ध स्पर्श से है।

स्वेद की ग्रन्थियाँ—त्वचा में दो तरह की ग्रन्थियाँ होती हैं।

(१) तेल जैसी चिकनाई निकलने वाली (Sebaceous Gland)— ये बालों की जड़ों से सरोकार रखती हैं।

(२) पसीने वाली (Sweat Glands)—इससे पसीना निकलता है। बाहरी त्वचा में जो छोटे-छोटे सूराख होते हैं। वे पसीने की नलियों से मिले हैं। पसीने की गिल्टी वास्तव में एक नली है, जिसके नीचे का भाग साँप की तरह गेड़ुली बाँधे रहता है। यह सच्ची खाल के निचले भाग में होता है और खून की केशिकाओं से घिरा रहता है। जब खून इन केशिकाओं से होकर बहता है तो इन गिल्टियों के अन्दर चिकने पदार्थ तथा पसीने की मात्रा में अन्तर होता है। जैसा कि गर्मियों में देखा गया है। रक्त वाहिका विस्फारण (Vaso-dilatation)

क्रिया के द्वारा पसीना बहुत ज्यादा निकलता है और जाड़े के दिनों में जब रक्त-वाहिका संकोचन (Vaso-constriction) ज्यादा होता है तो पसीना बिल्कुल नहीं निकलता है।

त्वचा के कार्य :—त्वचा शरीर का एक बहुत ही महत्वपूर्ण अंग है। इनके कार्य निम्नलिखित हैं :—

(१) रक्त का गोदाम (Blood depot) :—त्वचा के अन्दरूनी भाग में जो रक्त केशिकाएँ होती हैं उनके अन्दर आवश्यकता पड़ने पर रक्त एकत्रित हो जाता है। यहाँ तक कि कभी-कभी त्वचा के अन्दर एक लीटर रक्त इकट्ठा हो जाता है।

(२) मूत्र उत्सर्जनतन्त्र के कार्य (Excretory Function of Kidney) :—चर्म का शरीर की रक्षा के अतिरिक्त एक दूसरा कार्य यह है कि शरीर का विषैला रसायन पदार्थ जो जल में घुलनशील होता है वह पसीने के साथ बाहर निकाल देता है। इस प्रकार जब कभी वृक्क के अन्दर कमजोरी आ जाती है तो यह मूत्र इत्यादि का पसीने के साथ निकाल कर गुर्दे की सहायता करता है। इसके साथ-ही-साथ शरार के तापमान को भी ठीक रखता है।

(३) त्वचा, श्वास संस्थान का भी एक महत्वपूर्ण अंग है। यह वायुमण्डल के द्वारा ठीक उसी प्रकार से आक्सीजन ग्रहण करता है जैसा कि फेफड़े के वायुकोष करते हैं। जिस समय साधु लोग समाधि लेते हैं उस समय उनका फेफड़ा काम नहीं करता क्योंकि वह साँस चढ़ाये रहते हैं। उस समय उनका चर्म मिट्टी के अन्दर मिली हुई आक्सीजन को ग्रहण करता है और कार्बनडाई आक्साइड निकाल देता है। ठीक यही क्रिया मेढकों में होती है जब वह शीत निष्क्रियता अवधि (Hibernation Period) में होते हैं।

(४) ताप संचालन :—जिस समय शरीर के अन्दर तापमान बहुत बढ़ जाता है उस समय शरीर से पसीना निकलने लगता है जिसके द्वारा शरीर की गर्मी निकल जाती है। लेकिन जब शरीर का तापमान कम रहता है, उस समय शरीर के छेद बन्द हो जाते हैं और रोआँ फूटने लगता है।

———

अध्याय १२

वाहिनीहीन ग्रन्थियाँ

(Ductless Glands)

शरीर के अन्दर नाना प्रकार की ग्रन्थियाँ मौजूद हैं जिनसे शरीर का भिन्न-भिन्न कार्य होता है। रचना के अनुसार ये ग्रन्थियाँ दो भागों में विभाजित हुई हैं। पहली तो वह हैं जिनका स्राव एक नली के द्वारा किसी अमुक नली में या रक्त में जाता है। दूसरी ग्रन्थियाँ वह होती हैं जिनमें किसी प्रकार की नली नहीं होती बल्कि इनका स्राव सीधे और रक्त के अन्दर जाता है और के द्वारा वह सारे शरीर में पहुँच जाता है। ऐसी ग्रन्थियों को निःस्रोत ग्रन्थियाँ (Endocrine Glands) और इनसे जो स्राव निकलते हैं उन्हें हारमोन (Hormone) कहते हैं। इन ग्रन्थियों के कार्य का अध्ययन वैज्ञानिकों ने दो प्रकार से किया है। पहला तो इस प्रकार से कि उन्होंने किसी एक ग्रन्थि को काट कर निकाल दिया और तब इस चीज को देखा कि उस जानवर के स्राव में क्या परिवर्तन हुआ, एक बात और है कि जब कोई ग्रन्थि बीमारी के कारण बेकार हो जाती है तो उस ग्रन्थि के अभाव से जो-जो पारवतंन उसमें होता है उसका भी उन्होंने अध्ययन किया। दूसरी विधि यह थी कि रोग के समय ग्रन्थि को खिलाने से, ग्रन्थि के स्राव का इन्जेक्शन देने से तथा उस ग्रन्थि को शरीर के अन्दर निरोप (Graft) करने से उस तन्तु के अन्दर वह खोई हुई शक्ति फिर से अन्दर आ जाती है।

शरीर की मुख्य-मुख्य वाहिनीहीन ग्रन्थियाँ निम्नलिखित हैं—

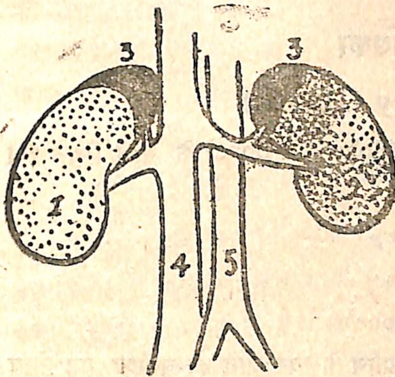
१—Pituitary (पियूषिका ग्रन्थि), २—Thyroid (अबटु ग्रन्थि), ३—Parathyroid (पराअवट ग्रन्थि), ४—Islets of Langerhans

(लैंगरहैंस के द्वीप), ६—Adrenals (अधिवृक्क ग्रन्थि) तथा ५—Ovary and Testis (डिम्ब तथा अण्ड ग्रन्थि)।

अधिवृक्क ग्रन्थियां

(Adrenal Glands)

अधिवृक्क ग्रन्थियाँ (Suprarenal Glands)—यह दो त्रिभुजाकार ग्रन्थियाँ होती हैं जो संख्या में दो हैं। प्रत्येक ग्रंथि वृक्क के ऊपरी सिरे पर स्थित है। इनके अन्दर अधिवृक्क धमनी के द्वारा शुद्ध रक्त प्रवेश करता है और अधिवृक्क शिरा के द्वारा अशुद्ध रक्त निकलता है और इस अशुद्ध रक्त के अन्दर अधिवृक्क ग्रन्थि का स्राव जिसे एड्रीनैलीन (Adrenaline) कहते है उपस्थित रहता है। यह स्राव रक्त के साथ सारे शरीर में भ्रमण करता है।



1—दक्षिण वृक्क

2—वाम वृक्क

3—उपवृक्क

4—वृक्क धमनी

5—वृक्क शिरा

चित्र सं० ९०

अधिवृक्क ग्रन्थियाँ बहुत पतली महीन तथा पारदर्शी झिल्लियों से ढँकी रहती हैं। ग्रन्थि के दो भाग होते हैं। एक पतला बाहरी सँकरा हिस्सा जिसे प्रान्तस्था (Cortex) कहते हैं, और दूसरा अन्दरूनी भाग जिसे अन्तस्था (Medulla)

कहते हैं। प्रान्तस्था से एक रस निकलता है जो जीवन के लिए आवश्यक होता है किन्तु इसका ठीक कार्य निश्चित नहीं है। माध्य से एक स्राव निकलता है जिसे एड्रीनेलीन (Adrenaline) कहते हैं। यह पदार्थ स्वतन्त्र मांसपेशियों और ग्रंथियों को उत्तेजित करता है। परिश्रम और उत्तेजना के समय यह शरीर को विशेष क्रियाशीलता प्रदान करती है, एड्रीनेलिन रक्तवाहिनियों की पेशियों में संकोचन उत्पन्न करती हैं और अन्य रक्त दबाव को बढ़ाती हैं। यदि दोनों अधिवृक्क ग्रंथियाँ शरीर में से निकाल दी जायँ तो परिणाम घातक होता है। इसका तीन क्लीनिकल प्रयोग है। पहला यह कि इसके बाहरी प्रयोग से रक्तस्राव बन्द किया जा सकता है दूसरा यह कि सांस फूलना कम किया जा सकता है तथा तीसरी महत्वपूर्ण क्रिया धमनियों पर होती है। यह अनुकम्पी (Sympathetic) तन्त्रिकाओं को उत्तेजित करती हैं जिसके फलस्वरूप धमनियाँ सिकुड़ जाती हैं जिससे रक्त का दबाव बढ़ जाता है।

पीयूषिका

(Pituitary Gland)

यह ग्रंथि सिर के अन्दर जतूकास्थि (Sphenoid Bone) के नीचे स्थित है। इसके चार भाग होते हैं।

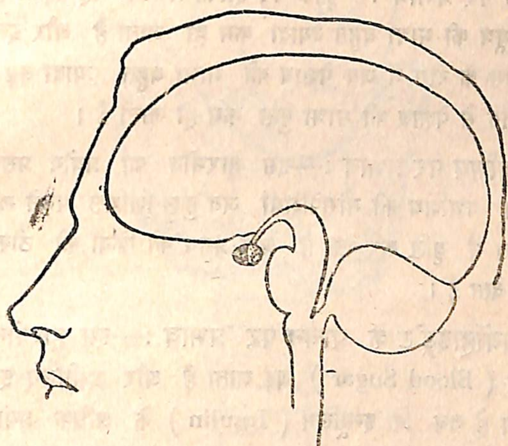
(१) अग्रिम खण्ड (Anterior Lobe)

(२) पश्चिम खण्ड (Posterior Lobe)

(३) मध्य खण्ड (Intermediate Lobe)

पीयूषिका ग्रन्थि के कार्य :—इस ग्रन्थि के बढ़ जाने का नतीजा यह होता है कि मनुष्य बहुत ज्यादा बड़े हो जाते हैं और भयानक प्रतीत होने लगते हैं। इसके बाद दो प्रमुख वैज्ञानिकों आलवर और शेफर ने १८९५ में पता लगाया कि इस ग्रन्थि के रस का प्रयोग करने से रक्त का दबाव ठीक उसी प्रकार बढ़ जाता है; जैसे—एड्रीनेलीन के प्रयोग से। कोरैमिन (Coramine) के

आविष्कार के पहले इसके स्राव का प्रयोग उस समय होता था जब हृदय को गति मन्द होने लगती थी। इस ग्रन्थि के ऊपर बराबर कोई-न-कोई कार्य होता ही रहता है; जिसका फल यह निकला कि ग्रन्थि के अग्र तथा पश्चिम खण्ड के कार्य में बहुत अन्तर है।



चित्र सं० ९१—पिट्यूटरी ग्रन्थि मध्य में काले छोटे आकार में।

अग्रिम खण्ड के कार्य :—इसके कार्य के सम्बन्ध में बहुत से वैज्ञानिकों का यह विचार है कि यदि इस भाग को काटकर निकाल दिया जावे तो उन जानवरों तथा मनुष्यों की वृद्धि में एकाएक रुकावट उत्पन्न हो जाती है और ऐसे लोग अधिकतर बौने तथा नाटे होते हैं। स्मिथ (Smith) ने जब इस ग्रन्थि का निरोप (Graft) चूहों में लगाया तो उसका परिणाम हुआ कि जिन चूहों में बढ़ाव रुक गया था वह फिर बढ़कर अपने असली आकार में आ गये। इसके कार्य का सारांश यह है कि यह मनुष्य तथा जानवरों की वृद्धि में बहुत कुछ भाग लेता है।

पश्चिम खण्ड के कार्य :—इस खण्ड से जो स्राव निकलता है उसे

पिट्यूट्रीन (Pituitrin) कहते हैं। इसका कार्य निम्नलिखित अंगों पर होता है।

(१) रक्त संचरण तन्त्र :—इसके इन्जेक्शन देने का परिणाम यह होता है कि धमनी की मांसपेशियाँ सिकुड़ जाती हैं और उनके कारण रक्त का दबाव बढ़ जाता है। इससे हृदय के अन्दर कुछ शक्ति भी आ जाती है।

(२) वृक्क पर प्रभाव :—वृक्क पर इसका प्रभाव यह पड़ता है कि इसके प्रयोग करने से मूत्र की मात्रा बहुत ज्यादा कम हो जाती है और इसीलिए डाई-बिटिज इन्सिपिडस के रोग में जब पेशाब की मात्रा बहुत ज्यादा बढ़ जाती है तो इस दवा के प्रयोग से पेशाब की मात्रा कुछ कम हो जाती है।

(३) गर्भाशय पर प्रभाव :—इस हारमोन का प्रयोग प्रसव के समय किया जाता है। गर्भाशय की मांसपेशियाँ जब कुछ शिथिल पड़ने लगती हैं तब यह उनकी शक्ति में वृद्धि कर देता है और प्रसव की क्रिया को ठीक कर बच्चा जल्दी पैदा कर देता है।

(४) कार्बोहाइड्रेट के पाचन पर प्रभाव :—इस हारमोन के प्रयोग से रक्त शर्करा (Blood Sugar) बढ़ जाता है और इसीलिए इसका प्रयोग उस समय होता है जब कि इन्सूलिन (Insulin) के अधिक प्रयोग से रक्त शर्करा (Blood Sugar) घट जाता है। उस समय यह दवा मनुष्य को बहुत सहायता देती है

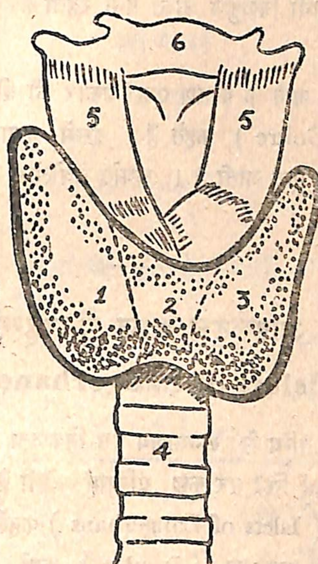
———

अवटु ग्रन्थि

(Thyroid Gland)

यह दो लम्बी ग्रन्थियाँ हैं जो गले में श्वास-नली के दोनों तरफ स्थित हैं और बीच में एक लम्बे भाग से एक-दूसरे से अंग्रेजी अक्षर H के समान जुटी हुई हैं। प्रत्येक अवटु ग्रन्थि एक चर्बीदार झिल्ली से ढँकी हुई है।

इसके अन्दर छोटी-छोटी नलियाँ होती हैं जो भीतर की तरफ केन्द्र में एकत्रित होती हैं।



चित्र संख्या ९२—थायरायड ग्रंथि

इस ग्रन्थि की दा मुख्य क्रियाएं हैं जो एक रस के द्वारा होती हैं और जिसे अवटु हारमोन (Thyroxin) कहते हैं। इस वस्तु के अन्दर आयोडिन पर्याप्त मात्रा में उपस्थित है। इसका प्रथम कार्य यह है कि यह पाचन-क्रिया को उत्तेजित करता है जिसके फलस्वरूप भोजन रस अच्छी तरह से शोषित होता है। इसका दूसरा कार्यं यह है कि भद्दे और खराब शरीर को सुडौल बनाता है। इसका एक कार्यं यह भी है कि मस्तिष्क को तीव्र बनाता है और सोचने की शक्ति को बढ़ाता है।

बच्चों में इसकी कमी के कारण एक रोग हो जाता है जिसे वामनता (Cretinism) कहते हैं। इससे बच्चा बहुत मोटा व बलगमी हो जाता है। उसके

हाथ-पैर फूले रहते हैं। बच्चा बहुत अलहदी व फूहड़ हो जाता है। बड़ों के अन्दर इसकी कमी के कारण अतिकायता (Acromegaly) नाम का रोग हो जाता है। रोगी बिलकुल सुस्त बना रहता है और वह कोई काम नहीं कर सकता।

इस ग्रन्थि के बढ़ जाने के कारण एक प्रकार की बीमारी हो जाती है जिसे घेघा या गलगण्ड (Goitre) कहते हैं। इसमें गला सूजकर आगे निकल आता है तथा आँखें भी फूल जाती हैं। अर्थात् नेत्रोत्सेध (Exopthalmos) हो जाता है।

———

आइलेट्स आफ लैंगरहैन्स
(Islets of Langerhans)

यों तो अग्न्याशय ग्रन्थि से अग्न्याशय रस निकलता ही है; इसके अतिरिक्त अग्न्याशय ग्रन्थि के बाएँ सिरे पर कुछ ग्रन्थियाँ होती हैं जो एक द्वीपसमूह के समान होती हैं। उन्हें (Islets of Langerhans) कहते हैं। इस ग्रन्थि से एक स्राव निकलता है जिसे इन्सुलिन (Insulin) कहते हैं। यह स्राव कार्बोहाइड्रेट की पाचन-क्रिया में मदद देता है। जब यकृत के अन्दर किसी प्रकार का दोष उत्पन्न हो जाता है या जब मनुष्य आवश्यकता से अधिक चीनी का सेवन करता है उस समय उसके रक्त के अन्दर चीनी की मात्रा बहुत ज्यादा बढ़ जाती है। ऐसे समय में (Islets of Langerhans) के सेल्स उत्तेजित हो जाते हैं और इन्सुलिन उत्पन्न करते हैं। यह स्राव कार्बोहाइड्रेट को पचाकर रक्त को शुद्ध कर देता है। इस स्राव का प्रयोग डायबिटीज के रोग में किया जाता है।

सेक्स हारमोन (Sex-Hormones) का वर्णन स्त्री तथा पुरुष जननेन्द्रिय के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक किया जा चुका है।

———

अध्याय १३

सन्धियाँ

(Joints)

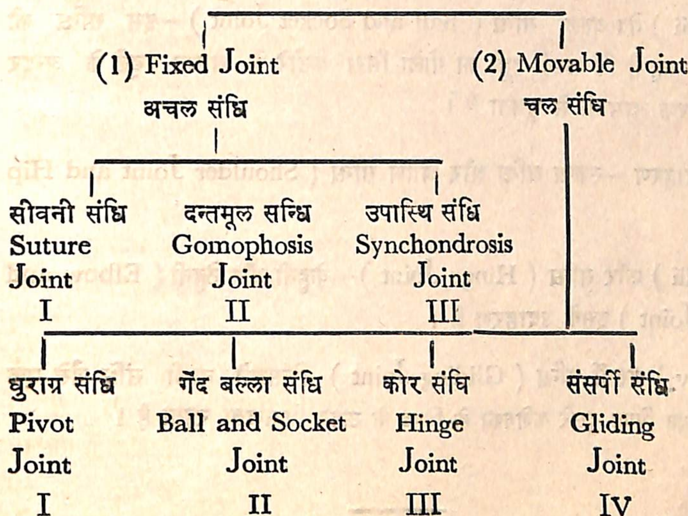
संधि दो प्रकार की होती हैं :—

(१) चल संधि (Movable Joint)

(२) अचल संधि (Fixed Joint)

चल संधि—चल संधियाँ वह होती हैं जिनमें दोनों हड्डियों के जोड़ पर बराबर गति हुआ करती है।

अचल संधि—इन संधियों में गति बिल्कुल नहीं होती है और एक दूसरे से अच्छी तरह लगी हुई होती हैं, जैसे Head Bone के जोड़।



(1) सीवनी संधि (Suture Joint)—ये संधियाँ सिर की हड्डियों में पाई जाती हैं। सिर की हड्डियों के किनारे दाँतेदार होते हैं और ये हड्डियाँ जब आपस में एक दूसरे से जुटती हैं तो एक दाँत दूसरे दाँत से लग जाता है।

(2) दन्त मूल संधि (Gomophosis)—यह भी एक प्रकार की अचल सन्धि है जिसमें दाँत की जड़ मसूढ़ों के अन्दर लगी रहती हैं।

(3) उपास्थि सन्धि (Cynchondrosis)—यह भी एक प्रकार की अचल सन्धि है जिसमें एक हड्डी दूसरे के ऊपर बैठी रहती है। जैसे पेराइटल बोन, टैमपोरल बोन से जुटता है।

चल सन्धि—यह वह सन्धियाँ होती हैं, जिनमें दो हड्डियों के बीच आसानी के साथ गति (Movement) होता है। यह निम्नलिखित प्रकार के होते हैं—

(i) धुराग्र सन्धि (Pivot Joint)—सिर की हड्डी, ऐटलस (Rotating on the Vertebrae)।

(ii) गेद बल्ला सन्धि (Ball and Socket Joint)—इस सन्धि की विशेषता यह है कि लम्बी हड्डी का गोला सिरा कटोरे के समान गड्ढे के अन्दर चारों तरफ आसानी से घूमता है।

उदाहरण—स्कन्ध सन्धि और श्रोणि सन्धि (Shoulder Joint and Hip Joint)

(iii) कोर सन्धि (Hinge Joint)—केहुनी और ठेहुनी (Elbow and Knee Joint) इसके उदाहरण हैं।

(iv) संसर्पी सन्धि (Gliding Joint) फिसलने वाली संधि जैसे एक कशेरुका का पिण्ड दूसरे कशेरुका के पिण्ड के ऊपर फिसलता रहता है।

सन्धि निर्माण या संरचना

(Construction of the Joint)

(१) दो हड्डियों का रहना जरूरी है ।

(२) हड्डियों का चिकना होना जरूरी है ।

(३) दो हड्डियों के बीच में तरल स्नेह (Liquid Oily Matter) होना जरूरी है ।

(४) वह हड्डी जिसमें शरीर का पूरा अंग स्थित रहता है । उन दोनों हड्डियों के बीच में एक गद्दी रहती है ।

(५) जोड़ को मजबूत बनाने के लिये पेशियाँ (Muscles) और स्नायु (Ligament) होना जरूरी है ।

———

अध्याय १४

प्रत्येक अंगों का विस्तार तथा स्थानीय विवरण

(Topography)

सिर (*Head*)

समस्त सिर को देखने से यह प्रतीत होता है कि इसके दो भाग होते हैं। १—कपाल के ऊपर का हिस्सा तथा २—चेहरे का भाग।

कपाल के ऊपर का भाग बिल्कुल गोला होता है और हड्डियों की लगी हुई त्वचा की एक मोटी खाल होती है जिसके ऊपर बाल लगा रहता है। चेहरे को देखने पर दो गड्ढे आँख का, एक गड्ढा नाक का और एक गड्ढा मुख का रहता है। आँख के गड्ढे के अन्दर नेत्रगोलक (Eye balls) रहते हैं जो सामने की तरफ पलकों से ढंके रहते हैं। ऊपरी नेत्रगोलक के ऊपर का भाग नेत्रगुहा (Orbit) के नीचे रहता है। नेत्रगोलक के नीचे का भाग अक्षि गुहा (Orbit) के ऊपरी हिस्से पर रहता है जो ऊर्ध्व हन्वास्थि (Maxilla) के बाडी के ऊपरी सर्फेस से बना हुआ है। नेत्रगोलक के पीछे का हिस्सा आर-बिट के अग्रभाग के सम्पर्क में रहता है। अक्षि गुहा के इस हिस्से में एक छेद होता है जिसे अक्षि छिद्र (Optic foramen) कहते हैं। इसके द्वारा आँख से निकली हुई दृष्टि तन्त्रिका (Optic Nerve) मस्तिष्क के अन्दर प्रवेश करती है। पलक के अन्दर अश्रु ग्रन्थि (Lacrymal Glands) होती है इनसे अश्रु निकलते हैं जो नाक के पास के छेद के द्वारा बह कर आते हैं। नेत्र वा चक्षु (Eye ball) अक्षि गुहा (Orbit) के अन्दर रहते हैं जो पलकों से ढंके रहते हैं।

नोट—नेत्र का विस्तारपूर्वक वर्णन पहले किया जा चुका है।

दोनों नेत्रों के बीच में Nose या नासिका स्थित है जिसका छेद नीचे की तरफ खुलता है। इसके दो भाग होते हैं। ऊपर का भाग कड़ी हड्डी का बना होता है और नीचे का हिस्सा जो फैला होता है उपास्थि (Cartilage) का बना होता है। नाक के द्वारा हम लोग सूँघते हैं, श्वास लेते हैं और भोजन का स्वाद भी लेते हैं। क्योंकि भोजन का स्वाद उसकी सुगन्ध पर निर्भर है।

नाक के नीचे मुँह स्थित रहता है जो ऊपर और नीचे होठों से ढँका रहता है। ऊपर का होंठ (Upper Lip) ऊपर के जबड़े यानी ऊर्ध्वहनु (Maxilla) से लगे रहते हैं और निचला होंठ, लोअर लिप अधोहनु (Mandible) से ऊपर रहते हैं। गर्भ के अन्दर ऊपर के होंठ तथा नीचे के होंठ के दो-दो भाग रहते हैं। जो गर्भ के अन्दर ही बाद को जुट जाते हैं। होंठ के भीतर का हिस्सा श्लेष्मा कला (Mucous membrane) से ढँका रहता है। मुँह के दोनों तरफ गाल हैं और मुँह के ऊपर के हिस्से में तालू है जो दोनों तरफ और सामने दाँतों से ढँके रहते हैं। ये दाँत ऊर्ध्वहनु (Maxilla) से लगे रहते हैं। नीचे के दाँत अधोहनु (Mandible) से लगे रहते हैं। दाँतों के बीच तिकोनी जबान है जिसका नोकीला हिस्सा सामने रहता है और चौड़ा हिस्सा पीछे को होता है। जबान के पीछे तथा ऊपर की तरफ दो गलतुण्डिका (Tonsil) स्थित हैं। जिनके बीच काकलक (Uvula) लटका रहता है और जबान के पिछले तथा नीचे के हिस्से में एक बहुत बड़ा सुराख है जिसे कण्ठ (Pharynx) कहते हैं। मुँह के अन्दर श्लैष्मिक झिल्ली के पास जगह-जगह पर लार ग्रन्थियाँ (Salivery Glands) रहती हैं।

मुँह के दोनों साइड में कान (Ear) स्थित हैं, जिनके द्वारा हम सुनते हैं। कान के तीन भाग होते हैं।

१—कान का बाहरी हिस्सा (External Ear) जो अधिकतर उपास्थि का बना होता है। टेढ़ा-मेढ़ा तथा मैला रहता है और चर्म से ढँका रहता है। इसका मुख्य कार्य बाहर से ध्वनियों को एकत्रित करना है।

२—कान का मध्य भाग (Middle Ear)

३—कान का भीतरी भाग है (Internal Ear)

ग्रीवा
(Neck)

गर्दन शरीर का वह हिस्सा होता है जो सिर और धड़ के बीच स्थित है और एक को दूसरे से जोड़ता है। यह बेलन के समान गोला और लम्बा है। गले में सबसे पीछे और बीचो-बीच में एक के ऊपर एक लगी हुई सात रीढ़ की प्रथम हड्डियाँ हैं। जिन्हें ग्रैवकशेरुक (Cervical Vertibrae) कहते हैं, जिनके पिछले छेद के अन्दर सुषुम्नाशोर्ष (Medulla Oblongata) तथा सुषुम्ना (Spinal Cord) रहते हैं। इनसे सुषुम्ना तन्त्रिकाएँ (Spinal Nerve) प्रारम्भ होती हैं। प्रत्येक ग्रैवकशेरुक (Cervical Vertibrae) का पिण्ड सामने की तरफ गले के अन्दर सबसे पीछे स्थित रहता है। इसके सम्पर्क में ग्रासनली (Oesophagus) रहती है जो मुखगुहा से आरम्भ होती है और गले तथा वक्षस्थल से होती हुई उदर के अन्दर आमाशय के प्रारम्भिक भाग से मिल जाती है।

ग्रासनली के सामने ऊपरी भाग में स्वर यन्त्र (Larynx) तथा नीचे के भाग में श्वास प्रणाल (Trachea) रहता है। इसके दोनों तरफ अवटु ग्रन्थिक (Thyroid Gland), स्वर यन्त्र (Larynx) के बीच में दोनों तरफ वह बड़ी धमनी स्थित है जो गले, चेहरा तथा सिर को शुद्ध रक्त देती है इनका नाम सामान्य कैरोटिड धमनी (Common Carotid Arteries) है।

उदर

(Abdomen)

यह वह जगह है जो ऊपर महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm) जिसके ऊपर वक्ष (Thorax) या वक्षगुहा है हो ता है और नीचे श्रोणिप्राचीरा पेशी (Pelvic Diaphragm) रूप में लिवेटर एनाई पेशी जिसके ऊपर श्रोणिगुहा (Pelvic) होती है। यह स्थान सामने और अलग-बगल पेशियों से घिरा सुरक्षित होता है। पीछे रीढ़ का लम्बर भाग इसकी रक्षा करता है। सबसे ऊपर महाप्राचीरा पेशी के नीचे पड़ने वाली पसलियाँ इसकी दीवाल में अवश्य आती हैं। इसी प्रकार नीचे लिवेटर एनाई के ऊपर कमर की हड्डी का भाग भी इसकी दीवाल का काम करता है। इस उदर गुहा में कुछ महत्वपूर्ण अंग भी हैं। जैसे—अन्ननली के निचले छोर से लेकर मलाशय के लिवेटर ऐनाई द्वारा घिरे भाग तक आँत और लिवर, तिल्ली, वृक्क (Kidney), एड्रीनल ग्रन्थियाँ, मूत्राशय, गर्भाशय (स्त्रियों में), प्रोस्टेट ग्रन्थि (पुरुषों में), ओवरी ग्रन्थि (स्त्रियों में), गवीनी (Ureters) आदि।

यह शरीर का वह भाग है जिसके अन्दर पाचन संस्थान, मूत्र संस्थान, प्रजनन संस्थान तथा कुछ अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियाँ अथवा नलीविहीन ग्रन्थियाँ (Ductless Glands) स्थित हैं।

उदर गुहा की सीमा में (Boundary of Abdomen)—उदर की दीवार का अग्र भाग निम्नलिखित अंगों से बना हुआ है। सबसे पहले सामने की तरफ चर्म (Skin) है। चर्म के पीछे वसा (Fat) है। उसके बाद झिल्लियों में लिपटी पेशियाँ हैं।

समोदरिकाविधान (Rectus Sheath) झिल्ली का वह भाग है जो समोदरिका पेशी (Rectus Abdominis) मांसपेशियों के सामने स्थित है। इस विधान (Sheath) के पीछे दो लम्बी मांसपेशियाँ हैं जो ऊपर उरोस्थि (Sternum) से आरम्भ होती हैं और एक दूसरे के समानान्तर नीचे की तरफ

जाकर जघनास्थि (Pubic Bone) पर जुट जाती है ।

इन दोनों मांसपेशियों के पीछे समोदरिकाविधान (Rectus Sheath) का पिछला भाग रहता है और सबसे अन्दर परिउदर्या की पार्श्विकस्तर (Prietal layer of the Peritonium) रहता है ।

उपरिभित्ति (Abdominal Wall) के पार्श्व (Lateral Sides) में तीन मांसपेशियाँ होती हैं ।

I. तिर्यक् बाह्य औदरीय (External Oblique Muscle)

II. अनुप्रस्थ उदरिका (Transverse Abdominis Muscle)

III. जो सबसे अन्दर रहता है उसे आभ्यन्तर तिर्यक् औदरी (Internal Oblique Muscle) कहते हैं ।

उदर गुहा (Abdominal Cavity) के पिछले भाग में रीढ़ की हड्डियों की श्रेणी रहती है । इसके अन्तर्गत नीचे की चार वक्षीय कशेरुक (Thorasic Vertebrae), कटिकशेरुक (Lumbar Vertebrae) तथा त्रिक्कशेरुक (Sacral Vertebrae) सम्मिलित हैं । कटिकशेरुक (Lumbar Vertebrae) के दोनों तरफ दो वृक्क (Kidney) स्थित हैं । वृक्क के सामने के भाग में परिउदर्या (Peritonium) स्थित रहता है और चूंकि वृक्क (Kidney) पीछे की तरफ स्थित है इसलिए इसका शल्यकर्म (Operation) पीछे से किया जाता है ।

उदर (Abdomen) का ऊपरी भाग जिसे छत (Roof) कहते हैं तथा महाप्राचीरा (Diaphragm) भी कहते हैं ।

वक्ष

(Thorax)

वक्षयिनी (Thorasic Wall) :—(1) वक्षकशेरुक (Thorax Vertebrae), (2) पर्शुकाएँ (Ribs), (3) उरोस्थि (Sternum) ।

इसमें दो मांसपेशियाँ होती हैं—

1. आभ्यांतर अन्तरा पशु की (Intercostal Internus Muscle)

2. बाह्य अन्तरापशु की (Intercostal Externus Muscle)

इसमें अन्तरापशु की धमनी, शिरा, तन्त्रिका (Intercostal Vein, Artery, Nerve) आदि होते हैं।

वक्षभित्ति (Thorasic Wall) में चर्म फिर वसा फिर वाच्क्षछदिका (Pectoralis Muscle) होते हैं तथा स्त्रियों में यही चर्बी बढ़कर स्तन ग्रन्थियाँ हो जाती हैं।

महाप्राचीरा (Diaphragm) सीने का आधार है। सीना (Thorax) गर्दन से आरम्भ होता है। यह ऊपर की ओर सँकरा तथा नीचे की ओर चौड़ा होता है। यह एक कोन के आकार (Conical Shape) का है। ये सब मिलकर वक्ष की गुहा (Thorax Cavity) बनाते हैं। त्रिकर्पादिका कपाट ध्वनि (Tricuspid Valve's Beating) अर्थात् इसकी आवाज उरोस्थि के नीचे और बीच में सुनी जाती है और द्विकर्पादि कपाट ध्वनि (Bicuspid Valve) बायीं तरफ कूचक (Niple) के नीचे सुना जाता है। फेफड़े के शीर्ष की आवाज जत्रुकास्थि (Clavicle Bones) के ऊपरी ओर सुना जाता है। पूर्ण फेफड़े-प्रदेश को (Vasicular) प्रदेश कहते हैं और यह पीछे की ओर स्थित है।

यह मांस तथा झिल्ली का बना हुआ गुम्बज के समान एक भाग है जो वक्षस्थल और उदर के बीच में स्थित है। इसके बीचो-बीच एक छेद होता है जिसे महाप्राचीरा छिद्र (Hiatus of the diaphragm) कहते हैं। इस छेद के द्वारा महाधमनी (Aorta) तथा ग्रास-नली (Oesophagus) वक्षस्थल से उदर में प्रवेश करती हैं। इसके अतिरिक्त निम्न महाशिरा (Inferior Venacava) तथा रक्तवाहिनी (Thorasic Duct) उदर से वक्षस्थल के अन्दर प्रवेश करते हैं। उदर के नीचे का भाग नितम्बास्थि (Hip Bone), वक्षण स्नायु (Inguinal Ligament) और मूलाधार (Perenium) से मिलकर बना हुआ है।

उदर गुहा (Abdominal Cavity) के भीतर दीवार के चारो तरफ एक झिल्ली लगी रहती है जिसे पयु र्दर्या (Peritonium) कहते हैं ।

पर्यंउदर्या (**Peritonium**)

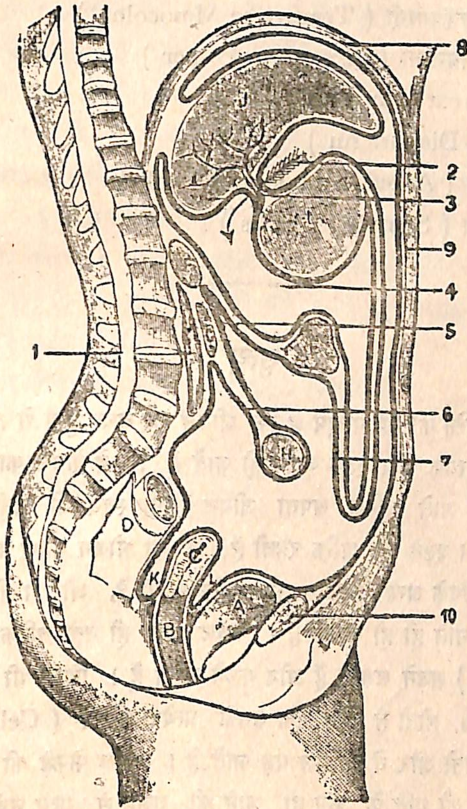
यह एक प्रकार की श्लैष्मिक कला (Mucous membrane) है जो उदर के चारों तरफ लगी रहती है तथा उदर के समस्त अंगों को एक-एक करके चारों तरफ से ढंके हुए है। पर्यंउदर्या (Peritonium) से लगी हुई धमनियों का वह जाल रहता है जो ऊर्ध्व आन्त्रयोजनी धमनी (Superior Mesenteric Artery) तथा अधः आन्त्रयोजनी धमनी (Inferior Mesenteric Artery) की शाखाओं से मिलकर बना हु आ है। इसके अतिरिक्त तन्त्रिकाओं का वह समूह रहता है जिसे तन्त्रिकी जाल (Solar Plexus) कहते हैं ।

औदर्य्यामहाकला
(**Peritonium**)

A. मूत्राशय (Bladder)
B. योनिमार्ग (Vagina)
C. गर्भाशय (Uterus)
D. मलाशय (Rectum)
E. अनुप्रस्थ वृहदान्त्र (Transverse Colon)
F. अग्न्याशय (Pancreas)
G. ग्रहणी (Duodenum)
H. क्षुद्रान्त्र (Small Intestines)
I. आमाशय (Stomach)
J. यकृत (Liver)

K. योनि गुदान्तरीय स्थान (Recto-Uterine Excavation)

L. वस्ति-गर्भाशयान्तरीय स्थान (Vesico-Uterine Excavation)



चित्र सं० ९३

1. महाधमनी (Aorta)

2. बड़े और छोटे परिउदर्या कोषों की एकता प्रदर्शक तीर (Arrow indica-

ting the continuation of the grater with the lesser sac) ।

3. अभियाकृती धमनी (Hepatic Artery)
4. वपा पुटी (Omental-bursa)
5. अनुप्रस्थ वृहदान्त्रबन्धनी (Transverse Mesocolon)
6. वास्तविक अन्त्रबन्धनी (Mesentery Proper)
7. महावपा (Great Omentum)
8. महाप्राचीरा (Diaphragm)
9. उदर-पूर्वभित्ति (Anterior Abdominal wall)
10. भग-संधनिका (Symphysis Pubis)

मृत्यु

हर एक व्यक्ति को यह मालूम है कि जीवन का अन्त मृत्यु से होता है। जिस समय शरीर के प्रत्येक कोष इतने जर्जर हो जाते हैं कि वे केवल कार्य करने में ही असमर्थ नहीं हो जाते बल्कि अपना जीवन निर्वाह स्वयं भी नहीं कर सकते। उनके अन्दर न तो बढ़ने की शक्ति रहती है, न तो भोजन ग्रहण करने की शक्ति रहती है; न तो उनके अन्दर विकास की शक्ति रहती है, और न ही उनके अन्दर किसी प्रकार की गति ही हो सकती है। केवल इतना ही नहीं बल्कि मरने के बाद कोषायें (Cells) सड़ने लगती हैं और गलने लगते हैं। किसी भी जीव-जन्तु की मृत्यु उसी समय होती है जब कि उसके प्रत्येक कोषयें (Cells) के अन्दर प्रतिक्रिया नहीं होती और वे शिथिल पड़ जाते हैं। केवल फेफड़े की गति कम हो जाने से या हृदय की गति के कम हो जाने की वजह से मृत्यु नहीं हो सकती। ऐसे समय में उचित औषधियों के प्रयोग से हृदय-फेफड़े के कार्य ठीक किये जा सकते हैं और मनुष्य बचाया जा सकता है। यह उसी समय संभव हो सकता है जब कि कोषाओं (Cells) के अन्दर दवाओं के द्वारा प्रतिक्रिया हो; क्योंकि प्रतिक्रिया न होने पर दवाएँ बिलकुल निष्फल हो जाती हैं। यदि किसी मुर्दे को

आप बढ़िया से बढ़िया दवा दीजिये तो बिलकुल बेकार हो जाती हैं। जीवन के समय प्रत्येक कोषाओं (Cells) में एक शक्ति होती है जो Cell को बनाये रखती है। इसे Life force या जीवनी शक्ति कहते हैं और मृत्यु होने पर जीवनी शक्ति निकल जाती है तथा वह Cells बिल्कुल बेकार हो जाते हैं।

चीनियों के धर्मगुरु का यह कथन है कि मृत्यु के समय प्राण का एक भाग शरीर के ऊपरी भाग से निकलता है और दूसरा पैर से। ये दोनों प्राण शरीर के बाहर एक दूसरे से मिल जाते हैं और वे ऊपर को उठते हैं तथा शरीर से सम्बन्ध टूट जाता है। और हिन्दू शास्त्र के अनुसार प्राण आँख, नाक, मुख के द्वारा निकलता है। मृत्यु के बाद शरीर कुछ देर तक गर्म रहता है। उसके बाद धीरे-धीरे ठंडा पड़ने लगता है और साथ-ही साथ मांसपेशियों से एक प्रकार की रासायनिक क्रिया होने के कारण शरीर का वजन बहुत ज्यादा बढ़ जाता है और शरीर ठंढा और कड़ा हो जाता है।

इस प्रकार जीवन के नाटक का अन्त हो जाता है।

मेडिकल पुस्तक भवन, वाराणसी द्वारा प्रकाशित—

चिकित्सा-सम्बन्धी उत्कृष्ट पुस्तकें

एलोपैथिक पुस्तकें—

डॉ० सुरेशप्रसाद शर्मा द्वारा लिखित

१—इन्जेक्शन—आज के इस वैज्ञानिक युग में सूची-वेध-विज्ञान चिकित्सा क्षेत्र में अपना प्रथम स्थान रखता है। इस पुस्तक में—सूचीवेध की आवश्यकता, सूचीवेध सम्बन्धी वैज्ञानिक तत्त्वों का संग्रह इत्यादि से लेकर पूतीकरण (Sterlization) तथा सूई की समस्त औषधियों आदि का विस्तृत वर्णन दिया गया है। सुन्दर छपाई, ग्लेज कागज एवं अनेक चित्रों से परिपूर्ण।

मूल्य २४·०० सजिल्द।

२—एलोपैथिक पॉकेट गाइड—इस पुस्तक में आधुनिक वैज्ञानिक सर्वप्रचलित चमत्कारिक औषधियों के नुस्खे, प्रमुख रोगों का संक्षिप्त परिचय एवं निदान के अनुसार चिकित्सा का वर्णन है। मूल्य ६·०० मात्र।

३—एलोपैथिक चिकित्सा—पुस्तक आठ अध्यायों मे लिखी गयी है। प्रथम चार अध्यायों में 'विषयप्रवेश', 'शरीर-विज्ञान', 'रोग-निदान' सम्बन्धी आवश्यक बातों और नवीनतम आविष्कृत औषधियों का वर्णन क्रमशः दिया गया है। आगे प्रचलित सभी रोगों का वर्णन और उनकी चिकित्सा में प्रचलित नुस्खों, पेटेण्ट औषधियों एवं परीक्षित इञ्जेक्शनों, 'लाक्षणिक चिकित्सा', विटामिन द्वारा चिकित्सा', 'शक्तिवर्द्धक औषधियाँ' तथा 'ग्रन्थिस्राव द्वारा चिकित्सा' का वर्णन है। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत। मूल्य २५·०० मात्र।

४—मिक्श्चर—मिक्श्चर बनाने की विधि और १८५ रोगों में ३५० नुस्खों का वर्णन दिया गया है। साथ ही साथ पेटेण्ट दवाओं और विभिन्न रोगों पर चलने वाले इञ्जेक्शनों के नाम भी दिये गये हैं। मूल्य ५·०० मात्र।

डॉ० शिवदयाल गुप्त, ए० एम० एस० द्वारा लिखित पुस्तकें—

५—एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका—एलोपैथी के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए मेटेरिया मेडिका का अध्ययन आवश्यक है। प्रस्तुत ग्रन्थ सर्वांगपूर्ण बना है। मूल्य ३०·०० मात्र।

६—सचित्र नेत्र-रोग विज्ञान (एलोपैथिक)—इसमें नेत्र रचना,

उनकी कार्यक्षमता आदि विषयों पर सुन्दर विवेचन किया गया है, जैसे निकट दृष्टि-ज्ञान, दूर-दृष्टि-ज्ञान आदि। १३० चित्रों के साथ। उत्तरप्रदेश सरकार से पुरस्कृत। मूल्य १०.०० मात्र।

७—एलोपैथिक सफल औषधियाँ—एलोपैथिक चिकित्सा की जान कही जाने वाली नयी सफल औषधियों (Chemotherapy) का विस्तृत वर्णन दिया गया है। मूल्य ६.०० मात्र।

८—धात्री विज्ञान—इस पुस्तक में धातृ-विद्या सम्बन्धी बातों का विस्तृत एवं बोधगम्य विवेचन किया गया है। जच्चा-बच्चा के प्रति बरती जाने वाली सावधानियाँ, उनके सम्भाव्य रोगों का उपचार तथा बालक और माता के उचित पोषण की विधि बतायी गयी है। मूल्य ४.०० मात्र।

९—मल-मूत्र, रक्तादि की परीक्षा (एलोपैथिक)—इसमें न केवल मल, मूत्र, रक्त की परीक्षाओं का वर्णन ही है, बल्कि स्राव, प्रलेप, थूक, वीर्य आदि की परीक्षाओं की विधि भी सरल ढंग से दी गई है। मूल्य ६.००

१०—माडर्न डायग्नोसिस—लेखक डॉ० केशवानन्द नौटियाल, ए० एम० एस० (काशी हिन्दूविश्वविद्यालय)। इस पुस्तक में लेखक ने रोग निदान करने के साधनों तथा स्टेथोस्कोप, ब्लड-प्रेशर-यन्त्र आदि के प्रयोग के बारे में विस्तार से लिखा है साथ ही नाड़ी पर भी पूरा विचार किया गया है। सभी विद्यार्थियों एवं चिकित्सकों के लिए अत्यन्त उपयोगी पुस्तक का मूल्य केवल।

मूल्य २२.०० मात्र।

११—स्टेथोस्कोप परीक्षा—इस पुस्तक में हृदय तथा फुफ्फुस के रोगों के अतिरिक्त भी जहाँ इस यन्त्र की सहायता ली जा सकती है उनके वर्णन के साथ इससे सुनाई पड़ने वाली ध्वनियों के विषय में भी स्पष्ट ढंग से बताया गया है। मूल्य ४.०० मात्र।

१२—ब्लड-प्रेशर—इस पुस्तक मे ब्लड-प्रेशर पर अनेक विद्वानों की रायें, रोग परिचय और परिचर्या दी गयी है। मूल्य ३.५० मात्र।

१३—डायबिटीज-मधुमेह—इस पुस्तक में मधुमेह की सांगोपांग चिकित्सा दी गयी है। मूल्य २.०० मात्र।

१४—मॉडर्न ट्रीटमेंट—प्रथम भाग २४.०० मात्र
द्वितीय भाग २४.०० मात्र

डॉ० अयोध्यानाथ पाण्डेय द्वारा लिखित पुस्तकें—

१५—एलोपैथिक पेटेन्ट मेडिसिन्स—सभी प्रचलित कम्पनियों द्वारा

निकाली गयी सभी पेटेण्ट औषधियों का वर्णन और रोगानुसार उनका प्रयोग भी बताया गया है।

अतः यह पुस्तक विशेषकर साधारण चिकित्सकों और विद्यार्थियों के लिए परम उपयोगी है। मूल्य १४·०० मात्र।

१६—एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा—इस पुस्तक में पेटेन्ट औषधियों द्वारा सभी रोगों की रोगानुसार आधुनिक चिकित्सा संकलित कर दी गयी है।

मूल्य ५·०० मात्र।

१७—ज्वर-चिकित्सा—उ० प्र० सरकार द्वारा पुरस्कृत। इस पुस्तक में ज्वरों के निदान के साथ उनकी चिकित्सा एलोपैथिक, आयुर्वेदिक, होमियोपैथिक तथा यूनानी चिकित्सा-विधि के अनुसार दी गयी है। आप किसी भी उपलब्ध पैथी के अनुसार विभिन्न प्रकार के ज्वरों की सफल चिकित्सा कर सकते हैं।

मूल्य ५·००।

१८—शरीर-रचना एवं क्रिया विज्ञान —मूल्य ८·०० मात्र।

१९—संक्रामक रोगों का उपचार मूल्य २·०० मात्र।

२०—मॉडर्न एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका—लेखक डॉ० रामनारायण सक्सेना, वाइस-प्रिंसिपल बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक कालेज, झाँसी। केवल इस पुस्तक के बल पर आप अपनी एलोपैथिक चिकित्सा चला सकते हैं। साधारण भाषा में अति सरल ढङ्ग से सम्पूर्ण चिकित्सा विषय आप आयत्त कर सकते हैं।

मूल्य १५·०० मात्र।

२१—कम्पाउण्डरी शिक्षा तथा चिकित्सा प्रवेश—मूल्य ८·०० मात्र।

२२—मलेरिया और कालाजार चिकित्सा (एलोपैथिक)—इस पुस्तक में मलेरिया और कालाजार का इतिहास, परिचय, रोग का संक्रमण, शारीरिक विकृति, खून का तुलनात्मक अध्ययन और खून जाँच करने की विधि तथा रोग की सामान्य चिकित्सा, लाक्षणिक चिकित्सा और विशिष्ट चिकित्सा का सविस्तार वर्णन दिया गया है।

मूल्य २·५० मात्र।

२३—चर्म रोग चिकित्सा—इस पुस्तक में विभिन्न चर्मरोगों की पहचान, उनका निदान एवं पेटेण्ट चिकित्सा विस्तार से बतायी गयी है।

मूल्य ४·५० मात्र।

२४—सल्फोनामायड और एण्टीबायोटिक्स—इसमें नवीनतम आविष्कृत सभी सल्फा और पेटेण्ट औषधियों के गुण-कर्मों का वर्णन है।

मूल्य २·७५ मात्र।

२५—जननेंद्रिय रोग चिकित्सा—इस पुस्तक में स्त्री-पुरुषों के प्रजनन अंगों के विभिन्न रोगों का वर्णन एवं उनकी चिकित्सा एलोपैथिक और आयुर्वेदिक पद्धति से दी गयी है। मूल्य ३·७५ पैसे।

२६—नासा, गला एवं कर्ण रोग चिकित्सा—इसमें नाक, गला एवं कान की संक्षिप्त एनाटॉमी, उनमें होने वाले रोगों का वर्णन और उनकी उत्तम चिकित्सा बतायी गयी है। मूल्य ७·०० मात्र।

२७—संकटकालीन प्राथमिक चिकित्सा—इस पुस्तक में आकस्मिक दुर्घटनाओं की तात्कालिक चिकित्सा अत्यन्त विस्तारपूर्वक बतायी गयी है।

मूल्य ६·०० मात्र।

२८—सफल आधुनिक औषधियाँ—इसमें नवीनतम एलोपैथिक औषधियों का वर्णन और कार्य दिया गया है। मूल्य ५·५० पैसे।

२९—सन्तति निरोध—इस पुस्तक में स्वस्थ और निरुपद्रव संतति निरोध संबंधी सभी जानकारियाँ और उपाय बताये गये हैं। मूल्य ६.००।

३०—सर्जरी (सामान्य शल्य-चिकित्सा)—यह ग्रन्थ शल्य चिकित्सा (Operation) विषय पर लिखा गया है। पुस्तक अत्यन्त बोधगम्य भाषा और शैली में प्रस्तुत की गयी है। पुस्तक के अन्तिम भाग में सर्जरी संबंधी औजारों का सचित्र परिचय और उनके प्रयोग एवं कार्यों के विषय में बताया गया है।

मूल्य १४·०० मात्र।

३१—बाल रोग चिकित्सा—इसमें बालकों को होने वाले रोगों की एलोपैथिक तथा आयुर्वेदिक पद्धतियों की समन्वित चिकित्सा अत्यन्त विचारपूर्ण ढंग से दी गयी है। मूल्य १५·०० मात्र।

३२—अभिनव शवच्छेद-विज्ञान—

प्रथम भाग पृष्ठ सं० ४८२—मूल्य—१२·०० मात्र।

द्वितीय भाग पृष्ठ सं० ४०४—मूल्य—१०·०० मात्र।

३३—मार्डन सिलेक्टेड मेडिसिन्स—इस पुस्तक मे विद्वान लेखक ने नवीनतम आविष्कृत चुनी हुई एलोपैथिक औषधियों की क्रिया, प्रयोग, पश्चात-प्रभाव आदि के साथ उनका विशद विवेचन किया है। मूल्य ६·०० मात्र।

३४—विटामिन्स— मूल्य ३·०० मात्र।

३५—मासिक विकार— मूल्य २·०० मात्र।

३६—वृद्धों के रोग और उनका प्रतिकार— मूल्य १२·०० मात्र।

३७—स्त्रियों के रोग और उनकी आधुनिक चिकित्सा—मूल्य २२'०० ।

होमियोपैथिक पुस्तकें--

लेखक—डॉ० सुरेशप्रसाद शर्मा

१—होमियो पारिवारिक चिकित्सा—पारिवारिक चिकित्सा की कतिपय पुस्तकें छप चुकी हैं, किन्तु कोई भी पुस्तक होमियोपैथी में प्रवेश करनेवालों के लिए इतनी सर्वाङ्ग सुन्दर, जिसमें आवश्यक सब विषयों का समावेश हो, नहीं प्रकाशित हुई। इस अभाव की पूर्ति के लिए ही इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ है।
मूल्य २५'०० मात्र।

२—होमियोपैथिक मेटेरिया मेडिका रेपर्टरी सहित—मूल लेखक—डॉ० विलियम बोरिक—कैलिफोर्निया के यशस्वी डॉक्टर विलियम बोरिक की होमियोपैथिक मेटेरिया मेडिका जगत प्रसिद्ध चिकित्सा-ग्रन्थ है जो लगभग एक शताब्दी से दुनिया भर में प्रचलित एवं समादृत है। मेडिकल पुस्तक भवन द्वारा इसी पुस्तक का यह हिन्दी रूपान्तर अत्यन्त सावधानीपूर्वक अविकल रूप में छापा गया है और इसे पाठकों का व्यापक समर्थन प्राप्त है। इसमें होमियोपैथिक चिकित्सा सम्बन्धी सभी समस्याओं का सुन्दर समाधान प्रस्तुत किया गया है।
मूल्य ३०'०० मात्र।

होमियो रेपर्टरी मूल्य १०'०० मात्र।

३—रोगी की सेवा और पथ्य—उ० प्र० सरकार द्वारा पुरस्कृत इस पुस्तक में रोगी की परिचर्या, निवासस्थान, भोजन, पथ्य बनाने की विधि, उनके गुण-दोष, संक्रामक बीमारियों की एहितियातियाँ, आकस्मिक दुर्घटना का तात्कालिक उपचार आदि बातों को अत्यन्त सरल ढंग से दिया गया है। मूल्य ४–५० मात्र।

४—बायोकेमिक-चिकित्सा—इस पुस्तक में १२ बायोकेमिक क्षारों के परिचय, उनकी कमी से विभिन्न अंगों पर पड़ने वाले प्रभावों को वैज्ञानिक व्याख्या के साथ ही विभिन्न रोगों में उनके प्रयोग के बारे में विस्तार से बताया गया है।
मूल्य १०'०० मात्र।

५—आर्गेनन—महात्मा हैनिमैन कृत आर्गेनन का अविकल हिन्दी अनुवाद।
मूल्य ७'०० मात्र।

६—स्त्री-रोग चिकित्सा सचित्र—पुस्तक तीन खंडों में लिखी गयी है। प्रथम खण्ड में नारी जननेन्द्रिय की एनाटॉमी सचित्र समझायी गयी है।

दूसरे खण्ड में उनके सम्भाव्य रोगों का सकारण विवरण और तीसरे खण्ड में चिकित्सा दी गयी है। मूल्य ८.५० मात्र।

७—होमियोपैथिक मेटेरिया मेडिका—यह अन्य मेटेरिया मेडिकाओं से कई अर्थों में उत्तम पुस्तक है। मूल्य १०.०० मात्र।

८—भारतीय औषधावली तथा होमियो पेटेन्ट मेडिसिन—इसमें भारतीय मूल द्रव्य से निर्मित औषधियों का वर्णन और उनका विभिन्न रोगों में प्रयोग बताया गया है। अनेक होमियोपैथिक प्रतिष्ठानों द्वारा प्रस्तुत विभिन्न पेटेण्ट औषधियों के बारे में भी विस्तार से बताया गया है। मू० ३.०० मात्र।

९—सुशलर की बारह तन्तु औषधियाँ—मूल लेखक—डॉ० विलियम बोरिक, एम. डी, विलियय ए० डेवी, एम. डी. —मूल्य १२.०० मात्र।

१०—एलेन्स की नोट्स—मूल लेखक—डॉ० एच०सी० एलेन, एम०डी०। औषधि तत्व की प्रधान औषधियों के मूल सूत्र तथा तुलनात्मक अध्ययन, साथ में अन्य औषधियाँ तथा नोसोड्स। प्रस्तुत पुस्तक डॉ० एलेन के "औषधि मूल सूत्र" नामक ग्रन्थ का अविकल एवं बोधगम्य सरल हिन्दी रूपान्तर है।

मूल्य १०.०० मात्र।

११—रीजनल लीडर्स—(अविकल हिन्दी अनुवाद) मूल लेखक—डॉ० इ० बी० नैश, एम० डी०। इस पुस्तक में लगभग दो हजार रोगों का वर्णन और चिकित्सा सरल ढंग से दी गयी है। अनुवाद अत्यन्त सरल एवं बोधगम्य भाषा में किया गया है। मूल्य ३.०० मात्र।

१२—होमियो बाल-चिकित्सा—यह पुस्तक डॉ० चार्ल्स ई० फिशर की बच्चों के रोगों की होमियोपैथिक चिकित्सा के आधार पर लिखी गई है।

मूल्य ५.५० मात्र।

१३—होमियोपैथिक मदर टिंचर मेटेरिया मेडिका—लेखक डॉ० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव। मूल्य ५.०० मात्र।

१४—लीडर्स इन होमियोपैथिक थेराप्यूटिक्स—मूल लेखक डॉ० ई० बी० नैश, एम० डी०। प्रस्तुत पुस्तक "होमियोपैथिक औषधि तत्व" के मुख्य निर्देशक लक्षण" ग्रन्थ का ही हिन्दी अनुवाद है। मूल्य १२.०० मात्र।

१५—जार फोर्टि ईयर्स प्रैक्टिस—प्रस्तुत पुस्तक डॉ० जॉर द्वारा लिखित उक्त अंग्रेजी ग्रन्थ का अविकल हिन्दी अनुवाद है। आशा है इससे हिन्दी पाठकों के अनेक समस्याओं का समाधान भली-भाँति हो जायगा। मूल्य १२.०० मात्र।

१६-होमियो टायफायड चिकित्सा मूल्य १.२५। १७—होमियो न्यूमो-

निया चिकित्सा मूल्य १·०० । १८—होमियो थायसिस चिकित्सा—मूल्य १·०० । १९—थर्मामीटर—मूल्य ·५० । २०—एनिमा और कैथेटर—मूल्य ·६० । २१—रोग लक्षण संग्रह—मूल्य ·४० । २२—पुरानी बीमारियाँ-मू० ६·०० मात्र । २३—भेषजसार—मू० ३·०० केवल । २४—होमियो इन्जेक्शन चिकित्सा मू० ३·५० मात्र। २५—होमियो गृह चिकित्सा—मू० ६·०० । २६—सफल होमियो प्रेस्क्रिप्शन—मू० १·०० । २७—होमियो पाकेट गाइड—मू० २·०० । २८—बायोकेमिक पॉकेट गाइड—मू० २·०० । २९—बायोकेमिक रेपर्टरी—मूल्य ५·०० । फेरिंगटन की कम्परेटिव मेटेरिया मेडिका--मू० १४·०० मात्र । ३१—बायोकेमिक रहस्य-मू० ४·०० । ३२—तुलनात्मक होमियो औषधि चुनाव एवं डायलुशन—मू० १·५० । ३३—होमियो पशु चिकित्सा—मू० ३·५० मात्र । ३४—होमियो शिशु चिकित्सा—मू० १·०० मात्र। ३५—बाह्य प्रयोग की औषधियाँ—मू० १·२५ मात्र । ३६—वात गठिया लकवा रोग चिकित्सा—मू० १·०० मात्र। होमियो भेषज सम्बन्ध तत्व एवं क्रियास्थिति काल—मू० ३·५० मात्र।

आयुर्वेदिक पुस्तकें—

आयुर्वेदिक विज्ञान—मू० ८·०० मात्र। नाड़ी रहस्य मू० १·२५ मात्र।

ग्राम सीरीज प्रकाशन—

वृक्ष विज्ञान चिकित्सा-मू० ३·०० । जल चिकित्सा विधान--मू० ३·०० । सुलभ देहाती नुस्खे—मू० १·५० पैसे। प्लीहा चिकित्सा—मू० ·७५ पैसे। नीम चिकित्सा विधान—मू० १·०० पैसे। तुलसी-चिकित्सा विधान—मूल्य १·०० पैसे। आयुर्वेदीय घरेलू चिकित्सा मू० ३·०० पैसे मात्र। बबूल चिकित्सा विधान—मू० ·५० पैसे मात्र। मधु-चिकित्सा विधान—मू० ·७५ पैसे मात्र। कब्ज या कोष्ठबद्धता—मू० १·०० मात्र। मवेशियों की घरेलू चिकित्सा—मू० २·०० मात्र। नीबू चिकित्सा विधान—मू० १·०० मात्र। छाछ (मठा) चिकित्सा विधान—मू० १·०० मात्र। जनस्वास्थ्य विज्ञान—मू० ७·०० ।

मेडिकल पुस्तक भवन

गोलादीनानाथ, वाराणसी।